

## आँख की किरकिरी रवींद्रनाथ टैगोर

### अनुक्रम

- पहला भाग
- तीसरा भाग
- चौथा भाग
- दूसरा भाग

### [अनुक्रम](#)

### पहला भाग

### [आगे](#)

विनोद की माँ हरिमती महेन्द्र की माँ राजलक्ष्मी के पास जा कर धरना देने लगी। दोनों एक ही गाँव की थीं, छुटपन में साथ खेली थीं।

राजलक्ष्मी महेन्द्र के पीछे पड़ गई - 'बेटा महेन्द्र, इस गरीब की बिटिया का उद्धार करना पड़ेगा। सुना है, लड़की बड़ी सुंदर है, फिर पढ़ी-लिखी भी है। उसकी रुचियाँ भी तुम लोगों जैसी हैं।

महेन्द्र बोला - 'आजकल के तो सभी लड़के मुझ जैसे ही होते हैं।'

राजलक्ष्मी- 'तुझसे शादी की बात करना ही मुश्किल है।'

महेन्द्र - 'माँ, इसे छोड़ कर दुनिया में क्या और कोई बात नहीं है?'

महेन्द्र के पिता उसके बचपन में ही चल बसे थे। माँ से महेन्द्र का बर्ताव साधारण लोगों जैसा न था। उम्र लगभग बाईस की हुई, एम.ए. पास करके डॉक्टरी पढ़ना शुरू किया है, मगर माँ से उसकी रोज-रोज की जिद का अंत नहीं। कंगारू के बच्चे की तरह माता के गर्भ से बाहर आ कर भी उसके बाहरी थैली में टँगे रहने की उसे आदत हो गई है। माँ के बिना आहार-विहार, आराम-विराम कुछ भी नहीं हो पाता।

अबकी बार जब माँ विनोदिनी के लिए बुरी तरह उसके पीछे पड़ गई तो महेन्द्र बोला, 'अच्छा, एक बार लड़की को देख लेने दो!'

लड़की देखने जाने का दिन आया तो कहा, 'देखने से क्या होगा? शादी तो मैं तुम्हारी खुशी के लिए कर रहा हूँ। फिर मेरे अच्छा-बुरा देखने का कोई अर्थ नहीं है।'

महेंद्र के कहने में पर्याप्त गुस्सा था, मगर माँ ने सोचा, 'शुभ-दृष्टि' <sup>1</sup> के समय जब मेरी पसंद और उसकी पसंद एक हो जाएगी, तो उसका स्वर भी नर्म हो जाएगा।

1. बंगाल में विवाह के पहले लड़का-लड़की परस्पर एक-दूसरे को देखते हैं। यह रिवाज है। यही 'शुभ-दृष्टि' है।

राजलक्ष्मी ने बेफिक्र हो कर विवाह का दिन तय किया। दिन जितना ही करीब आने लगा, महेंद्र का मन उतना ही बेचैन हो उठा। मात्र दो-चार दिन पहले वह कह बैठा- 'नहीं माँ, यह मुझसे हर्गिज न होगा।'

छुटपन से महेंद्र को हर तरह का सहारा मिलता रहा है। इसलिए उसकी इच्छा सर्वोपरि है। दूसरे का दबाव उसे बर्दाश्त नहीं। अपनी स्वीकृति और दूसरों के आग्रह ने उसे बेबस कर दिया है, इसीलिए विवाह के प्रस्ताव के प्रति नाहक ही उसकी वितृष्णा बढ़ गई और विवाह का दिन नजदीक आ गया तो उसने एकबारगी 'नाही' कर दी।

महेंद्र का दिली दोस्त था बिहारी; वह महेंद्र को 'भैया' और उसकी माँ को 'माँ' कहा करता था। माँ उसे स्टीमर के पीछे जुड़ी डोंगी-जैसा भारवाही सामान मानती थीं और वैसी ही उस पर ममता भी रखती थीं। वे बिहारी से बोलीं - 'बेटे, यह तो अब तुम्हें ही करना है, नहीं तो उस बेचारी लड़की... '

बिहारी ने हाथ जोड़ कर कहा - 'माँ, यह मुझसे न होगा। अच्छी न लगी कह कर महेंद्र जो मिठाई छोड़ देता है वह मैंने बहुत खाई, मगर लड़की के बारे में ऐसा नहीं हो सकता।'

राजलक्ष्मी ने सोचा, 'भला बिहारी विवाह करेगा! उसे तो बस एक महेंद्र की पड़ी है, बहू लाने का खयाल भी नहीं आता उसके मन में।' यह सोच कर बिहारी के प्रति उनकी कृपा-मिश्रित ममता कुछ और बढ़ गई।

विनोदिनी के पिता कुछ खास धनी न थे, परंतु अपनी इकलौती बेटी को मिशनरी मेम रख कर बड़े जतन से पढ़ाया-लिखाया। इतना ही नहीं, घर के काम में भी चाक-चौबंद किया। वे गुजर गए और बेचारी विधवा माँ बेटी के विवाह के लिए परेशान हो गई। पास में रुपया-पैसा नहीं, ऊपर से लड़की की उम्र भी ज्यादा।

आखिर राजलक्ष्मी ने अपने मैके में गाँव के एक रिश्ते के भतीजे से विनोदिनी का विवाह करा दिया।

कुछ ही दिनों में वह विधवा हो गई। महेंद्र ने हँस कर कहा, 'गनीमत थी कि शादी नहीं की।'

कोई तीन साल बाद माँ-बेटे में फिर एक बात हो रही थी।

'बेटा, लोग तो मेरी ही शिकायत करते हैं।'

'क्यों भला, तुमने लोगों का ऐसा क्या बिगाड़ा है?'

'बहू के आने से बेटा पराया न हो जाए, मैं इसी डर से तेरी शादी नहीं करती- लोग यही कहा करते हैं।'

महेंद्र ने कहा, 'डर तो होना ही चाहिए। मैं माँ होता, तो जीते-जी लड़के का विवाह न करता। लोगों की शिकायतें सुन लेता।'

माँ हँस कर बोलीं - 'सुनो, जरा इसकी बातें सुन लो।'

महेंद्र बोला - 'बहू तो आ कर लड़के को अपना बना ही लेती है। फिर इतना कष्ट उठाने वाली माँ अपने आप दूर हो जाती है। तुम्हें यह चाहे जैसा लगे मुझे तो ठीक नहीं लगता।'

चाची बोलीं, 'यह तुम्हारी ज्यादाती है, बेटे! जब की जो बात हो, वही अच्छी लगती है। माँ का दामन छोड़ कर अब घर-गृहस्थी बसाने का समय आ गया है। अब नादानी अच्छी नहीं लगती, उल्टे शर्म आती है।'

राजलक्ष्मी को यह बात अच्छी नहीं लगी। इस सिलसिले में उन्होंने जो कुछ कहा, वह जैसा हो मगर स्वर भीगा तो नहीं था। बोलीं- 'मेरा बेटा अगर और लड़कों की अपेक्षा अपनी माँ को ज्यादा स्नेह करता है, तो तुम्हें शर्म क्यों लगती है, मँझली बहू? कोख का लड़का होता तो समझ में आता।'

राजलक्ष्मी को लगा, निपूती बेटे के सौभाग्य वाली से ईर्ष्या कर रही है।

मँझली बहू ने कहा - 'तुमने बहू लाने की चर्चा चलाई इसीलिए यह बात निकल गई, वर्ना मुझे क्या हक है?'

राजलक्ष्मी बोलीं - 'मेरा बेटा अगर विवाह नहीं करता, तो तुम्हारी छाती क्यों फटती है! ठीक तो है, लड़के की जैसे आज तक देख-भाल करती आई हूँ, आइंदा भी कर लूँगी - इसके लिए और किसी की मदद की जरूरत न होगी।'

मँझली बहू आँसू बहाती चुपचाप चली गई। महेंद्र को मन-ही-मन इससे चोट पहुँची। कॉलेज से कुछ पहले ही लौट कर वह अपनी चाची के कमरे में दाखिल हुआ।

वह समझ रहा था कि चाची ने जो कुछ कहा था, उसमें सिवाय स्नेह के और कुछ न था। और उसे यह भी पता था कि चाची की एक भानजी है, जिसके माता-पिता नहीं हैं। वे चाहती हैं कि महेंद्र से उसका ब्याह हो जाए। हालाँकि शादी करना उसे पसंद न था। फिर भी चाची की यह आंतरिक इच्छा उसे स्वाभाविक और करुण लगती है। उसे मालूम था कि उनकी कोई संतान नहीं है।

महेंद्र कमरे में पहुँचा, तो दिन ज्यादा नहीं रह गया था। चाची अन्नपूर्णा खिड़की पर माथा टिकाए उदास बैठी थीं। बगल में कमरे में खाना ढँका रखा था। शायद उन्होंने खाया नहीं।

बहुत थोड़े में ही महेंद्र की आँखें भर आतीं। चाची को देख कर उसकी आँखें छलछला उठीं। करीब जा कर स्निग्ध स्वर से बोला - 'चाची!'

अन्नपूर्णा ने हँसने की कोशिश की। कहा, 'आ बेटे, बैठ!'

महेंद्र का मन भीगा हुआ था। चाची को दिलासा देने के विचार से वह अचानक बोल उठा, 'अच्छा चाची, तुमने अपनी भानजी की बात बताई थी, एक बार दिखा सकती हो?' कह कर महेंद्र डर गया।

अन्नपूर्णा हँस कर बोलीं - 'क्यों? शादी के लड्डू फूट रहे हैं बेटा!'

महेंद्र झट-पट बोल उठा - 'नहीं-नहीं, अपने लिए नहीं, मैंने बिहारी को राजी किया है। लड़की देखने का कोई दिन तय कर दो!'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'अहा, उस बेचारी का ऐसा भाग्य कहाँ? भला उसे बिहारी-जैसा लड़का नसीब हो सकता है!'

महेंद्र चाची के कमरे से निकला कि दरवाज़े पर माँ से मुलाकात हो गई। राजलक्ष्मी ने पूछा, 'क्यों रे, क्या राय-मशविरा कर रहा था?'

महेंद्र बोला - 'राय-मशविरा नहीं, पान लेने गया था।'

माँ ने कहा - 'तेरा पान तो मेरे कमरे में रखा है।'

महेंद्र ने कुछ नहीं कहा। चला गया।

राजलक्ष्मी अंदर गई और अन्नपूर्णा की रुलाई से सूजी आँखें देख कर लमहे-भर में बहुत सोच लिया। छूटते ही फुँफकार छोड़ी - 'क्यों मँझली बहू, महेंद्र के कान भर रही थी, है न?'

और बिना कुछ सुने तत्काल तेजी से निकल गई।

## 2

कन्या देखने की बात महेंद्र ने की जरूर मगर वह भूल गया, फिर भी अन्नपूर्णा नहीं भूलें। उन्होंने लड़की के अभिभावक, उसके बड़े चाचा को जल्दी में श्यामबाजार पत्र भेजा और एक दिन तय कर लिया।

महेंद्र ने जब सुना कि देखने का दिन पक्का हो गया है तो बोला - 'चाची, इतनी जल्दी क्यों की! बिहारी से तो मैंने अभी तक जिक्र नहीं किया।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'ऐसा भी होता है भला! अब अगर तुम लोग न जाओ तो वे क्या सोचेंगे?'

महेंद्र ने बिहारी को बुला कर सारी बातें बताईं, कहा - 'चलो तो सही, लड़की न जँची, तो तुम्हें मजबूर नहीं किया जाएगा।'

बिहारी बोला - 'यह मैं नहीं कह सकता। चाची की भानजी को देखने जाना है। देख कर मेरे मुँह से यह बात हर्गिज न निकल सकेगी कि लड़की मुझे पसंद नहीं।'

महेंद्र ने कहा - 'फिर तो ठीक ही है।'

बिहारी बोला - 'लेकिन तुम्हारी तरफ से यह ज्यादाती है, महेंद्र भैया! खुद तो हल्के हो जाँ और दूसरे के कंधे पर बोझ रख दें, यह ठीक नहीं। अब चाची का जी दुखाना मेरे लिए बहुत कठिन है।'

महेंद्र कुछ शर्मिदा और नाराज हो कर बोला - 'आखिर इरादा क्या है तुम्हारा?'

बिहारी बोला - 'मेरे नाम पर जब तुमने उन्हें उम्मीद दिलाई है तो मैं विवाह करूँगा। यह देखने जाने का ढोंग बेकार है।'

बिहारी अन्नपूर्णा की देवी की भाँति भक्ति करता था। आखिर अन्नपूर्णा ने खुद बिहारी को बुलवा कर कहा - 'ऐसा भी कहीं होता है, बेटे! लड़की देखे बिना ही विवाह करोगे। यह हर्गिज न होगा। लड़की पसंद न आए तो तुम हर्गिज 'हाँ' नहीं करोगे। समझे। तुम्हें मेरी कसम...!'

जाने के दिन कॉलेज से लौट कर महेंद्र ने माँ से कहा - 'जरा मेरा वह रेशमी कुरता और ढाका वाली धोती निकाल दो!'

माँ ने पूछा - 'क्यों, कहाँ जाना है?'

महेंद्र बोला - 'काम है, तुम ला दो, फिर बताऊँगा।'

महेंद्र थोड़ा सँवरे बिना न रह सका। दूसरे के लिए ही क्यों न हो, लड़की का मसला जवानी में सभी से थोड़ा सँवार करा ही लेता है।

दोनों दोस्त लड़की देखने निकल पड़े।

लड़की के बड़े चाचा अनुकूल बाबू ने अपनी कमाई से अपना बाग वाला तिमंजिला मकान मुहल्ले में सबसे ऊँचा बना रखा है।

गरीब भाई की माँ-बाप-विहीना बेटा को उन्होंने अपने ही यहाँ रखा है। उसकी मौसी अन्नपूर्णा ने कहा था, मेरे पास रहने दो। इससे खर्च की कमी जरूर होती, लेकिन गौरव की कमी के डर से अनुकूल राजी न हुए। यहाँ तक कि मुलाकात के लिए भी कभी उसे मौसी के यहाँ नहीं जाने देते थे। अपनी मर्यादा के बारे में इतने ही सख्त थे वे।

लड़की के विवाह की चिंता का समय आया। लेकिन इन दिनों विवाह के विषय में 'यादशी भावना यस्य सिध्दर्भवति तादृशी' वाली बात लागू नहीं होती। चिंता के साथ-साथ लागत भी लगती। परंतु दहेज की बात उठते ही अनुकूल कहते, 'मेरी भी तो अपनी लड़की है, अकेले मुझसे कितना करते बनेगा।' इसी तरह दिन निकलते जा रहे थे। ऐसे में बन-सँवर कर खुशबू बिखेरते हुए रंग-भूमि में अपने दोस्त के साथ महेंद्र ने प्रवेश किया।

चैत का महीना। सूरज डूब रहा था। दुमंजिले का दक्षिणी बरामदा चिकने चीनी टाइलों का बना, उसी के एक ओर दोनों मेहमानों के लिए फल-फूल, मिठाई से भरी चाँदी की तश्तरियाँ रखी गईं। बर्फ के पानी-भरे गिलास जैसे ओस-बूँदों से झलमल। बिहारी के साथ महेंद्र सकुचाते हुए खाने बैठा। नीचे माली पौधों में पानी डाल रहा था और भीगी मिट्टी की सौंधी सुगंध लिए दक्खिनी बयार महेंद्र की धप-धप धुली चादर के छोर को हैरान कर रही थी। आसपास के दरवाजे के झरोखों की ओट से कभी-कभी दबी हँसी, फुसफुसाहट, कभी-कभी गहनों की खनखनाहट सुनाई दे रही थी।

खाना खत्म हो चुका तो अंदर की तरफ देखते हुए अनुकूल बाबू ने कहा - 'चुन्नी, पान तो ले आ, बेटा!'

जरा देर में संकोच से पीछे का दरवाजा खुल गया और सारे संसार की लाज से सिमटी एक लड़की हाथ में पानदान लिए अनुकूल बाबू के पास आ कर खड़ी हुई। वे बोले, 'शर्म काहे की बिटिया, पानदान उनके सामने रखो!'

उसने झुक कर काँपते हुए हाथों से मेहमानों के बगल में पानदान रख दिया। बरामदे के पश्चिमी छोर से डूबते हुए सूरज की आभा उसके लज्जित मुखड़े को मंडित कर गई। इसी मौके से महेंद्र ने उस काँपती हुई लड़की के करुण मुख की छवि देख ली।

बालिका जाने लगी। अनुकूल बाबू बोले- 'जरा ठहर जा, चुन्नी! बिहारी बाबू, यह है छोटे भाई अपूर्व की लड़की, अपूर्व तो चल बसा, अब मेरे सिवाय इसका कोई नहीं।'

और उन्होंने एक लंबी उसाँस ली।

महेंद्र का मन पसीज गया। उसने एक बार फिर लड़की की तरफ देखा।

उसकी उम्र साफ-साफ कोई न बताता। सगे-संबंधी कहते, बारह-तेरह होगी। यानी चौदह-पन्द्रह होने की संभावना ही ज्यादा थी। लेकिन चूँकि दया पर चल रही थी इसलिए सहमे-से भाव ने उसके नव-यौवन के आरंभ को जब्त कर रखा था।

महेंद्र ने पूछा - 'तुम्हारा नाम?'

अनुकूल बाबू ने उत्साह दिया - 'बता बेटा, अपना नाम बता!'

अपने अभ्यस्त आदेश-पालन के ढंग से झुक कर उसने कहा - 'जी, मेरा नाम आशालता है।'

'आशा!' महेंद्र को लगा, नाम बड़ा ही करुण और स्वर बड़ा कोमल है।

दोनों मित्रों ने बाहर सड़क पर आ कर गाड़ी छोड़ दी। महेंद्र बोला - 'बिहारी, इस लड़की को तुम हर्गिज मत छोड़ो।'

बिहारी ने इसका कुछ साफ जवाब न दिया। बोला - 'इसे देख कर इसकी मौसी याद आ जाती है। ऐसी ही भली होगी शायद!'

महेंद्र ने कहा - 'जो बोझा तुम्हारे कंधे पर लाद दिया, अब वह शायद वैसा भारी नहीं लग रहा है।'

बिहारी ने कहा - 'नहीं, लगता है तो ढो लूँगा।'

महेंद्र बोला - 'इतनी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत है? तुम्हें बोझा लग रहा हो तो मैं उठा लूँ।'

बिहारी ने गंभीर हो कर महेंद्र की तरफ ताका। बोला - 'सच? अब भी ठीक-ठीक बता दो! यदि तुम शादी कर लो तो चाची कहीं ज्यादा खुश होंगी- उन्हें हमेशा पास रखने का मौका मिलेगा।'

महेंद्र बोला - 'पागल हो तुम! यह होना होता तो कब का हो जाता।'

बिहारी ने कोई एतराज न किया। चला गया और महेंद्र भी यहाँ-वहाँ भटक कर घर पहुँच गया।

माँ पूरियाँ निकाल रही थीं। चाची तब तक अपनी भानजी के पास से लौट कर नहीं आई थीं।

महेंद्र अकेला सूनी छत पर गया और चटाई बिछा कर लेट गया। कलकत्ता की ऊँची अट्टालिकाओं के शिखरों पर शुक्ल सप्तमी का आधा चाँद टहल रहा था। माँ ने खाने के लिए बुलाया, तो महेंद्र ने अलसाई आवाज में कहा - 'छोड़ो, अब उठने को जी नहीं चाहता।'

माँ ने कहा - 'तो यहीं ले आऊँ?'

महेंद्र बोला - 'आज नहीं खाऊँगा। मैं खा कर आया हूँ।'

माँ ने पूछा - 'कहाँ खाने गया था?'

महेंद्र बोला - 'बाद में बताऊँगा।'

वे लौटने लगीं तो थोड़ा सोचते हुए महेंद्र ने कहा - 'माँ! खाना यहीं ले आओ।'

### 3

रात में महेंद्र ठीक से सो नहीं पाया। तड़के ही वह बिहारी के घर पहुँच गया। बोला - 'यार, मैंने बड़ी ध्यान से सोचा और देखा कि चाची यही चाहती है कि शादी मैं ही करूँ।'

बिहारी बोला - 'इसके लिए सोचने की जरूरत नहीं थी। यह बात तो वे खुद कई बार कह चुकी हैं।'

महेंद्र बोला - 'तभी तो कहता हूँ, मैंने आशा से विवाह न किया तो उन्हें दुःख होगा।'

बिहारी बोला - 'हो सकता है।'

महेंद्र ने कहा, 'मेरा खयाल है, यह तो ज्यादाती होगी।'

'हाँ! बात तो ठीक है।' बिहारी ने कहा - 'यह बात थोड़ी देर से आपकी समझ में आई। कल आ जाते तो अच्छा होता।'

महेंद्र - 'एक दिन बाद ही आया, तो क्या बुरा हो गया।'

विवाह की बात पर मन की लगाम को छोड़ना था कि महेंद्र के लिए धीरज रखना कठिन हो गया। उसके मन में आया- इस बारे में बात करने का तो कोई अर्थ नहीं है। शादी हो ही जानी चाहिए।

उसने माँ से कहा - 'अच्छा माँ, मैं विवाह करने के लिए राजी हूँ।'

माँ मन-ही-मन बोलीं- 'समझ गई, उस दिन अचानक क्यों मँझली बहू अपनी भानजी को देखने चली गई। और क्यों महेंद्र बन-ठन कर घर से निकला।'

उनके अनुरोध की बार-बार उपेक्षा होती रही और अन्नपूर्णा की साजिश कारगर हो गई, इस बात से वह नाराज हो उठीं। कहा - 'अच्छा, मैं अच्छी-सी लड़की को देखती हूँ।'

आशा का जिक्र करते हुए महेंद्र ने कहा - 'लड़की तो मिल गई।'

राजलक्ष्मी बोली - 'उस लड़की से विवाह नहीं हो सकता, यह मैं कहे देती हूँ।'

महेंद्र ने बड़े संयत शब्दों में कहा - 'क्यों माँ, लड़की बुरी तो नहीं है।'

राजलक्ष्मी - 'उसके तीनों कुल में कोई नहीं। ऐसी लड़की से विवाह रच कर कुटुंब को सुख भी न मिल सकेगा।'

महेंद्र - 'कुटुंब को सुख मिले न मिले, लड़की मुझे खूब पसंद है। उससे शादी न हुई तो मैं दुखी हो जाऊँगा।'

लड़के की जिद से राजलक्ष्मी और सख्त हो गई। वह अन्नपूर्णा से भिड़ गई - 'एक अनाथ से विवाह करा कर तुम मेरे लड़के को फँसा रही हो। यह हरकत है।'

अन्नपूर्णा रो पड़ी - 'उससे तो शादी की कोई बात ही नहीं हुई, उसने तुम्हें क्या कहा, इसकी मुझे जरा भी खबर नहीं।'

राजलक्ष्मी इसका रत्ती- भर यकीन न कर सकी।

अन्नपूर्णा ने बिहारी को बुलवाया और आँसू भर कर कहा - 'तय तो सब तुमसे हुआ था, फिर तुमने पासा क्यों पलट दिया? मैं कहे देती हूँ शादी तो तुम्हें ही करनी पड़ेगी। यह बेड़ा तुम न पार करोगे तो मुझे बड़ी शर्मिंदगी उठानी होगी। वैसे लड़की अच्छी है।'

बिहारी ने कहा - 'चाची, तुम्हारी बात मंजूर है। वह तुम्हारी भानजी है, फिर मेरे 'ना' करने की कोई बात ही नहीं। लेकिन महेंद्र...'

अन्नपूर्णा बोली - 'नहीं-नहीं बेटे, महेंद्र से उसका विवाह किसी भी हालत में न होगा। यकीन मानो, तुमसे विवाह हो, तभी मैं ज्यादा निश्चित हो सकूँगी। महेंद्र से रिश्ता हो यह मैं चाहती भी नहीं।'

बिहारी बोला - 'तुम्हीं नहीं चाहती तो कोई बात नहीं।'

और वह राजलक्ष्मी के पास जा कर बोला - 'माँ, चाची की भानजी से मेरी शादी पक्की हो गई। सगे-संबंधियों में तो कोई महिला है नहीं, इसलिए मैं ही खबर देने आया हूँ।'

राजलक्ष्मी - 'अच्छा! बड़ी खुशी हुई बिहारी, सुन कर। लड़की बड़ी भली है। तेरे लायक। इसे हाथ से जाने मत देना!'

बिहारी - 'हाथ से बाहर होने का सवाल ही क्या! खुद महेंद्र भैया ने लड़की पसंद करके रिश्ता पक्का किया है।'

इन झंझट से महेंद्र और भी उत्तेजित हो गया। माँ और चाची से नाराज हो कर वह मामूली-से हॉस्टल में जा कर रहने लगा।

राजलक्ष्मी रोती हुई अन्नपूर्णा के कमरे में पहुँची; कहा - 'मँझली बहू, लगता है, उदास हो कर महेंद्र ने घर छोड़ दिया, उसे बचाओ!'



अन्नपूर्णा बोलीं- 'दीदी, धीरज रखो, दो दिन के बाद गुस्सा उतर जाएगा।'

राजलक्ष्मी बोलीं- 'तुम उसे जानती नहीं बहन, वह जो चाहता है, न मिले तो कुछ भी कर सकता है। जैसे भी हो, अपनी बहन की लड़की से...'

अन्नपूर्णा- 'भला यह कैसे होगा दीदी, बिहारी से बात लगभग पक्की हो चुकी।'

राजलक्ष्मी बोली - 'हो चुकी, तो टूटने में देर कितनी लगती है?'

और उन्होंने बिहारी को बुलवाया। कहा - 'तुम्हारे लिए मैं दूसरी लड़की ढूँढ़ देती हूँ- मगर इससे तुम्हें बाज आना पड़ेगा।'

बिहारी बोला - 'नहीं माँ, यह नहीं होगा। सब तय हो चुका है।'

राजलक्ष्मी फिर अन्नपूर्णा के पास गई। बोलीं- 'मेरे सिर की कसम मँझली, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ... तुम्हीं बिहारी से कहो! तुम कहोगी तो बिगड़ी बन जाएगी।'

आखिर अन्नपूर्णा ने बिहारी से कहा - 'बेटा, तुमसे कुछ कहने का मुँह नहीं है, मगर लाचारी है क्या करूँ। आशा को तुम्हें सौंप कर ही मैं निश्चिंत होती, मगर क्या बताऊँ, सब तो तुम्हें पता है ही।'

बिहारी - 'समझ गया। तुम जो हुक्म करोगी, वही होगा। लेकिन फिर कभी किसी से विवाह करने का मुझसे आग्रह मत करना!'

बिहारी चला गया। अन्नपूर्णा की आँखें छलछला गईं। महेंद्र का अमंगल न हो, इस आशंका से उन्होंने आँखें पोंछ लीं। बार-बार दिल को दिलासा दिया- 'जो हुआ, अच्छा ही हुआ।'

और इस तरह राजलक्ष्मी-अन्नपूर्णा-महेंद्र में किल-किल चलते-चलते आखिर विवाह का दिन आया। रोशनी हँसती हुई जली, शहनाई उतनी ही मधुर बजी जितनी वह बजा करती है। यानी उसके दिल के साथ कोई न था।

सज-सँवर कर लज्जित और मुग्ध-मन आशा अपनी नई दुनिया में पहली बार आई। उसके कंपित कोमल हृदय को पता ही न चला कि उसके इस बसेरे में कहीं काँटा है। बल्कि यह सोच कर भरोसे और आनंद से उसके सारे ही संदेह जाते रहे कि इस दुनिया में एकमात्र माँ-जैसी अपनी मौसी के पास जा रही है।

विवाह के बाद राजलक्ष्मी ने कहा - 'मैं कहती हूँ, अभी कुछ दिन बहू अपने बड़े चाचा के घर ही रहे।'

महेंद्र ने पूछा - 'ऐसा क्यों, माँ?'

माँ ने कहा - 'तुम्हारा इम्तहान है। पढ़ाई-लिखाई में रुकावट पड़ सकती है।'

महेंद्र बोला - 'आखिर मैं कोई नन्हा-नादान हूँ! अपने भले-बुरे की समझ नहीं मुझे?'

राजलक्ष्मी- 'जो हो, साल-भर की ही तो बात है।'

महेंद्र ने कहा - 'इसके माँ-बाप रहे होते, तो मुझे कोई एतराज न होता लेकिन चाचा के यहाँ इसे मैं नहीं छोड़ सकता।'

राजलक्ष्मी (अपने आप)- 'बाप रे आप ही मालिक, सास कोई नहीं! कल शादी और आज ही इतनी हमदर्दी! आखिर हमारी भी तो शादी हुई थी। मगर तब ऐसी बेहयाई न थी।'

महेंद्र ने दृढ़ता से कहा - 'तुम बिलकुल मत सोचो, माँ! इम्तहान में कोई फर्क नहीं पड़ेगा।'

#### 4

आखिर राजलक्ष्मी असीम उत्साह से बहू को गृहस्थी के काम-काज सिखाने में जुट गई। भंडार, रसोई और पूजा-घर में आशा के दिन कटने लगे, रात को अपने साथ सुला कर वह उसके आत्मीय बिछोह की कमी को पूरा करने लगी।

काफी सोच-समझ कर अन्नपूर्णा आशा से दूर ही रहा करती। कोई अभिभावक जब खुद सारी ईख का रस चूसने लगता है, तब निराश बच्चे की रंजिश कम नहीं होती। महेंद्र की हालत भी वैसी ही हो गई। उसकी आँखों के सामने ही नव-युवती वधू का सारा मीठा रस गिरस्ती के कामों में निचुड़ता रहे, यह भला कैसे सहा जा सकता है।

अन्नपूर्णा जानती थी कि राजलक्ष्मी ज्यादाती कर रही है<sup>x</sup>। फिर भी उन्होंने कहा - 'क्यों बेटे, बहू को गृहस्थी के धंधे सिखाए जा रहे हैं; अच्छा ही तो है। आजकल की लड़कियों की तरह उपन्यास पढ़ना, कार्पेट बुनना और सिर्फ बाबू बने रहना क्या अच्छा है?'

महेंद्र उत्तेजित हो कर बोला - 'आजकल की लड़कियाँ आजकल की लड़कियों की तरह ही रहेंगी। वह चाहे भली हों, चाहे बुरी। मेरी स्त्री अगर मेरी ही तरह उपन्यास पढ़ कर रस ले सके तो इसमें क्या बुरी बात है। यह न तो परिहास की बात है न पछतावे की।'

अन्नपूर्णा के कमरे में बेटे की आवाज सुन कर राजलक्ष्मी सब छोड़ कर आ गई। रूखे स्वर में बोली- 'क्या मनसूबे बनाए जा रहे हैं?'

महेंद्र ने वैसे ही उत्तेजित भाव से कहा, 'मनसूबे क्या होंगे, बहू को घर में नौकरानी की तरह काम में न करने दूँगा।'

माँ ने अपनी तीखी जलन को दबा कर बड़े ही तीखे धीर भाव से कहा - 'आखिर उससे क्या कराना होगा?'

महेंद्र बोला - 'मैं उसे लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा।'

राजलक्ष्मी कुछ न बोली। तेजी से कदम बढ़ाती हुई चली गई और बहू का हाथ पकड़ कर खींचती हुई महेंद्र के पास ला कर बोली - 'यह रही तुम्हारी बहू, सिखाओ लिखना-पढ़ना।'

और अन्नपूर्णा की तरफ पलट कर गले में अँचल डाल कर कहा - 'माफ करो मँझली बहू, माफ करो! तुम्हारी भानजी की मर्यादा मेरी समझ में न आई। मैंने इसके कोमल हाथों में हल्दी लगाई है। अब तुम इसे धो-पोंछ कर

परी बना कर रखो- महेंद्र को सौंपो- ये आराम से लिखना-पढ़ना सीखे, नौकरानी का काम मैं करूँगी।'

राजलक्ष्मी अपने कमरे में चली गई और दरवाजा जोर से बंद कर लिया।

क्षोभ से अन्नपूर्णा जमीन पर बैठ गई। अचानक यह क्या हो गया, आशा के पल्ले नहीं पड़ा कि माजरा क्या है? महेंद्र नाराज हो गया। मन-ही-मन बोला - 'जो हुआ सो हुआ, अब से अपनी स्त्री का भार अपने हाथों में लेना पड़ेगा, नहीं तो जुल्म होगा।'

मन और कर्तव्य बोध दोनों मिल जाएँ तो अच्छा लगता है। पत्नी की उन्नति के चक्कर में महेंद्र रम गया। न तो उसे काम का ध्यान रहा न लोगों की परवाह।

घमंडी राजलक्ष्मी ने अपने आप कहा - 'अब अगर महेंद्र बीवी को ले कर मेरे दरवाजे पर सिर पीट कर जान दे दे तो भी मैं मुड़ कर नहीं देखूँगी। देखती हूँ, माँ को छोड़ कर बीवी के साथ कैसे रहेगा?'

दिन बीतने लगे। राजलक्ष्मी के दरवाजे पर किसी अनुत्पत्त के पाँवों की आहट न सुनाई पड़ी।

राजलक्ष्मी ने अपने मन में तय किया- 'अच्छा, माफी माँगने आएगा तो माफ कर दूँगी, नहीं तो कहाँ जाएगा। बहुत दुखी हो जाएगा बेचारा।' लेकिन माफी कोई माँगे तभी तो आप माफ कर सकते हैं। कोई माफी के लिए दहलीज पर आया ही नहीं। राजलक्ष्मी ने सोचा कि मैं ही जा कर उसे क्षमा कर आऊँगी। लड़का रुठ गया है तो क्या माँ भी रुठी रहे!

तिमंजिले पर एक कोने के छोटे-से कमरे में महेंद्र सोया करता था, वही उसकी पढ़ने की जगह भी थी। इधर कई दिनों से माँ ने उसके कपड़े सहेजने, बिस्तर बिछाने, झाड़ने-बुहारने में कोई दिलचस्पी नहीं ली। मातृ-स्नेह के जिन कर्तव्यों की वह आदी थीं, बहुत दिनों तक उन कामों को न करने से वही दुखी हो गई। उस दिन दोपहर को एकाएक मन में आया, 'अभी महेंद्र कॉलेज गया होगा, इसी बीच उसका कमरा ठीक कर आऊँ, लौट कर वह समझ जाएगा कि कमरे से माँ का हाथ फिरा है।'

सीढ़ियों से राजलक्ष्मी ऊपर गई। महेंद्र के कमरे में दरवाजे का एक पल्ला खुला था। सामने जाते ही मानो काँटा चुभ गया। चौंक कर ठिठक गई। देखा, फर्श पर महेंद्र लेटा है और दरवाजे की तरफ पीठ किए बहू धीरे-धीरे उसके पाँव सहला रही है। दोपहर की तेज धूप में खुले कमरे में दांपत्य लीला देख कर राजलक्ष्मी शर्म और धिक्कार से सिमट गई और चुपचाप नीचे उतर आई।

## 5

कुछ दिन सूखा पड़ने से नाज के जो पौधे सूख कर पीले पड़ जाते हैं, बारिश आने पर वे तुरंत बढ़ जाते हैं। आशा के साथ भी ऐसा ही हुआ। जहाँ उसका रक्त संबंध था, वहाँ वह कभी भी आत्मीयता का दावा न कर सकी, आज पराए घर में जब उसे बिन माँगे हक मिला, तो उसने इसे लेने में देर न की।

उस दिन दोपहर में राजलक्ष्मी नीचे उतर आई। उन्होंने सोचा अन्नपूर्णा को जगाया जाए। बोलीं- 'अरी ओ मँझली, जा कर देख जरा, तुम्हारी नवाब की बेटी नवाब के घर से कैसा पाठ पढ़ कर आई है! घर के बड़े-बूढ़े आज होते तो।'

अन्नपूर्णा ने कातर हो कर कहा - 'दीदी, अपनी बहू को तुम शिक्षा दो, या हुकूमत चलाओ, मुझे क्या? मुझसे क्यों कह रही हो।'

राजलक्ष्मी धनुष की तनी डोरी-सी टंकार उठीं- 'हूँ, मेरी बहू! जब तक तुम मंत्री हो, वह मुझे कैसे मान सकती है।'

यह सुन कर अन्नपूर्णा पैर पटकती हुई महेंद्र के कमरे में पहुँच गई। आशा से बोलीं- 'तू इस तरह से मेरा सिर नीचा करेगी री, मुँहजली! शर्म नहीं, हया नहीं, समय-असमय का खयाल नहीं, बूढ़ी सास पर गृहस्थी का सारा बोझ डाल कर तुम यहाँ आराम फरमा रही हो? मेरा ही नसीब जला कि मैं तुझे इस घर में ले आई।'

कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और आशा भी सिर झुकाए आँचल के छोर को नाखून से नोचती हुई चुपचाप रोने लगी।

महेंद्र ने कहा - 'यह देखो, इसके लिए मैं स्लेट, बही, किताब सब खरीद लाया हूँ। इसे मैं लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा, चाहे लोग मेरी निंदा करें।'

अन्नपूर्णा बाली - 'ठीक है, लेकिन यह क्या तमाम दिन? शाम के बाद घंटा-आधा घंटा पढ़ लिया बस! घंटा-आधा घंटा पढ़ना ही तो काफी होगा।'

महेंद्र - 'इतना आसान नहीं है चाची, पढ़ने-लिखने में समय लगता है।'

अन्नपूर्णा खीझ कर चली गई। आशा भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। महेंद्र दरवाजा रोक कर खड़ा हो गया - उसने आशा की गीली आँखों की विनती न मानी। वैसे आशा को नहीं लगता कि लिखना-पढ़ना जरूरी भी है, फिर भी वह अपने पति की खातिर किताबों पर एकबारगी झुक कर सिर हिलाती हुई बताई चीजें याद करती रहती। कमरे के कोने में छोटी-सी मेज पर डॉक्टरी की किताब खोले मास्टर साहब कुर्सी पर बैठे होते, बीच-बीच में कनखियों से छात्रा को देखते रहते। अचानक अपनी किताब बंद करके आवाज दी- 'चुन्नी!' यह आशा का ही घरेलू नाम था।

चौंक कर आशा ने उधर देखा। वह बोला, 'जरा लाओ तो किताब देखूँ, कहाँ पढ़ रही हो? आशा को लगा जाँच होगी और उसमें पास होने की उम्मीद कम ही थी। आगे-आगे पाठ और पीछे सपाट, कुछ यही हाल था। एक हाथ से उसकी कमर को कस कर लपेट कर दूसरे हाथ से किताब पकड़ कर पूछा - 'आज कितना पढ़ गई- देखूँ तो।'

जितनी पंक्तियों पर वह सरसरी निगाह फेर गई थी, दिखा दिया। महेंद्र ने अचरज से कहा - 'ओह, इतना पढ़ गई! मैंने कितना पढ़ा, बताऊँ?'

और अपनी किताब के किसी अध्याय का शीर्षक-भर दिखा दिया। अचरज से आँखें बड़ी-बड़ी करके आशा ने पूछा - 'तो इतनी देर से कर क्या रहे थे?'

उसकी ठोड़ी पकड़ कर महेंद्र ने कहा - 'मैं किसी के बारे में सोच रहा था; और जिसके बारे में सोच रहा था, वह दीमक का वर्णन पढ़ने में मशगूल थी!'

इस बे-वजह शिकायत का सटीक जवाब आशा दे सकती थी, लेकिन प्रेम की प्रतियोगिता में झूठी हार मान लेनी पड़ती है।

ऐसे ही एक रोज महेन्द्र मौजूद नहीं था। मौका पा कर आशा पढ़ने बैठ गई कि अचानक कहीं से आ कर उसने आँखें मीच लीं और किताब छीन कर कहने लगा, 'बे-रहम, मैं नहीं होता हूँ तो तुम मेरे बारे में सोचती तक नहीं। किताबों में डूब जाती हो!'

आशा ने कहा - 'तुम मुझे गँवार बनाए रखोगे?'

महेन्द्र ने कहा - 'तुम्हारी कृपा से अपनी ही विद्या कौन आगे बढ़ रही है।' बात आशा को लग गई। फौरन चल देने का उपक्रम करती बोली - 'मैंने तुम्हारी पढ़ाई में ऐसी कौन-सी रुकावट डाली है?'

उसका हाथ थाम कर महेन्द्र ने कहा - 'यह तुम नहीं समझोगी। मुझे भूल कर तुम जितनी आसानी से पढ़-लिख लेती हो, तुम्हें भूल कर उतनी आसानी से मैं नहीं पढ़-लिख पाता।'

शिक्षक ही जब शिक्षा की सबसे बड़ी बाधा हो तो छात्रा की क्या मजाल कि विद्या के वन में राह बना कर चल सके। कभी-कभी मौसी की झिड़की याद आती और चित्त विचलित हो जाता। सास को देख कर शर्म से गड़ जाती लेकिन सास उसे किसी काम को न कहती। अपने मन से उनकी मदद करना चाहती तो वह पढ़ाई के हर्जे की बात कह कर वापस भेज देती।

आखिर अन्नपूर्णा ने आशा से कहा - 'तेरी जो पढ़ाई चल रही है, वह तो देख ही रही हूँ, महेन्द्र को क्या डॉक्टरी का इम्तहान न देने दोगी?'

यह सुन कर आशा ने अपने जी को कड़ा किया। महेन्द्र से कहा - 'तुम्हारे इम्तहान की तैयारी नहीं हो पा रही है। आज से मैं नीचे मौसी के कमरे में रहा करूँगी।'

इस उम्र में ऐसा कठोर संन्यास-व्रत! सोने के कमरे से एकबारगी मौसी के कमरे में निर्वासन! ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करते हुए उसकी आँखों के कोनों में आँसू झलक पड़े, बेबस होठ काँप उठे और गला रूँध गया। महेन्द्र बोला - 'बेहतर है, चाची के कमरे में ही चलो! मगर तब उन्हें हमारे कमरे में ऊपर आना पड़ेगा।'

ऐसा एक गंभीर प्रस्ताव मजाक बन गया, आशा इससे नाराज हुई। महेन्द्र ने कहा - 'इससे तो अच्छा है कि तुम रात-दिन मुझे आँखों-आँखों में रखो और निगरानी करो! फिर देखो कि मेरी इम्तहान की पढ़ाई चलती है कि नहीं।'

बड़ी आसानी से आखिर यही बात तै हो गई। यह निगाहों के पहरें वाला काम कैसा चलता था, विस्तार से बताने की जरूरत नहीं। इतना ही कह देना काफी होगा कि उस साल महेन्द्र इम्तहान में फेल हो गया और चारुपाठ के लम्बे वर्णन के बावजूद पुरुभुज के बारे में आशा की अनिभिज्ञता दूर न हो सकी।

उनका यह अनूठा पठन-पाठन एकबारगी निर्विघ्न चलता रहा हो, ऐसा नहीं। बीच-बीच में बिहारी आकर बड़ी गड़बड़ मचाता। 'महेन्द्र भैया' की पुकार मचाकर वह आसमान सिर पर उठा लेता। महेन्द्र को उसके सोने के कमरे की माँद में खींचकर बाहर किये बिना उसे चैन न पड़ता। महेन्द्र की वह बड़ी लिहाड़ी लेता कि वह अपनी पढ़ाई में

ढिलाई कर रहा है। आशा से कहता, "भाभी, निगल जाने से हजम नहीं होता, चबा-चबाकर खाना चाहिए। अभी तो सारा भोजन एक ही कौर में निगल रही हो, बाद में हाजमे की गोली ढूँढ़े नहीं मिलेगी, हाँ।"

महेन्द्र कहता - "चुन्नी, इसकी सुनो ही मत। इसे हमारे सुख से रश्क हो रहा है।"

बिहारी कहता - "सुख जब तुम्हारी मुट्ठी में है, तो इस तरह से भागो कि औरों को रश्क न हो।"

महेन्द्र जवाब देता - "औरों के रश्क से सुख जो होता है! चुन्नी जरा-सी चूक से मैं तुम्हें इस गधे के हाथों सोंप रहा था।"

बिहारीलाल आँखों में कहता - 'चुप!'

इन बातों से आशा बिहारी पर मन-ही-मन कुढ़ जाती। कभी बिहारी उसकी शादी की बात चली थी, इसी से वह बिहारी से खिंची-खिंची रहती - यह बिहारी समझता था और महेन्द्र इसी बात का मजाक किया करता।

राजलक्ष्मी बिहारी से दुखड़ा रोया करतीं। बिहारी कहता, "माँ, कीड़े जब घर बनाते हैं, तो उतना खतरा नहीं रहता, लेकिन जब उसे काटकर वे उड़ जाते हैं, तो उन्हें लौटाना मुश्किल है। किसे यह पता था कि वह तुम्हारे बन्धन को इस तरह तोड़ फेंकेगा।"

महेन्द्र के फेल होने की खबर से राजलक्ष्मी धधक उठीं, जैसे गर्मियों की आकस्मिक आग लहक उठती है। लेकिन उनकी जब जलन और चिनगी भेगनी पड़ी अन्नपूर्णा को। उनका तो सोना-खाना हराम हो गया।

## 6

एक दिन बारिश हो रही थी। बादल घिरे थे। ऐसे में बदन पर एक सुवासित महीन चादर और जुही की माला गले में डाले महेन्द्र मगन-मन अपने सोने के कमरे में पहुँचा। अचानक आशा को चौंका देने के विचार से- जूतों की आवाज न होने दी। झाँक कर देखा, पूरब की खुली खिड़की से पानी के छींटे लिए हवा के तीखे झोंके कमरे में आ रहे हैं, दीया बुझ गया है और आशा नीचे बिछावन पर पड़ी रो रही है।

महेन्द्र जल्दी से उसके करीब गया और पूछा - 'क्या बात है?' वह दूने आवेग से रौने लगी। बड़ी देर के बाद महेन्द्र को जवाब मिला कि 'मौसी से और बर्दाश्त न हो सका। वह अपने फुफेरे भाई के यहाँ चली गई।'।

महेन्द्र के मन में आया, 'गई तो गई, लेकिन बदली की ऐसी सुहानी साँझ को खराब कर गई।'।

अंत में सारा गुस्सा माँ पर आया। वही तो इन सारे अनर्थों की जड़ है।

महेन्द्र ने कहा - 'हम भी वहीं चले जाएँगे, जहाँ चाची गई हैं। देखते हैं, माँ किससे झगड़ती है?'

और उसने नाहक ही शोर-गुल के साथ असबाब बाँधने के लिए कुली को बुलाना शुरू कर दिया।

राजलक्ष्मी समझ गई। धीरे-धीरे महेन्द्र के पास आई। शांत स्वर में पूछा - 'कहाँ जा रहा है?'

महेंद्र ने पहले कोई जवाब ही न दिया। दो-तीन बार पूछे जाने पर बताया- 'चाची के पास।'

राजलक्ष्मी बोली - 'अरे तो मैं ही उन्हें यहाँ बुला देती हूँ।'

राजलक्ष्मी उसी समय पालकी पर सवार हो कर अन्नपूर्णा के घर गई। गले में कपड़ा डाल कर हाथ जोड़ते हुए कहा - 'खुश हो मँझली बहू, मुझे माफ करो!'

अन्नपूर्णा ने जल्दी-जल्दी उनके पैरों की धूल ली। कातर स्वर में कहा - 'दीदी, मुझे दोषी क्यों बना रहीं? तुम जैसा हुक्म दोगी, वैसा ही करूँगी।'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'तुम चली आई हो, तो मेरे बेटा-पतोहू भी घर छोड़ कर यहीं आ रहे हैं।'

कहते-कहते वह रो पड़ी।

जिठानी-देवरानी दोनों घर लौट आईं। तब भी वर्षा हो रही थी। अन्नपूर्णा जब महेंद्र के कमरे में पहुँची, आशा का रोना थम चुका था। महेंद्र बातों से उसे हँसाने की कोशिश कर रहा था। आसार थे कि बदलियाँ यूँ ही नहीं गुजर जाएँगी।

अन्नपूर्णा ने कहा - 'चुन्नी, तू मुझे घर में भी न रहने देगी और कहीं जाऊँ तो भी पीछे लग जाएगी। क्या मेरे लिए कहीं चैन नहीं!'

आशा चौंक पड़ी।

महेंद्र बड़ा ही खीझ कर बोला - 'क्यों चाची, चुन्नी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'बहू की ऐसी बेहयाई बर्दाश्त न हो सकी तभी यहाँ से चली गई थी। फिर अपनी सास को रुला कर मुँहजली ने मुझे क्यों बुलवाया?'

जीवन के इस अध्याय में माँ-चाची ऐसी विघ्नकारिणी होती हैं, महेंद्र को इसका पता न था।

दूसरे दिन राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुलवा कर कहा - 'बेटा बिहारी, तुम एक बार महेंद्र से पूछ कर देखो, जमाने से गाँव नहीं गए। मैं एक बार बारासात जाना चाहती हूँ।'

बिहारी ने कहा - 'जमाने से नहीं गई तो क्या हुआ? खैर, मैं पूछ कर देखता हूँ। मगर वह राजी भी होगा, ऐसा नहीं लगता।'

महेंद्र ने कहा - 'जन्म-भूमि को देखने की इच्छा जरूर होती है। लेकिन माँ का वहाँ ज्यादा दिन न रहना ही अच्छा होगा। बरसात के मौसम में वह जगह अच्छी नहीं।'

महेंद्र बड़ी आसानी से राजी हो गया, इससे बिहारी कुढ़ गया। बोला - 'माँ अकेली जाएँगी, वहाँ उनकी देख-भाल कौन करेगा?'

'भाभी को भी साथ भेज दो न?'

कह कर बिहारी हँसा।

बिहारी के इस गहरे व्यंग्य से कुंठित हो कर महेंद्र ने कहा - 'मेरे लिए यह कोई मुश्किल है क्या?'

मगर बात इससे आगे न बढ़ी।

बिहारी इसी तरह आशा के मन को विमुख कर दिया करता और यह जान कर कि आशा इससे कुढ़ती है, उसे मजा आता।

कहना बेकार होगा, राजलक्ष्मी जन्म-भूमि के दर्शन के लिए उतनी बेताब न थी। गर्मी के दिनों में जब नदी का पानी सूख जाता है, तो मल्लाह कदम-कदम पर लग्गी से थाह लेता है कि कहाँ कितना पानी है। राजलक्ष्मी ने सोचा न था कि उनके बरसात जाने का प्रस्ताव इतनी जल्दी मंजूर हो जाएगा। सोचा, 'अन्नपूर्णा और मेरे दोनों के घर से बाहर जाने में फर्क है।'

अन्नपूर्णा भीतरी मतलब समझ गई। कहने लगी, 'दीदी जाएँगी, तो मैं भी न रह सकूँगी।'

महेंद्र ने माँ से कहा - 'सुन लिया तुमने? तुम जाओगी तो चाची भी जाएँगी। अपनी गृहस्थी का क्या होगा फिर?'

राजलक्ष्मी विद्वेष के जहर से जर्जर हो कर बोलीं- 'तुम भी जा रही हो मँझली? तुम्हारे जाने से काम कैसे चलेगा? नहीं, तुम्हें रहना ही पड़ेगा।'

राजलक्ष्मी उतावली हो गई। दूसरे दिन दोपहर को ही तैयार हो गई। महेंद्र ही उन्हें पहुँचाने जाएगा, इसमें किसी को भी शुबहा न था। लेकिन रवाना होते वक्त मालूम पड़ा महेंद्र ने माँ के साथ जाने के लिए प्यादे और दरबान तक कर रखे हैं।

बिहारी ने पूछा - 'तुम अभी तक तैयार नहीं हुए क्या, भैया?'

महेंद्र ने लजा कर कहा - 'मेरे कॉलेज की...'

बिहारी ने कहा - 'खैर, तुम छोड़ दो! माँ को मैं वहाँ छोड़ आता हूँ।'

महेंद्र मन-ही-मन नाराज हुआ। अकेले में आशा से बोला, 'सचमुच, बिहारी ने ज्यादाती शुरू कर दी है। वह यह दिखाना चाहता है कि वह माँ का खयाल मुझसे ज्यादा रखता है।'

अन्नपूर्णा को रह जाना पड़ा। परंतु लाज, कुढ़न और खीझने से वह सिमटी-सी रहीं। चाची में यह दुराव देख कर महेंद्र नाराज हुआ और आशा भी रूठी रही।



राजलक्ष्मी मैके पहुँचीं। तय था कि उन्हें छोड़ कर बिहारी आ जाएगा लेकिन वहाँ की हालत देख कर वह ठहर गया।

राजलक्ष्मी के मैके में महज दो-एक बूढ़ी विधवाएँ थीं। चारों तरफ घना जंगल और बाँस की झाड़ियाँ; पोखर का हरा-भरा पानी; दिन-दोपहर में सियार की 'हुआँ-हुआँ' से राजलक्ष्मी की रूह तड़प उठती।

बिहारी ने कहा - 'माँ, जन्म-भूमि यह जरूर है, मगर इसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। तुम्हें यहाँ अकेली छोड़ कर लौट जाऊँ तो मुझे पाप लगेगा।'

राजलक्ष्मी के प्राण भी काँप उठे। ऐसे में विनोदिनी भी आ गई। विनोदिनी के बारे में पहले ही कहा जा चुका है। महेन्द्र से, और कभी बिहारी से उसके विवाह की बात चली थी। विधना की लिखी भाग्य-लिपि से जिस आदमी से उसका विवाह हुआ वह जल्दी ही चल बसा।

उसके बाद से विनोदिनी घने जंगल में अकेली लता-सी, इस गाँव में घुट कर जी रही थी। वही अनाथ, राजलक्ष्मी के पास आई, उन्हें प्रणाम किया और उनकी सेवा-जतन में जुट गई। सेवा तो सेवा है, घड़ी को आलस नहीं। काम की कैसी सफाई, कितनी अच्छी रसोई, कैसी मीठी बातचीत! राजलक्ष्मी कहतीं- 'काफी देर हो चुकी बिटिया, तुम भी थोड़ा-सा खा लो जा कर!'

वैसे राजलक्ष्मी उसकी फुफिया सास थीं।

अपने प्रति बड़ी लापरवाही दिखाती हुई विनोदिनी कहती- 'हमारे दुःख सहे शरीर में नाराजगी की गुंजाइश नहीं। अहा, कितने दिनों के बाद तो अपनी जन्म-भूमि आई हो! यहाँ है भी क्या? काहे से तुम्हारा आदर करूँ!'

बिहारी तो दो ही दिनों में मुहल्ले-भर का बुजुर्ग बन बैठा। कोई दवा-दारू, तो कोई मुकदमे के राय-मशविरे के लिए आता; कोई उसकी इसलिए खुशामद करता कि किसी बड़े दफ्तर में उसके बेटे को नौकरी दिला दे; कोई उससे अपनी दरखास्त लिखवाता। बूढ़ों की बैठक और कुली-मजूरों के ताड़ी के अड़्डे तक वह समान रूप से जाता-आता। सभी उसका सम्मान करते।

गँवई-गाँव में आए कलकत्ता के उस नवयुवक के निर्वासन-दंड को भी विनोदिनी अंतःपुर की ओट से हल्का करने की भरसक कोशिश किया करती। मुहल्ले का चक्कर काट कर जब भी वह आता तो पाता कि किसी ने उसके कमरे को बड़े जतन से सहेज-सँवार दिया है; काँसे के एक गिलास में कुछ फूलों-पत्तों का गुच्छा सजा रखा है और सिरहाने के एक तरफ पढ़ने योग्य कुछ किताबें रख दी हैं। किताबों में किसी महिला के हाथ से बड़ी कंजूसी के साथ छोटे अक्षरों में नाम लिखा है।

गाँवों में अतिथि-सत्कार का जो आम तरीका है, उससे इसमें थोड़ा फर्क था। उसी का जिक्र करते हुए बिहारी जब तारीफ करता, तो राजलक्ष्मी कहतीं- 'और ऐसी लड़की को तुम लोगों ने कबूल नहीं किया!'

हँसते हुए बिहारी कहता- 'बेशक हमने अच्छा नहीं किया माँ, ठगा गया। मगर एक बात है, विवाह न करके ठगाना बेहतर है, ब्याह करके ठगाता तो मुसीबत थी!'

राजलक्ष्मी के जी में बार-बार यही आता रहा, 'यही तो मेरी पतोहू होने योग्य थी। क्यों न हुई भला!'

राजलक्ष्मी कलकत्ता लौटने का जिक्र करतीं कि विनोदिनी की आँखें छलछला उठतीं। कहतीं- 'आखिर तुम दो दिन के लिए क्यों आई, बुआ? अब तुम्हें छोड़ कर मैं कैसे रहूँगी?'

भावावेश में राजलक्ष्मी कह उठतीं- 'तू मेरी बहू क्यों न हुई बेटी, मैं तुझे कलेजे से लगाए रखती।'

सुन कर शर्म से विनोदिनी किसी बहाने वहाँ से हट जाती। राजलक्ष्मी इस इंतजार में थीं कि कलकत्ता से विनीत अनुरोध का कोई पत्र आएगा। माँ से अलग महेंद्र आज तक इतने दिन कभी न रहा था। माँ के इस लंबे बिछोह ने निश्चय ही उसके सब्र का बाँध तोड़ दिया होगा। राजलक्ष्मी बेटे के गिड़गिड़ाहट-भरे पत्र का इंतजार कर रही थीं।

बिहारी के नाम महेंद्र का पत्र आया। लिखा था, 'लगता है माँ बहुत दिनों के बाद मैके गई हैं, शायद बड़े मजे में होंगी।'

राजलक्ष्मी ने सोचा, 'महेंद्र ने रूठ कर ऐसा लिखा है। बड़े मजे में होंगी। महेंद्र को छोड़ कर बदनसीब माँ भला सुख से कैसे रह सकती है?'

'अरे बिहारी, उसके बाद क्या लिखा है उसने, पढ़ कर सुना तो जरा!'

बिहारी बोला - 'और कुछ नहीं लिखा है, माँ!'

और उसने पत्र को मुट्ठी से दबोच कर एक कापी में रखा और कमरे में एक ओर धप्प से पटक दिया।

राजलक्ष्मी अब भला थिर रह सकती थीं! हो न हो, महेंद्र माँ पर इतना नाराज हुआ है कि बिहारी ने पढ़ कर सुनाया नहीं।

गौ के थन पर चोट करके बछड़ा जिस प्रकार दूध और वात्सल्य का संचार करता है, उसी प्रकार महेंद्र की नाराजगी ने आघात पहुँचा कर राजलक्ष्मी के घुटे वात्सल्य को उभार दिया। उन्होंने महेंद्र को माफ कर दिया। बोलीं- 'अहा, अपनी बहू को ले कर महेंद्र सुखी है, रहे- जैसे भी हो, वह सुख से रहे। जो माँ उसे छोड़ कर कभी एक पल नहीं रह सकती, वही उसे छोड़ कर चली आई है, इसलिए महेंद्र अपनी माँ से नाराज हो गया है।'

रह-रह कर उनकी आँखों में आँसू उमड़ने लगे।

उस दिन वह बार-बार बिहारी से जा कर कहती रहीं- 'बेटे, तुम जा कर नहा लो। यहाँ बड़ी बदपरहेजी हो रही है तुम्हारी।'

राजलक्ष्मी अड़ गई- 'नहीं-नहीं, नहा डालो!'

बार-बार जिद करने से बिहारी नहाने गया। उसका कमरे से बाहर कदम रखना था कि झपट कर राजलक्ष्मी ने वह किताब उठा ली और उसके अंदर से पत्र को निकाला।

पढ़ कर विनोदिनी सुनाने लगी। शुरू में महेंद्र ने माँ के बारे में लिखा था, लेकिन बड़ा मुख्तसर। बिहारी ने जितना-भर सुनाया, उससे ज्यादा कुछ नहीं।

उसके बाद आशा का जिक्र था। मौज-मजे और खुशियों से विभोर हो कर लिखा था।

विनोदिनी ने थोड़ा पढ़ा और शर्म से थक गई। कहा - 'यह क्या सुनोगी, बुआ!'

राजलक्ष्मी का स्नेह से अकुलाया चेहरा पल-भर में जम कर पत्थर-जैसा सख्त हो गया। जरा देर चुप रहीं, फिर बोलीं- 'रहने दो!'

और चिट्ठी उन्होंने वापस न ली। चली गई।

चिट्ठी ले कर विनोदिनी को क्या रस मिला, वही जाने। पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें दोपहर के तपे बालू-सी जलने लगीं- उसका निःश्वास रेगिस्तान की बयार - जैसा गर्म हो उठा।

'कैसा है महेंद्र, कैसी है आशा और इन दोनों का प्रेम ही कैसा है!' यही बात उसके मन को मथने लगी। पत्र को गोद में डाले, पाँव फैलाए, दीवार से पीठ टिका कर सामने ताकती वह देर तक सोचती रहीं।

महेंद्र की वह चिट्ठी बिहारी को फिर ढूँढ़े न मिली।

अचानक उसी दिन दोपहर में अन्नपूर्णा आ धमकीं। किसी बुरी खबर की आशंका से राजलक्ष्मी का कलेजा सहसा काँप उठा। कुछ पूछने की उन्हें हिम्मत न हुई। वह फक पड़े चेहरे से अन्नपूर्णा की तरफ ताकती रह गई।

अन्नपूर्णा ने कहा - 'कलकत्ता का समाचार ठीक है।'

राजलक्ष्मी ने पूछा - 'फिर तुम यहाँ कैसे?'

अन्नपूर्णा बोलीं- 'दीदी, अपनी गृहस्थी तुम जा कर समहालो। संसार से अपना जी उचट गया है। मैं काशी जाने की तय करके निकली हूँ। तुम्हें प्रणाम करने आ गई। जान में, अनजान में जाने कितने कसूर हो गए हैं माफ करना। और तुम्हारी बहू....' कहते-कहते आँखों से आँसू उफन उठे - 'वह नादान बच्ची है, उसके माँ नहीं। वह दोषी हो चाहे निर्दोष, तुम्हारी है।'

अन्नपूर्णा और न बोल सकीं।

राजलक्ष्मी जल्दी से उनके नहाने-खाने का इंतजाम करने गई। बिहारी को मालूम हुआ तो वह घोष की मठिया से दौड़ आया। अन्नपूर्णा को प्रणाम करके बोला - 'ऐसा भी होता है भला, हम सबको निर्दयी की तरह ठुकरा कर तुम चल दोगी?' आँसू जब्त करके अन्नपूर्णा ने कहा - 'मुझे अब फेरने की कोशिश मत करो, बिहारी, तुम लोग सुखी रहो, मेरे लिए कुछ रुका न रहेगा।'

बिहारी कुछ क्षण चुप रहा। फिर बोला - 'महेंद्र की किस्मत खोटी है, उसने तुम्हें रुखसत कर दिया।'

अन्नपूर्णा चौंक कर बोलीं - 'ऐसा मत कहो, मैं उस पर बिल्कुल नाराज नहीं हूँ। मेरे गए बिना उनका भला न होगा।'

बहुत दूर ताकता हुआ बिहारी चुप बैठा रहा। अपने आँचल से सोने की दो बालियाँ निकाल कर अन्नपूर्णा बोलीं- 'बेटे, ये बालियाँ रख लो! बहू आए तो मेरा आशीर्वाद जता कर इन्हें पहना देना!'

बालियाँ मस्तक से लगा कर आँसू छिपाने के लिए बिहारी बगल के कमरे में चला गया।

जाते वक्त बोलीं- 'मेरे महेंद्र और मेरी आशा का ध्यान रखना, बिहारी!'

राजलक्ष्मी के हाथों उन्होंने एक कागज दिया। कहा - 'ससुर की जायदाद में मेरा जो हिस्सा है, वह मैंने इस वसीयत में महेंद्र को लिख दिया है। मुझे हर माह सिर्फ पन्द्रह रुपए भेज दिया करना!'

झुक कर उन्होंने राजलक्ष्मी के पैरों की धूल माथे लगाई और तीर्थ-यात्रा को निकल पड़ीं।

## 8

आशा को डर लगा। क्या हुआ यह? माँ चली गई, मौसी चली गई। उन दोनों का सुख मानो सबको खल रहा है, अब उसकी बारी है शायद। सूने घर में दांपत्य की नई प्रेम-लीला उसे न जाने कैसी लगने लगी।

संसार के कठोर कर्तव्यों से प्रेम को फूल के समान तोड़ कर अलग कर लेने पर यह अपने ही रस से अपने को संजीवित नहीं रख पाता, धीरे-धीरे मुरझा कर विकृत हो जाता है। आशा को भी ऐसा लगने लगा कि उनके अथक मिलन में एक थकान और कमजोरी है। वह मिलन रह-रह कर मानो शिथिल हो जाता है- प्रेम की जड़ अगर कामों में न हो तो भोग का विकास पूर्ण और स्थायी नहीं होता।

महेंद्र ने भी अपने विमुख संसार के खिलाफ विद्रोह करके अपने प्रेमोत्सव के सभी दीपों को एक साथ जला कर बड़ी धूम-धाम से सूने घर के अमंगल में ही उसने आशा से कहा - 'तुम्हें इन दिनों हो क्या गया है, चुन्नी! मौसी चली गई तो इस तरह मुँह लटकाए क्या रहती हो? हम दोनों के प्रेम में क्या सभी प्रेम समाए हुए नहीं हैं?'

आशा दुखी हो कर सोचती- 'अपने प्रेम में कोई अपूर्णता तो है। मैं तो मौसी की बात सोचा करती हूँ। सास चली गई हैं, इसका मुझे डर लगता है।'

घर के काम-काज अब ठीक से नहीं चलते। नौकर-चाकर कन्नी काटने लगे। 'तबीयत खराब है' कह कर नौकरानी एक दिन नहीं आई- रसोई पकाने वाला ब्राह्मण शराब पी कर गायब हो गया। महेंद्र ने आशा से कहा - 'खूब मजा आया, आज हम लोगों ने खुद ही रसोई बनाई।'

गाड़ी से महेंद्र न्यू मार्केट गया। कौन-सी चीज कितनी चाहिए, इसका उसे कुछ भी पता न था, बहुत-सा सामान उठा कर खुशी-खुशी घर लौटा। उन चीजों का किया क्या जाए, यह आशा भी ठीक से न जानती थी। प्रयोग में ही दिन के दो-तीन बज गए और बहुत-से अजीबो-गरीब खाना तैयार करके महेंद्र को बड़ा मजा आया। लेकिन आशा महेंद्र के उस मजे में साथ न दे सकी। अपनी अज्ञता पर उसे मन-ही-मन बड़ी लज्जा और कुढ़न हुई।

कमरे की चीजें इस कदर बिखर गई थीं किज रूरत पर कुछ पाना ही कठिन था। महेन्द्र की डॉक्टरी वाली छुरी एक दिन तरकारी काटने के काम आई और कूड़ों के ढेर में जा छिपी; जिस पर वह नोट लिखा करता था, वह कापी पंखे का काम करके अंत में रसोई की राख में आराम करने लगी।

इन अनहोनी घटनाओं से महेन्द्र के कौतूहल की सीमा न रही, लेकिन आशा को इससे तकलीफ होने लगी। बे-तरतीबी के बहाव में सारी गृहस्थी को बहा कर हँसते हुए उसी के साथ बहते चलना उस बालिका को विभीषिका जैसा लगा।

एक दिन शाम को दोनों बरामदे में बैठे थे। सामने खुली छत। बारिश खुल जाने से कलकत्ता की दूर तक फैली इमारतों की चोटियाँ चाँदनी में नहा रही थीं। बगीचे से मौलसिरी के बहुत-से ओदे फूल ला कर आशा माथा झुकाए माला गूँथ रही थी। महेन्द्र खींचातानी करके, रुकावट डाल कर, उल्टा-सीधा सुना कर नाहक ही झगड़ा करना चाह रहा था। बे-वजह इस तरह सताए जाने के कारण आशा उसे झिड़कना चाहती थी कि किसी बनावटी उपाय से उसका मुँह दबा कर महेन्द्र उसकी कहन को अँकुराते ही कुचल रहा था।

किसी पड़ोसी के पिंजरे की कोयलिया कूक उठी। महेन्द्र ने उसी दम अपने सिर पर झूलते हुए पिंजरे को देखा। अपनी कोयल पड़ोसी की कोयल की बोली चुपचाप कभी नहीं सह सकती- आज वह चुप क्यों है?

महेन्द्र ने कहा - 'तुम्हारी आवाज से लजा गई है।'

उत्कंठित हो कर आशा ने कहा - 'आज इसे हो क्या गया।'

आशा ने निहोरा करके कहा - 'मजाक नहीं, देखो न, उसे क्या हुआ है?'

महेन्द्र ने पिंजरे को उतारा। पिंजरे पर लिपटे हुए कपड़ों को हटाया। देखा, कोयल मरी पड़ी थी। अन्नपूर्णा के जाने के बाद खानसामा छुट्टी पर चला गया था। कोयल का किसी ने खयाल ही न किया था।

देखते-ही-देखते आशा का चेहरा फीका पड़ गया। उसकी अगुलियाँ चल न सकीं- फूल यों ही पड़े रह गए। चोट तो महेन्द्र को भी लगी, लेकिन नाहक ही रस भंग होगा, इसलिए उसने इसे हँस कर टाल जाने की कोशिश की। बोला - 'अच्छा ही हुआ। मैं इधर डॉक्टरी को निकलता और उधर यह कमबख्त 'कू-कू' करके तुम्हें जलाया करती थी।'

कह कर अपने बाहु-पाश में लपेट कर उसने आशा को अपने पास खींच लेना चाहा। अपने को धीरे-धीरे उसके बंधन से छुड़ा कर आशा ने आँचल से मौलसिरी के सब फूल गिरा दिए। बोली - 'छिः-छिः अब देर क्यों? जल्दी जा कर माँ को ले आओ!'

## 9

इतने में दुतल्ले से महेन्द्र भैया की पुकार सुनाई पड़ी। 'अरे रे, आओ... आओ...' महेन्द्र ने जवाब दिया। बिहारी की आवाज से उसका हृदय खिल उठा। विवाह के बाद वह इन दोनों के सुख का बाधक बन कर कभी-कभी आता रहा है, आज वही बाधा सुख के लिए निहायत जरूरी लगी।

बिहारी का आना आशा को भी अच्छा लगा। वह जरा घूँघट खींच कर जल्दी से उठ बैठी। महेन्द्र बोला - 'अरे, जा कहाँ रही हो, और कोई नहीं, बिहारी आ रहा है।'

आशा ने कहा - 'भाई साहब के लिए नाश्ता ले आऊँ?'

एक काम का मौका आ गया, इससे आशा का अवसाद कुछ हल्का हो गया।

सास की कुशल के लिए घूँघट काढ़े वह खड़ी रही। बिहारी से अभी भी वह बोलती-चालती नहीं।

अंदर कदम रखते ही बिहारी ने कहा - 'तौबा-तौबा! कैसे कवित्व के बीच आ टपका मैं! खैर फिक्र न करो भाभी, मैं बैरंग वापस जाता हूँ।'

आशा ने महेन्द्र की तरफ ताका। महेन्द्र ने पूछा - 'माँ की क्या खबर है, बिहारी?'

बिहारी बोला - 'माँ और चाची की चर्चा अभी क्यों भाई, काफी समय है।'

Such a night was not made for sleep nor for mothers and aunts.

कह कर बिहारी लौट पड़ा। महेन्द्र ने उसे जबर्दस्ती खींच कर बिठा दिया। बिहारी ने कहा - 'देख लो भाभी, कसूर मेरा नहीं है- यह मुझे जबरन खींच लाया है- पाप इसने किया है, अभिशाप मुझ पर न पड़े।'

आशा से कोई जवाब देते नहीं बनता, इसलिए ऐसी बातों से वह खीझ उठती है। बिहारी जान कर उसे तंग करता है।

बिहारी ने कहा - 'घर की हालत आँखों से देख रहा हूँ - अब भी क्या माँ को लाने का वक्त नहीं आया?'

महेन्द्र ने कहा - 'बेशक! हम तो उन्हीं की राह देख रहे हैं।'

बिहारी ने कहा - 'यही जताते हुए उन्हें पत्र लिखने में तुम्हें नाम का समय लगेगा, लेकिन उनकी खुशी का अंत न रहेगा। भाभी, उन दो मिनटों के लिए महेन्द्र भैया को तुम्हें फुरसत देनी पड़ेगी, मेरी दरखास्त रही।'

आशा बिगड़ कर चली गई। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

महेन्द्र बोला - 'जाने किस शुभ घड़ी में तुम दोनों की भेंट हुई थी - आखिर सुलह नहीं ही हो सकी- वही खट-पट।'

बिहारी ने कहा - 'तुम्हें तुम्हारी माँ ने तो बर्बाद किया ही, पत्नी भी बर्बाद करने पर तुली है। यही मुझसे नहीं देखा जाता, इसी से जब-तब कुछ कह देता हूँ।'

महेन्द्र - 'मगर नतीजा क्या होता है उसका?'

बिहारी - 'नतीजा तुम्हारे लिए कुछ खास नहीं होता, मेरे लिए थोड़ा-बहुत होता है।'

बिहारी ने खुद बैठ कर महेंद्र से चिट्ठी लिखवाई और उस पत्र के साथ दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को लेने गया। राजलक्ष्मी समझ गई, चिट्ठी बिहारी ने लिखवाई है- मगर फिर भी उससे रहा न गया। साथ-साथ विनोदिनी आई।

लौट कर उन्होंने घर की जो बदतर हालत देखी- तमाम यों ही गन्दा पड़ा, तितर-बितर- इसलिए बहू के प्रति उनका मन और भी खराब हो गया।

लेकिन बहू में यह कैसा परिवर्तन! वह छाया-सी उनके पीछे डोलती-फिरती। कहें, न कहें, हरदम हर काम में हाथ बँटाने को मुस्तैद। आ-आ कर वह कह उठतीं- 'छोड़ो-छोड़ो, मिट्टी पलीद करके रख दोगी तुम! जो काम आता नहीं, उसमें हाथ क्या डालना?'

राजलक्ष्मी के जी में आया, 'हो न हो, अन्नपूर्णा के चले जाने से ही बहू की यह तरक्की हुई है।' लेकिन फिर मन में आया, 'महेंद्र सोचेगा, चाची थीं तो मैं बीवी के साथ निष्कंटक मौज करता था और माँ का पहुँचना था कि विरह का दुःख शुरू हो गया। इससे यही साबित होगा कि चाची उसकी शुभैषी रहीं, माँ सुख का काँटा है। रहने दो, अपने को क्या पड़ी।'

इधर कहीं महेंद्र दिन को बुला भेजता तो बहू जाने में आनाकानी करती। राजलक्ष्मी ही झिड़का करतीं- 'महेंद्र बुला रहा है, तुम टाल जाती हो! ज्यादा दुलार पाने का यही नतीजा होता है। जाओ, सब्जियाँ मैं देख लूँगी।'

फिर शुरू होता वही स्लेट-पेंसिल और 'चारुपाठ' का झूठा नाटक। प्रेम के अकारण अभियोग से एक-दूसरे को दोषी ठहराना - किसका प्रेम ज्यादा वजनी है, इस पर निरर्थक वाद-विवाद। वर्षा के दिन को रात और चाँदनी रात को दिन बनाना।

ऐसे में एक दिन विनोदिनी आशा के गले से लिपट कर बोली - 'बहन, तुम्हारा सौभाग्य अक्षय हो... जुग-जुग! लेकिन चूँकि मैं दुखिया हूँ, इसलिए क्या मेरी तरफ एक नजर ताकना भी गुनाह है?'

छुटपन से ही अपने आत्मीय के यहाँ पराई-सी पत्नी थी, इसलिए लोगों के सामने आशा सदा संकुचित रहा करती। जुड़ी भौंहें और तीखी निगाह, अनिन्द्य मुखड़ा और भरी हुई जवानी लिए जब विनोदिनी आई, तो खुद बढ़ कर उससे परिचय करने की हिम्मत आशा की न हुई।

आशा ने गौर किया, राजलक्ष्मी से विनोदिनी को किसी भी तरह का संकोच नहीं। और मानो आशा को दिखा-दिखा कर राजलक्ष्मी भी उसका काफी आदर करतीं। यह भी देखा, घर के कामकाज में विनोदिनी पटु है, प्रभुत्व मानो उसके लिए बहुत ही सहज है, स्वभाव-सिद्ध नौकर-नौकरानियों से काम लेने, झिड़कने-फटकारने और हुक्म देने में उसे जरा सी हिचक नहीं होती। यह सब देख-भाल कर विनोदिनी के आगे आशा अपने को बहुत छोटा समझने लगी।

वही सर्वगुण-संपन्न विनोदिनी जब खुद उससे नेह की भीख माँगने आई, तो उसका आनंद चौगुना हो उमड़ पड़ा। जादूगर के माया-तरु की तरह उसके प्रेम का बीज एक ही दिन में अकुराया, पत्तों से लद गया और फल-फूल उठा।

आशा ने कहा - 'हम-तुम सखियाँ हुईं, एक कोई नाम रख छोड़ें हम अपना।'

विनोदिनी ने हँस कर पूछा - 'क्या आखिर?' आशा ने बहुत-से अच्छे-अच्छे नाम गिनाए-हरसिंगार, कदम्ब, मौलसिरी...

विनोदिनी बोली - 'ये सारे-के-सारे बड़े पुराने पड़ गए। इन दुलार के नामों की कोई कद्र नहीं।'

आशा ने पूछा - 'फिर तुम्हें कौन-सा पसंद है?'

हँस कर विनोदिनी ने कहा - 'आँख की किरकिरी।'

आशा कोई मीठा-सा नाम ही चाहती थी, लेकिन विनोदिनी की पसंद से उसने दुलार की इस गाली को ही कबूल कर लिया। बाँहों से उसकी गर्दन लपेट कर बोली - 'मेरी आँख की किरकिरी!'

और हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई।

## 11

आशा को एक साथी की बड़ी जरूरत थी। प्यार का त्योहार भी महज दो आदमियों से नहीं मनता - मीठी बातों की मिठाई बाँटने के लिए गैरों की भी जरूरत पड़ती है।

भूखी-प्यासी विनोदिनी भी नई बहू से प्रेम के इतिहास को शराबी की दहकती हुई सुरा के समान कान फैला कर पीने लगी। सूनी दोपहरी में माँ जब सोती होतीं, घर के नौकर-चाकर निचले तल्ले के आरामगाह में छिप जाते, बिहारी की ताकीद से महेंद्र कुछ देर के लिए कॉलेज गया होता और धूप से तपी नीलिमा के एक छोर से चील की तीखी आवाज बहुत धीमी सुनाई देती, तो कमरे के फर्श पर अपने बालों को तकिए पर बिखेरे आशा लेट जाती और पेट के नीचे तकिया रख कर पट पड़ी विनोदिनी उसकी गुन-गुन स्वर से कही जाने वाली कहानी में तन्मय हो जाती- उसकी कनपटी लाल हो उठती, साँस जोर-जोर से चलने लगती।

विनोदिनी खोद-खोद कर पूछती और छोटी-से-छोटी बात भी निकाल लेती, एक ही बात कई बार सुनती, घटना खत्म हो जाती तो कल्पना करती; कहती - 'अच्छा बहन, कहीं ऐसा होता तो क्या होता और यह होता तो क्या करती?' इन अनहोनी कल्पनाओं की राह में सुख की बातों को खींच कर दूर तक ले जाना आशा को भी अच्छा लगता।

विनोदिनी कहती- 'अच्छा भई आँख की किरकिरी, तुझसे कहीं बिहारी बाबू का ब्याह हुआ होता तो?'

आशा - 'राम-राम, ऐसा न कहो! बड़ी शर्म आती है मुझे। हाँ, तुम्हारे साथ होता तो क्या कहने! चर्चा तो तुमसे होने की भी चली थी।'

विनोदिनी - 'मुझसे तो जाने कितनों की, कितनी ही बातें चलीं। न हुआ, ठीक ही हुआ। मैं जैसी हूँ, ठीक हूँ।'

आशा प्रतिवाद करती। वह भला यह कैसे कबूल कर ले कि विनोदिनी की अवस्था उससे अच्छी है। उसने कहा - 'जरा यह तो सोच देखो, अगर मेरे पति से तुम्हारा ब्याह हो जाता! होते-होते ही तो रह गया।'



होते-होते ही रह गया। क्यों नहीं हुआ? आशा का यह बिस्तर, यह पलँग सभी तो उसी का इंतजार कर रहे थे। उस सजे-सजाए शयन-कक्ष को विनोदिनी देखती और इस बात को किसी भी तरह न भुला पाती। इस घर की वह महज एक मेहमान है- आज उसे जगह मिली है, कल छोड़ जाना होगा।

तीसरे पहर विनोदिनी खुद अपनी अनूठी कुशलता से आशा का जूड़ा बाँध देती और जतन से श्रृंगार करके उसके पति के पास भेजा करती।

इस तरह खामखाह देर कर देना चाहती।

नाराज हो कर महेंद्र कहता, 'तुम्हारी यह सहेली तो टस से मस नहीं होना चाहती- घर कब जाएगी?'

उतावली हो आशा कहती, 'न-न, मेरी आँख की किरकिरी पर तुम नाराज क्यों हो। तुम्हें पता नहीं, तुम्हारी चर्चा उसे कितनी अच्छी लगती है - किस जतन से वह सजा-सँवार कर मुझे तुम्हारे पास भेजा करती है।'

राजलक्ष्मी आशा को कुछ करने-धरने न देतीं। विनोदिनी ने उसकी तरफदारी की, और उसे काम में जुटाया। विनोदिनी को आलस जरा भी नहीं था। दिन-भर एक-सी काम में लगी रहती। आशा को वह छुट्टी नहीं देना चाहती। एक के बाद दूसरा, वह कामों का कुछ ऐसा क्रम बनाती कि आशा के लिए जरा भी चैन पाना गैरमुमकिन था। आशा का पति छत वाले सूने कमरे में बैठा चिढ़ के मारे छटपटा रहा है- यह सोच कर विनोदिनी मन-ही-मन हँसती रहती। आशा अकुला कर कहती, 'भई आँख की किरकिरी, अब इजाजत दो, वह नाराज हो जाएँगे।'

झट विनोदिनी कहती, 'बस, जरा-सा। इसे खत्म करके चली जाओ! ज्यादा देर न होगी।' जरा देर में आशा फिर उद्विग्न हो कर कहती- 'न बहन, अब वह सचमुच ही नाराज होंगे। मुझे छोड़ दो, चलूँ मैं।'

विनोदिनी कहती, 'जरा नाराज ही हुए तो क्या। सुहाग में गुस्सा न मिले तो मुहब्बत में स्वाद नहीं मिलता- जैसे सब्जी में नमक-मिर्च के बिना।'

लेकिन नमक-मिर्च का मजा क्या होता है, यह विनोदिनी ही समझ रही थी- न थी सिर्फ उसके पास सब्जी। उसकी नस-नस में मानो आग लग गई। जिधर भी नजर करती, चिनगारियाँ उगलतीं उसकी आँखें। ऐसी आराम की गिरस्ती! ऐसे सुहाग के स्वामी! इस घर को तो मैं राजा की रिसायत, इस स्वामी को अपने चरणों का दास बना कर रखती। (आशा को गले लगा कर) 'भई आँख की किरकिरी, मुझे बताओ न, कल तुम लोगों में क्या बातें हुईं। तुमने वह कहा था, जो मैंने करने को कहा था? तुम लोगों के प्यार की बातें सुन कर मेरी भूख-प्यास जाती रहती है।'

## 12

एक दिन आखिर आजिज आ कर महेंद्र ने माँ से कहा - 'यह अच्छी बात है, माँ? दूसरे के घर की एक जवान विधवा को घर रख कर एक भारी जिम्मेदारी कंधे पर लाद लेने की क्या पड़ी है? जाने कब क्या मुसीबत हो?'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'अरे, यह तो अपने विपिन की बहू है, इसे मैं बिरानी थोड़े ही समझती हूँ।'

महेंद्र ने कहा - 'जो कहो, लेकिन यह अच्छा नहीं है। मेरी राय में इसे रखना ठीक नहीं।'

राजलक्ष्मी खूब जानती थीं कि महेंद्र की राय को ठुकराना आसान नहीं। इसलिए उन्होंने बिहारी से कहा - 'अरे बिहारी, तू एक बार महेंद्र को समझा कर देख! यह विपिन की बहू जब से यहाँ है, तभी से इस बुढ़ापे में मुझे थोड़ा आराम मिला है। वह पराई हो या जो हो, किसी से कभी ऐसी सेवा नहीं मिली।'

बिहारी ने कोई जवाब न दिया। वह जा कर महेंद्र से बोला, 'यार, विनोदिनी की भी सोचते हो?'

महेंद्र ने हँस कर कहा - 'सोच कर रात की नींद हराम है। अपनी भाभी से पूछ देखो, विनोदिनी के ध्यान से इन दिनों और सब ध्यान टूट गया है।'

घूँघट की आड़ से आशा ने महेंद्र को चुपचाप धमकाया। बिहारी ने कहा - 'अच्छा, दूसरा विषवृक्ष<sup>1</sup>!' चुन्नी उसे यहाँ से निकाल बाहर करने को छटपटा रही है। घूँघट से आशा की आँखों ने फिर उसे झिड़का।

बिहारी ने कहा - 'निकाल ही बाहर करो तो लौट आने में कितनी देर लगती है! अरे, विधवा का विवाह रचा दो, विष के दाँत एकबारगी टूट जाएँगे।'

महेंद्र बोला - 'विवाह तो कुन्द का भी कर दिया गया था।'

बिहारी ने कहा - 'इस उपमा को अभी छोड़ो! विनोदिनी की बात कभी-कभी मैं सोचा करता हूँ। तुम्हारे यहाँ तो जिंदगी-भर यह रह नहीं सकती और इनके यहाँ का जंगल किसी के लिए भी वनवास है।'

विनोदिनी आज तक महेंद्र के सामने नहीं गई, पर बिहारी ने उसको देखा है। उसने सिर्फ इतना समझा है कि यह स्त्री जंगल में छोड़ने लायक नहीं है। लेकिन शिखा घर के दीए में एक तरह से जलती है, और दूसरी तरह वह घर को आग भी लगा देती है। महेंद्र के मन में यह शंका भी थी।

महेंद्र ने इस बात पर बिहारी की खूब खिल्ली उड़ाई। बिहारी ने भी इसका जवाब दिया। लेकिन उसके मन ने समझा था कि यह स्त्री खिलवाड़ करने की नहीं, उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

राजलक्ष्मी ने विनोदिनी को सावधान कर दिया। कहा - 'देखना बेटा, बहू से इतनी मिठास न रखना! तुम गाँव-घर से गृहस्थ के यहाँ रही हो- आजकल के चाल-चलन को नहीं जानतीं। बुद्धिमती हो, समझ-बूझ कर चलना!'

इसके बाद विनोदिनी ने आशा को दूर-ही-दूर रखा। कहा - 'मैं भई होती कौन हूँ! मेरी जैसी स्त्री से अगर आप अपनी इज्जत बचा कर चलना नहीं चाहते तो कब क्या हो जाएगा, कौन कह सकता है?'

आशा निहोरे-विनती करती, गिड़गिड़ाती, रोती-पीटती, लेकिन विनोदिनी एकदम अडिग। बातों से आशा आकंठ भर उठी, मगर विनोदिनी ने तरजीह न दी।

इधर महेंद्र के बाजू शिथिल हो गए। जो अनियम और उच्छृंखलता पहले उसे कौतुक-सी लगती थी, वही अब धीरे-धीरे उसे दुखाने लगी। आशा की सांसारिक अपटुता से उसे खीझ होती, लेकिन जबान खोल कर कहता नहीं।

प्यार की जलती हुई सेज पर आँख खोल कर धीरे-धीरे घर-गृहस्थी के धंधों, लिखाई-पढ़ाई में ध्यान दे कर महेंद्र ने करवट बदली। अपनी चिकित्सा-संबंधी किताबों का उसने जाने कहाँ-कहाँ से उद्धार किया और अपने कोट-पतलून

को धूप दिखाने की चेष्टा की।

1. बंकिमचंद्र चटर्जी का उपन्यास

>>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

आँख की किरकिरी  
रवींद्रनाथ टैगोर

[अनुक्रम](#)

## दूसरा भाग

[पीछे](#)  
[आगे](#)

## 13

विनोदिनी जब बिलकुल ही पकड़ में न आई, तो आशा को एक तरकीब सूझी। बोली, 'भई आँख की किरकिरी, तुम मेरे पति के सामने क्यों नहीं आती, भागती क्यों फिरती हो?'

विनोदिनी ने बड़े संक्षेप में लेकिन तेज स्वर में कहा - 'छि:।'

आशा बोली - 'क्यों? माँ से मुझे पता चला है, तुम हम लोगों की गैर नहीं हो।'

गंभीर हो कर विनोदिनी ने कहा - 'संसार में अपना-पराया कोई नहीं होता। जो अपना मानता है, वही अपना है और जो पराया समझता है, वह अपना होते हुए भी पराया है।'

आशा ने देखा, यह बात लाजवाब है। वास्तव में उसके पति विनोदिनी के साथ ज्यादाती करते हैं, सचमुच उसे गैर समझते हैं और नाहक ही उससे खीझा करते हैं।

उस दिन साँझ को आशा ने बड़े नाजो-अंदाज से पति के सामने छेड़ा - 'तुम्हें मेरी आँख की किरकिरी से परिचय करना पड़ेगा।'

महेंद्र हँस कर बोला, 'तुम्हारे साहस की बलिहारी!'

आशा ने पूछा - 'क्यों, इसमें डर किस बात का?'

महेंद्र - 'अपनी सखी की जिस गजब की खूबसूरती का जिक्र किया करती हो वह तो खतरे से खाली नहीं।'

आशा ने कहा - 'खैर, वह मैं देख लूँगी। तुम उससे बोलोगे या नहीं, इतना बता दो।'

विनोदिनी को देखने का कौतूहल महेंद्र को भी था। फिर भी यह आग्रह उसे ठीक नहीं लग रहा था।

हृदय के नाते के बारे में महेंद्र के उचित-अनुचित का आदर्श औरों की अपेक्षा कुछ कड़ा था। इसके पहले वह विवाह की बात नहीं सुनना चाहता था, इसलिए कि कहीं माँ के अधिकार पर आँच न आए। और अब आशा के संबंध की रक्षा वह इस तरह से करना चाहता कि किसी पराई औरत के लिए मन में जरा-सा कौतूहल न पैदा हो। प्यार के मामले में वह बड़ा वैसा-सा है, लेकिन पक्का- इस बात का उसे मन-ही-मन नाज भी था। यहाँ तक कि वह चूँकि बिहारी को अपना दोस्त कहता, इसलिए दूसरे किसी को भी वह मित्र नहीं मानना चाहता। कोई उसकी ओर खिंच कर आता भी तो वह जबर्दस्ती उसकी ओर से लापरवाही दिखाता और बिहारी के सामने उस बेचारे का मजाक उड़ाते हुए अपनी उदासी जाहिर करता। बिहारी कहीं एतराज करता तो महेंद्र कहता, 'यह तुमसे हो सकता है। कहीं भी जाते हो, तुम्हें मित्रों की कमी नहीं रहती, मगर मैं हर किसी को मित्र नहीं मान सकता।'

ऐसे महेंद्र का मन जब इधर एक अपरिचिता की ओर कौतूहल और व्यग्रता से बरबस खिंच जाया करता, तो अपने आदर्श के आगे वह नीचा हो जाता। सो वह विनोदिनी को घर से हटाने के लिए अपनी माँ को तंग करने लगा।

महेंद्र ने कहा - 'रहने भी दो चुन्नी, तुम्हारी किरकिरी से गप-शप की फुर्सत कहाँ है अपने पास? पढ़ने के वक्त किताबों से नाता और फुर्सत की घड़ियों के लिए तुम हो- इस बीच... !'

दोनों के बीच में विनोदिनी के लिए सुई की नोक-भर भी जगह छोड़ने को महेंद्र तैयार नहीं था, यह बात उसके गर्व का विषय बन बैठी। उसका वह गर्व आशा से सहा नहीं जाता, पर आज उसने हार कबूल कर ली। कहा - 'खैर, मेरी ही खातिर तुम मेरी किरकिरी से बोलो!'

आशा के आगे अपने प्रेम की दृढ़ता और श्रेष्ठता प्रमाणित करके अंत में बड़ी कृपा करके वह विनोदिनी से बात करने को राजी हुआ।

दूसरे दिन सुबह आशा गई और सोई हुई विनोदिनी से लिपट गई। विनोदिनी बोली - 'यह कैसा गजब! चकोरी आज चाँद छोड़ कर मेघ के दरबार में?'

आशा ने कहा - 'तुम लोगों की यह कविता मेरी समझ में नहीं आती, फिर गोबर में नाहक घी क्या डालना! जो इन बातों का जवाब दे सकता है, चल कर एक बार उसे सुनाओ!'

विनोदिनी ने पूछा - 'आखिर वह रसिक है कौन?'

आशा ने कहा - 'तुम्हारे देवर- मेरे पति। मजाक नहीं, तुमसे बातें करने के लिए वह मुझे परेशान कर रहे हैं।'

विनोदिनी अपने मन में बोली - 'बीवी के हुक्म से मेरी बुलाहट हुई है और मैं सिर पर पाँव रख कर भागी जाऊँगी- ऐसी समझा है मुझे!'

विनोदिनी किसी भी तरह तैयार न हुई। आशा पति के सामने बड़ी लज्जित हुई।

मन-ही-मन महेंद्र इस पर बड़ा नाराज हुआ, 'मेरे सामने आने में एतराज! मुझे दूसरे मामूली लोगों-सा समझती है? और कोई होता तो जाने कब, कितने बहानों से विनोदिनी से मिलता, बोलता-चालता। लेकिन महेंद्र ने इसकी कभी

कोशिश तक न की, इसी से विनोदिनी को क्या मेरा परिचय नहीं मिला? वह एक बार भली तरह जान लेती तो समझ जाती कि मुझमें और दूसरे किसी पुरुष में क्या फर्क है।'

दो दिन पहले विनोदिनी भी कुढ़न से बोली थी, 'इतने दिनों से इस घर में हूँ और महेंद्र एक बार मुझे देखने की कोशिश भी नहीं करता! बुआ के कमरे में होती हूँ तब भी वह किसी बहाने अपनी माँ के पास नहीं आता। ऐसी लापरवाही किस बात की। मैं कोई जड़ पदार्थ हूँ! मैं आदमी नहीं... स्त्री नहीं! कहीं वह मुझे जान पाता तो पता चलता कि उसकी प्यारी चुन्नी और मुझमें क्या फर्क है!'

आशा ने तरकीब सुझाई- 'तुम कॉलेज गए हो, यह कह कर मैं उसे अपने कमरे में ले आऊँगी कि अचानक बाहर से तुम आ जाना! बस, कोई बस न चलेगा।'

महेंद्र ने पूछा - 'आखिर किस गुनाह के लिए उसे इतनी बड़ी सजा?'

आशा बोली - 'मुझे गुस्सा आ गया है- तुमसे मुलाकात करने में भी आपत्ति! उसकी अकड़ तोड़ कर ही रहूँगी।'

महेंद्र बोला - 'तुम्हारी प्यारी सखी को देखे बिना मैं मरा नहीं जा रहा हूँ। मैं यों चोरों की तरह मिलना नहीं चाहता।'

आशा ने महेंद्र का हाथ पकड़ कर विनती की- 'मेरे सिर की कसम तुम्हें, एक बार, बस एक बार तो तुम्हें यह करना ही पड़ेगा। जैसे भी हो, उसकी हेकड़ी तो भुलानी ही पड़ेगी। फिर तुम्हारा जैसा जी चाहे करना।'

महेंद्र चुप रहा। आशा बोली - 'मेरी आरजू है, मान जाओ!'

महेंद्र को भी ललक हो रही थी। इसीलिए बेहद उदासी दिखा कर वह सहमत हुआ।

शरत की धुली दोपहरी। महेंद्र के कमरे में विनोदिनी आशा को कार्पेट के जूते बनाना बता रही थी। आशा अनमनी-सी बार-बार बाहर ताक-ताक कर गिनती में भूल करके अपना बेहद सीधापन दिखा रही थी।

आखिर तंग आ कर विनोदिनी ने उसके हाथ का कार्पेट झपट कर गिरा दिया और कहा - 'यह तुम्हारे बस का नहीं, मैं चलती हूँ, काम पड़ा है।'

आशा ने कहा - 'बस, जरा देर और देखो, अब भूल नहीं होगी।'

आशा सीने से लग गई।

इतने में दबे पाँव महेंद्र आया और दरवाजे के पास विनोदिनी के पीछे खड़ा हो गया। आशा सिलाई पर आँखें गाड़े हुए ही धीरे-धीरे हँसने लगी।

विनोदिनी ने पूछा - 'एकाएक हँसी किस बात पर आ गई?'

आशा से और न रहा गया। वह खिलखिला पड़ी और विनोदिनी के बदन पर कार्पेट फेंक कर बोली, 'तुमने ठीक ही कहा, यह मेरे बस का नहीं।' और विनोदिनी से लिपट कर और जोर से हँसने लगी।

विनोदिनी पहले ही ताड़ गई थी। आशा की चंचलता और हाव-भाव से उससे छिपा कुछ न था। वह यह भी खूब जान गई थी कि महेंद्र कब चुपचाप उसके पीछे आ कर खड़ा हो गया। निरी नादान बन कर उसने अपने को आशा के आसान जाल में फँसने दिया।

अंदर आते हुए महेंद्र ने कहा - 'मैं बदनसीब ही इस हँसी से क्यों वंचित हूँ।'

चोंक कर विनोदिनी ने माथे पर कपड़े का पल्ला डाला और उठने लगी। आशा ने उसका हाथ धर दबाया।

महेंद्र ने कहा - 'या तो आप बैठिए, मैं चला जाता हूँ, या फिर आप भी बैठिए, मैं भी बैठता हूँ।'

जैसा कि आम तौर से औरतें करती हैं, छीना-झपटी, शोर-गुल करके विनोदिनी ने शर्म की धूम नहीं मचाई। उसने सहज ही सुर में कहा - 'आपके ही अनुरोध से बैठती हूँ, लेकिन मन-ही-मन अभिशाप न दीजिएगा।'

महेंद्र ने कहा - 'अभिशाप दूँगा। दूँगा कि आप में देर तक चलने की शक्ति न रह जाए।'

विनोदिनी ने कहा - 'इस अभिशाप से मैं नहीं डरती। क्योंकि आपका देर तक ज्यादा देर का नहीं होगा, शायद अब खत्म भी हो चला।'

और उसने फिर उठ कर खड़ा होना चाहा। आशा ने उसका हाथ थाम लिया। कहा - 'सिर की सौगंध तुम्हें, और कुछ देर बैठो!'

## 14

आशा ने पूछा, 'अब सच-सच बताना, मेरी आँख की किरकिरी कैसी लगी तुम्हें?'

महेंद्र ने कहा - 'बुरी नहीं।'

आशा बहुत ही क्षुब्ध हो कर बोली, 'तुम्हें तो कोई अच्छी ही नहीं लगती।'

महेंद्र - 'सिर्फ एक को छोड़ कर।'

आशा ने कहा - 'अच्छा, परिचय जरा जमने दो, फिर देखती हूँ, अच्छी लगती है या नहीं।'

महेंद्र बोला - 'जमने दो? यानी ऐसा लगातार चला करेगा रवैया?'

आशा ने कहा - 'भलमनसाहत के नाते भी तो लोगों से बोलना-चालना पड़ता है। एक दिन की भेंट के बाद ही अगर मिलना-जुलना बंद कर दो, तो क्या सोचेगी बेचारी? तुम्हारा हाल ही अजीब है। और कोई होता तो ऐसी स्त्री से दौड़ कर मिला करता और तुम हो कि आफत आ पड़ी मानो!'

औरों से अपने इस फर्क की बात सुन कर महेंद्र खुश हुआ। बोला - 'अच्छा यही सही। मगर ऐसी जल्दबाजी क्या? मैं कहीं भागा तो नहीं जा रहा हूँ, न तुम्हारी सखी को भागने की जल्दी है- लिहाजा, बीच-बीच में भेंट हुआ ही करेगी

और भेंट होने पर भलमनसाहत रखे, इतनी अकल तुम्हारे पति को है।'

महेंद्र ने सोचा था, अब से विनोदिनी किसी-न-किसी बहाने जरूर आ जाया करेगी। लेकिन गलत समझा था। वह पास ही नहीं फटकती कभी, अचानक जाते-आते भी कहीं नहीं मिलती।

अपनी स्त्री से वह इसका जिक्र भी न करता कि कहीं मेरा आग्रह न झलक पड़े। बीच-बीच में विनोदिनी से मिलने की स्वाभाविक और मामूली-सी इच्छा को छिपाए और दबाए रखने की कोशिश में उसकी अकुलाहट बढ़ने लगी। फिर विनोदिनी की उदासीनता उसे और उत्तेजित करने लगी।

विनोदिनी से भेंट होने के दूसरे दिन प्रसंगवश यों ही मजाक में महेंद्र ने आशा से पूछा - 'तुम्हारा यह अयोग्य पति तुम्हारी आँख की किरकिरी को कैसा लगा?'

महेंद्र को इसकी जबरदस्त आशा थी कि पूछने से पहले ही आशा से उसे इसका बड़ा ही अच्छा ब्यौरा मिलेगा। लेकिन सब्र करने का जब कोई नतीजा न निकला, तो ढंग से यह पूछ बैठा।

आशा मुश्किल में पड़ी। विनोदिनी ने कुछ भी नहीं कहा। इससे आशा अपनी सखी से नाराज हुई थी। बोली - 'ठहरो भी, दो-चार दिन मिल-जुल कर तो कहेगी। कल भेंट भी कितनी देर को हुई और बातें भी कितनी हो सकीं।'

महेंद्र इससे भी कुछ निराश हुआ और विनोदिनी के बारे में लापरवाही दिखाना उसके लिए और भी कठिन हो गया।

इसी बीच बिहारी आ पहुँचा। पूछा - 'क्यों भैया, आज किस बात पर विवाद छिड़ा हुआ है?'

महेंद्र ने कहा - 'देखो न, तुम्हारी भाभी ने कुमुदिनी या प्रमोदिनी जाने किससे तो जाने क्या नाता जोड़ा है लेकिन मुझे भी अगर उससे वैसा ही कुछ जोड़ना पड़े तो जीना मुश्किल जानो!'

आशा के घूँघट के अंदर घोर कलह घिर आया। बिहारी जरा देर चुपचाप महेंद्र की ओर ताकता रहा और हँसता रहा। बोला - 'भाभी, बात तो यह अच्छी नहीं। यह सब भुलाने की बातें हैं। तुम्हारी आँख की किरकिरी को मैंने देखा है, और भी अगर बार-बार देख पाऊँ, तो उसे दुर्घटना न समझूँगा, यह मैं कसम खा कर कह सकता हूँ। लेकिन इतने पर भी महेंद्र जब कबूल नहीं करना चाहते तो दाल में कुछ काला है।'

महेंद्र और बिहारी में बहुत भेद है, आशा को इसका एक और सबूत मिला।

अचानक महेंद्र को फोटोग्राफी का शौक हो आया। पहले भी एक बार उसने सीखना शुरू करके छोड़ दिया था। उसने फिर से कैमरे की मरम्मत की, और तस्वीरें लेना शुरू कर दिया। घर के नौकर-चाकरों तक के फोटो लेने लगा।

आशा ज़िद पकड़ बैठी - 'मेरी सखी की तस्वीर लेनी पड़ेगी।'

बहुत मुख्तसर में महेंद्र ने जवाब दिया - 'अच्छा!'

और उससे भी मुख्तसर में उसकी आँख की किरकिरी ने कहा - 'नहीं।' आशा को इसके लिए फिर एक तरकीब खोजनी पड़ी।



तरकीब यह थी कि आशा किसी तरह उसे अपने कमरे में बुलाएगी और सोते समय ही उसकी तस्वीर को ले कर महेन्द्र एक खासा सबक देगा।

मजे की बात यह कि विनोदिनी दिन में कभी सोती नहीं। लेकिन उस दिन आशा के कमरे में उसे झपकी आ गई। बदन पर लाल ऊनी चादर डाले, खुली खिड़की की तरफ मुँह किए, हथेली पर सिर रखे वह ऐसी सुंदर अदा से सोई थी कि महेन्द्र ने कहा - 'लगता है, फोटो खिंचाने के लिए तैयार हुई है।'

दबे पाँव महेन्द्र कैमरा ले कर आया। किस तरह से तस्वीर अच्छी आएगी, यह तय करने के लिए विनोदिनी को बड़ी देर तक बहुत अच्छी तरह देख लेना पड़ा। यहाँ तक कि कला की खातिर छिप कर सिरहाने के पास उसके बिखरे बालों को जरा-सा हटा देना पड़ा। नहीं जँचा तो उसे फिर से सुधार लेना पड़ा। कानों कान उसने आशा से कहा - 'पाँव के पास से चादर को जरा बाईं तरफ खिसका दो!'

भोली आशा ने उसके कानों में कहा - 'मुझसे ठीक न बनेगा, कहीं नींद न टूट जाए। तुम्हीं खिसका दो।'

महेन्द्र ने चादर खिसका दी।

और तब उसने तस्वीर खींचने के लिए कैमरे में प्लेट डाली। डालना था कि खटका हुआ और विनोदिनी हिल उठी, लंबा निःश्वास छोड़ घबरा कर उठ बैठी। आशा जोर से हँस पड़ी। विनोदिनी बेहद नाराज हुई। अपनी जलती हुई आँखों से महेन्द्र पर चिनगारियाँ बरसाती हुई बोली - 'बहुत बुरी बात है।'

महेन्द्र ने कहा - 'बेशक बुरी बात है। लेकिन चोरी भी की और चोरी का माल हाथ न लगा, इससे तो मेरे दोनों काल गए। इस बुराई को ही लेने दीजिए, उसके बाद मुझे सजा दीजिएगा।'

आशा भी बहुत आरजू-मिन्नत करने लगी। तस्वीर ली गई। लेकिन पहली तस्वीर खराब हो गई। लिहाज़ा दूसरे दिन दूसरी तस्वीर लिए बिना फोटोग्राफर न माना। उसके बाद मित्रता के चिद्-स्वरूप दोनों सखियों की एक साथ एक तस्वीर लेने की बात आई। विनोदिनी 'ना' न कह सकी। बोली - 'यही लेकिन आखिरी है।'

यह सुन कर महेन्द्र ने उस तस्वीर को बर्बाद कर दिया। इस तरह तस्वीर लेते-लेते परिचय काफी आगे बढ़ गया।

## 15

बाहर से हिला-डुला दो तो दबी राख में आग फिर से लहक उठती है। आशा और महेन्द्र की मुहब्बत का उछाह मंद पड़ता जा रहा था, वह तीसरी तरफ की ठोकर से फिर जाग पड़ा।

आशा में हँसी-दिल्लगी की ताकत न थी, पर आशा उससे थकती न थी, लिहाज़ा विनोदिनी की आड़ में आशा को बहुत बड़ा आश्रय मिल गया। महेन्द्र को हमेशा आनंद की उमंग में रखने के लिए उसे लोहे के चने नहीं चबाने पड़ते थे।

विवाह होने के बाद कुछ ही दिनों में आशा और महेन्द्र एक-दूसरे के लिए अपने को उजाड़ने पर आमादा थे - प्रेम का संगीत शुरू ही पंचम के निषाद से हुआ था, सूद के बजाय पूँजी ही भुना खाने पर तुले थे।

अब उसकी अपनी कोशिश न रह गई। महेंद्र और विनोदिनी जब हँसी-मज़ाक करते होते, वह बस जी खोल कर हँसने में साथ देती। पत्ते खेलने में महेंद्र आशा को बेतरह चकमा देता, तो आशा विनोदिनी से फैसले के लिए गिड़गिड़ाती हुई शिकायत करती। महेंद्र कोई मज़ाक कर बैठता या गैरवाजिब कुछ कहता तो आशा को यह उम्मीद होती कि उसकी तरफ से विनोदिनी उपयुक्त जवाब दे देगी। इस प्रकार इन तीनों की मंडली जम गई।

मगर इससे विनोदिनी के काम-धंधों में किसी तरह की ढिलाई न आ पाई। रसोई, गृहस्थी के दूसरे काम-काज, राजलक्ष्मी की सेवा-जतन- सारा कुछ खत्म करके ही वह इस आनंद में शामिल होती। महेंद्र आजिजी से कहता - 'नौकर-महरी को काम नहीं करने देती हो, चौपट करोगी उन्हें तुम।'

विनोदिनी कहती- 'काम न करके खुद चौपट होने से यह बेहतर है। तुम अपने कॉलेज जाओ।'

महेंद्र - 'ऐसी बदली के दिन?'

विनोदिनी - 'न यह नहीं होने का... गाड़ी तैयार है, जाना पड़ेगा।'

महेंद्र - 'मैंने तो गाड़ी को मना कर दिया था।'

विनोदिनी ने कहा 'मैंने कह रखा था।' कह कर महेंद्र की पोशाक ला कर हाज़िर कर दी।

महेंद्र - 'तुम्हें राजपूत के घर पैदा होना चाहिए था, लड़ाई के समय अपने आत्मीय को कवच पहनाती।'

मौज-मजे के लिए कॉलेज न जाना, पढ़ाई में ढिलाई करना विनोदिनी कतई न सह पाती थी। उसके कठोर शासन से दिन 'दोपहर को विनोद एकबारगी उठ गया और साँझ का अवकाश महेंद्र के लिए बड़ा ही रमणीक और मोहक हो उठा। उसका दिन मानो अवसान के इंतज़ार में रहता।

पहले बीच-बीच में रसोई समय पर न बनती और महेंद्र को कॉलेज न जाने का बहाना मिल जाता। अब विनोदिनी सारा इंतज़ाम खुद करके समय पर रसोई बनाती। खाना खत्म होता कि महेंद्र को खबर कर दी जाती- 'गाड़ी तैयार खड़ी है।' पहले कपड़ों का इस तरतीब से रहना तो दूर रहा। यही पता न होता था कि वे धोबी के यहाँ हैं कि अलमारी की ही किसी गुफा में पड़े हैं।

शुरू-शुरू में विनोदिनी इन बेतरतीबियों के लिए महेंद्र के सामने आशा को मीठा उलाहना दिया करती थी- महेंद्र भी उस बेचारी की ला-इलाज योग्यता पर स्नेह से हँस दिया करता। अंत में सखी के नेह से उसने आशा की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। घर की शक्ल बदल गई।

अचकन का बटन नदारद है, आशा झट-पट कोई तरकीब नहीं निकाल पाती कि विनोदिनी आ कर अचकन उसके हाथ से झपट लेती और बात-की-बात में सी देती। एक दिन महेंद्र की परसी हुई थाली बिल्ली ने जूठी कर दी। आशा परेशान। देखते-ही-देखते विनोदिनी ने रसोई से जाने क्या-क्या ला कर काम चला दिया। आशा दंग रह गई।

अपने खाने-पहनने, काम और आराम में, हर बात में तरह-तरह से महेंद्र को विनोदिनी के सेवा-स्पर्श का अनुभव होने लगा। विनोदिनी के बनाए रेशमी जूते उसके पाँवों में पड़े, विनोदिनी का बुना रेशमी गुलबंद गले में एक पति

के पास जाती - उसमें कुछ तो होता आशा का अपना और कुछ किसी और का - अपनी वेश-भूषा के रूप और आनंद में वह अपनी सखी से मानो गंगा-यमुना-सी मिल गई है।

बिहारी की अब वह कद्र न रही थी- उसकी बुलाहट नहीं होती। उसने महेंद्र को लिख भेजा - 'कल इतवार है, दोपहर को आ कर मैं माँ के हाथ का बना भोजन खाऊँगा।' महेंद्र ने देखा, यह तो इतवार ही गोबर हो जाएगा। उसने जल्दी से लिख भेजा, 'इतवार को कुछ जरूरी काम से मुझे बाहर जाना पड़ेगा।'

फिर भी भोजन कर चुकने के बाद बिहारी खोज-खबर के लिए महेंद्र के यहाँ आया। नौकर से पता चला, महेंद्र कहीं बाहर नहीं गया है। 'महेंद्र भैया' कह कर उसने सीढ़ी से आवाज दी और कमरे में दाखिल हुआ। महेंद्र बड़ा अप्रतिभ हो गया। 'सिर में बे-हिसाब दर्द है'-कह कर उसने तकिए का सहारा लिया। यह सुन कर और महेंद्र के चेहरे का हाव-भाव देख कर आशा तो अचकचा गई। उसने विनोदिनी की तरफ इस आशय से ताका कि क्या करना चाहिए। विनोदिनी खूब समझ रही थी- मामला संगीन नहीं है, फिर भी घबरा कर बोली, 'बड़ी देर से बैठे हो, थोड़ी देर लेट जाओ! मैं यूडीकोलोन ले आती हूँ।'

महेंद्र बोला - 'रहने दो, उसकी जरूरत नहीं।'

विनोदिनी ने उस पर ध्यान न दिया। वह जल्दी से बर्फ-मिले पानी में यूडीकोलोन डाल कर ले आई। आशा को गीला रुमाल देती हुई बोली - 'उनके सिर पर बाँध दो!'

महेंद्र बार-बार कहने लगा - 'अरे छोड़ो-छोड़ो!' बिहारी हँसी रोक कर चुपचाप यह नाटक देखता रहा। मन में गर्व करते हुए महेंद्र ने कहा - 'कमबख्त बिहारी देखे कि मेरी कितनी इज्जत होती है!'

बिहारी खड़ा था। लाज से काँपते हाथों से आशा ठीक से पट्टी न बाँध पाई, लुढ़क कर यूडीकोलोन की एक बूँद महेंद्र की आँख से गिर गई। विनोदिनी ने आशा से रुमाल ले कर अपने कुशल हाथों से ठीक से बाँध दिया। सफेद कपड़े के दूसरे टुकड़े को यूडीकोलोन में भिगो कर धीमे-धीमे पट्टी पर निचोड़ने लगी। आशा घूँघट काढ़े पंखा झलती रही।

स्निग्ध स्वर में विनोदिनी ने पूछा - 'महेंद्र बाबू, आराम मिल रहा है' आवाज में इस तरह शहद घोल कर विनोदिनी ने तेज कनखियों से बिहारी को देख लिया। देखा, कौतुक से बिहारी की आँखें हँस रही हैं। उसको यह सब कुछ प्रहसन-सा लगा। विनोदिनी समझ गई, 'इस आदमी को ठगना आसान नहीं, इसकी पैनी निगाह से कुछ नहीं बच सकता।'

बिहारी ने हँस कर कहा - 'विनोदिनी भाभी, ऐसी तीमारदारी से बीमारी जाने की नहीं, और बढ़ जाएगी।'

विनोदिनी - 'मैं मूर्ख स्त्री, मुझे इसका क्या पता! आपके चिकित्सा-शास्त्र में ऐसा ही लिखा है, क्यों?'

बिहारी - 'लिखा तो है ही। सेवा देख कर अपना भी माथा दुखने लगा। लेकिन फूटे कपाल को चिकित्सा के बिना ही चंगा हो जाना पड़ता है। महेंद्र भैया का कपाल जोरदार है।'

विनोदिनी ने कपड़े का ओछा टुकड़ा रख दिया। कहा - 'न, हमें क्या पड़ी! दोस्त का इलाज दोस्त ही करे।'

बिहारी ने सोचा - 'ऊँहूँ! दूर-दूर रहने से अब काम नहीं चलने का। चाहे जैसे हो, इसके बीच अपने लिए भी जगह बनानी पड़ेगी। इनमें से किसी को यह पसंद तो न होगा, लेकिन फिर भी मुझे रहना पड़ेगा।'

बुलावे या स्वागत की अपेक्षा किए बिना ही बिहारी महेन्द्र के व्यूह में दाखिल होने लगा। उसने विनोदिनी से कहा - 'विनोद भाभी, इस शख्स को इसकी माँ ने बर्बाद किया, इसकी बीवी बर्बाद कर रही है - तुम भी उस जमात में शामिल न हो कर इसे कोई नई राह सुझाओ।'

महेन्द्र ने पूछा - 'यानी?'

बिहारी - 'यानी मेरे-जैसा आदमी, जिसे कभी कोई नहीं पूछता...'

महेन्द्र - 'उसको बर्बाद करो! बर्बाद होने की उम्मीदवारी इतनी आसान नहीं बचू कि दरखास्त दे दी और मंजूर हो गई।'

विनोदिनी हँस कर बोली - 'बर्बाद होने का दम होना चाहिए बिहारी, बाबू!'

बिहारी ने कहा - 'अपने आप में वह खूबी न भी हो तो पराए हाथ से आ सकती है। एक बार देख ही लो पनाह दे कर!'

विनोदिनी - 'यों तैयार हो कर आने से कुछ नहीं होता - लापरवाह रहना होता है। क्या खयाल है, भई आँख की किरकिरी! अपने इस देवर का भार तुम्हीं उठाओ न!'

आशा ने दो उँगुलियों से उसे ठेल दिया। बिहारी ने भी इस दिल्लगी में साथ न दिया।

विनोदिनी से यह छिपा न रहा कि बिहारी को आशा से मजाक करना पसंद नहीं। वह आशा पर श्रद्धा रखता है और विनोदिनी को उल्लू बनाना चाहता है, यह बात उसे चुभी।

उसने आशा से फिर कहा - 'तुम्हारा यह भिखारी देवर मुझे इंगित करके तुमसे ही दुलार की भीख माँगने आया है- कुछ दे दो न, बहन!'

आशा बहुत खीझ उठी। जरा देर के लिए बिहारी का चेहरा तमतमा उठा, दूसरे ही दम वह हँस कर बोला - 'दूसरे पर यों टाल देना ठीक नहीं है।'

विनोदिनी समझ गई कि बिहारी सब बंटाधार करके आया है - इसके सामने हथियारबंद रहना जरूरी है। महेन्द्र भी आजिज आ गया। बोला - 'बिहारी, तुम्हारे महेन्द्र भैया किसी व्यापार में नहीं पड़ते, जो पास है, उसी से खुश हैं वे।'

बिहारी - 'खुद न पड़ना चाहते हों चाहे, मगर किस्मत में लिखा होता है तो व्यापार की लहर बाहर से भी आ सकती है।'

विनोदिनी - 'बहरहाल, आपका तो हाथ खाली है, फिर आपकी लहर किधर से आती है?'

और व्यंग्य की हँसी हँस कर उसने आशा को दबाया। आशा कुढ़ कर चली गई। बिहारी मुँह की खा कर गुस्से में भी चुप रहा। वह जाने को तैयार हुआ, तो विनोदिनी बोल उठी - 'हताश हो कर न जाइए बिहारी बाबू, मैं आँख की किरकिरी को भेजे देती हूँ।'

विनोदिनी के उठने से बैठक टूट गई। इससे महेंद्र मन-ही-मन नाराज हुआ। महेंद्र की नाराज शकल देख कर बिहारी का आवेग उमड़ आया।

बोला - 'महेंद्र भैया, अपना सत्यानाश करना चाहते हो, करो! तुम्हारी ऐसी ही आदत रही है। लेकिन जो सरल हृदय की साध्वी तुम्हारा विश्वास करके पनाह में है, उसका सत्यानाश तो न करो। अब भी कहता हूँ, ऐसा न करो!'

कहते-कहते बिहारी का गला रुँध गया।

दबे क्रोध से महेंद्र ने कहा - 'बिहारी, तुम्हारी बात बिलकुल समझ में नहीं आती। बुझौअल रहने दो, साफ-साफ कहो।'

बिहारी ने कहा - 'मैं दो टूक ही कहूँगा। विनोदिनी तुम्हें जान-बूझ कर पाप की ओर खींच रही है और तुम बिना समझे कदम बढ़ा रहे हो।'

महेंद्र गरज उठा - 'सरासर झूठ है। तुम अगर भले घर की बहू-बेटी को गलत शुबहे की निगाह से देखते हो तो तुम्हारा घर के अंदर आना ठीक नहीं।'

इतने में विनोदिनी एक थाली में मिठाइयाँ ले कर आई और बिहारी के सामने रखीं। बिहारी बोला - 'अरे, यह क्या! मुझे बिलकुल भूख नहीं।'

विनोदिनी बोली - 'ऐसी क्या बात! मुँह मीठा करके ही जाना होगा।'

बिहारी बोला - 'मेरी दरखास्त मंजूर हुई शायद? आदर-सत्कार शुरू हो गया?'

विनोदिनी होठ दबा कर हँसी। कहा - 'आप जब देवर ठहरे, रिश्ते का जोर तो है। जहाँ दावा कर सकते हैं, वहाँ भीख क्या माँगना? आदर तो आप छीन कर ले सकते हैं। आप क्या कहते हैं, महेंद्र बाबू?'

महेंद्र बाबू ने कोई टिप्पणी नहीं की।

विनोदिनी - 'बिहारी बाबू, आप शर्म से नहीं खा रहे हैं या नाराजगी से! किसी और को बुलाना पड़ेगा?'

बिहारी - 'नहीं, जरूरत नहीं। जो मिला है, काफी है।'

विनोदिनी - 'मजाक? आप से तो पार पाना मुश्किल है। मिठाई से भी मुँह बंद नहीं होता।'

रात को आशा ने महेंद्र से बिहारी की शिकायत की। महेंद्र और दिन की तरह हँस कर टाल नहीं गया, बल्कि उसने साथ दिया। सुबह ही महेंद्र बिहारी के घर गया। बोला - 'बिहारी, लाख हो, विनोदिनी आखिर अपने घर की तो नहीं है। तुम सामने होते हो तो उसे कैसी झिड़क होती है।'

बिहारी ने कहा - 'अच्छा! तब तो यह ठीक नहीं। उन्हें अगर एतराज है, तो मैं सामने न जाऊँगा।'

महेंद्र निश्चित हुआ। यह अप्रिय काम इस आसानी से बन जाएगा वह सोच भी न सका था। बिहारी से वह डरता था।

वह उसी दिन महेंद्र के घर गया। बोला - 'विनोद भाभी, मुझे माफ कर दो!'

विनोदिनी - 'कैसी माफी?'

बिहारी - 'महेंद्र से मालूम हुआ, मैं यहाँ आ कर सामने होता हूँ, इसलिए आप नाराज हैं। इसलिए मैं माफी माँग कर रुखसत हो जाऊँगा।'

विनोदिनी - 'ऐसा भी होता है भला! मैं तो आज हूँ, कल नहीं रहूँगी - मेरी वजह से आप क्यों रुखसत होंगे? इतना झमेला होगा, यह जानती होती तो मैं यहाँ न आती...' कह कर विनोदिनी मुँह मलिन किए बिना आँसू छिपाने को तेजी से चली गई।

बिहारी के मन में आया - 'झूठे संदेह पर मैंने नाहक ही विनोदिनी के मन को चोट पहुँचाई है।'

उस दिन मानो मुश्किल में पड़ी राजलक्ष्मी महेंद्र के पास जा कर बोली - 'महेंद्र विपिन की बहू घर जाने के लिए उतावली हो गई है।'

महेंद्र ने पूछा - 'क्यों, यहाँ उन्हें कोई तकलीफ है?'

राजलक्ष्मी - 'तकलीफ नहीं, वह कहती है, मुझ-जैसी विधवा ज्यादा दिन दूसरे के घर रहेगी, तो लोग निंदा करेंगे।'

महेंद्र क्षुब्ध हो कर बोला - 'तो यह पराया घर है!'

बिहारी बैठा था। महेंद्र ने उसे खीझी निगाह से देखा।

बिहारी ने सोचा था, 'कल मैंने जो कुछ कहा, उसमें निंदा का आभास था - शायद उसी से विनोदिनी का जी दुखा।'

पति-पत्नी दोनों विनोदिनी से रूठे रहे।

ये बोलों - 'हमें पराया समझती हो, बहन!'

वे बोले - 'इतने दिनों में हम पराए हो गए।'

विनोदिनी ने कहा - 'हमें क्या तुम आजीवन पकड़े रहोगी?'

महेंद्र बोला - 'ऐसी जुर्रत कहाँ!'

आशा बोली - 'फिर ऐसे क्यों हमारे जी को चुराया तुमने?'

उस दिन कुछ भी तय न हो सका। विनोदिनी बोली - 'नहीं बहन, बेकार है, दो दिनों के लिए ममता न बढ़ाना ही ठीक है।'

कह कर अकुलाई हुई आँखों से उसने एक बार महेंद्र को देखा।

दूसरे दिन बिहारी ने आ कर कहा - 'विनोद भाभी, यह जाने की जिद क्यों? कोई कुसूर किया है - उसी की सजा?'

मुँह फेर कर विनोदिनी बोली - 'कुसूर आप क्यों करने लगे, कुसूर है मेरी तकदीर का।'

बिहारी - 'आप अगर चली जाएँ, तो मुझे यही लगता रहेगा कि मुझी से नाराज हो कर चली गई आप।'

करुण आँखों से विनती जाहिर करती हुई विनोदिनी ने बिहारी की ओर ताका। कहा - 'आप ही कहिए न, मेरा रहना उचित है?'

बिहारी मुश्किल में पड़ गया। रहना उचित है, यह बात वह कैसे कहे?

बोला - 'ठीक है, आपको जाना तो पड़ेगा ही, लेकिन दो-चार दिन रुक कर जाएँ, तो क्या हर्ज है?'

अपनी दोनों आँखें झुका कर विनोदिनी ने कहा - 'आप सब लोग रहने का आग्रह कर रहे हैं, आप लोगों की बात टाल कर जाना मेरे लिए मुश्किल है, मगर आप लोग गलती कर रहे हैं।'

कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी पलकों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें तेजी से ढुलकने लगीं।

बिहारी इन मौन आँसुओं से व्याकुल हो कर बोल उठा - 'महज इन कुछ दिनों में ही आपने सबको मोह लिया है, इसी से आपको कोई छोड़ना नहीं चाहता। अन्यथा न सोचें विनोद भाभी, ऐसी लक्ष्मी को चाह कर विदा भी कौन करेगा?'

आशा घूँघट काढ़े एक कोने में बैठी थी। घूँघट सरका कर वह रह-रह कर आँखें पोंछने लगी।

आइंदा विनोदिनी ने जाने की बात न चलाई।

## 17

बीच में यह जो झमेला खड़ा हुआ, उसे एकबारगी चुका देने की नीयत से महेंद्र ने प्रस्ताव रखा कि अगले इतवार को दमदम के बगीचे में पिकनिक कर आएँ।

आशा बहुत खुश हो गई। लेकिन विनोदिनी राजी न हुई। उसके तैयार न होने से आशा और महेंद्र मायूस हो गए। उन्हें लगा, 'इन दिनों विनोदिनी न जाने क्यों दूर हट जाना चाहती है!'

तीसरे पहर बिहारी आया। विनोदिनी बोली - 'जरा देखिए तो बिहारी बाबू महेंद्र बाबू दमदम जा रहे हैं पिकनिक के लिए। मैं नहीं जाना चाहती, तो सुबह से दोनों मुझसे रूठे हैं।'

बिहारी बोला - 'नाराज होना उनका बेजा नहीं। आप साथ न गईं तो इनकी जो पिकनिक होगी, ईश्वर करे सातवें दुश्मन की भी वैसी न हो।'

विनोदिनी - 'फिर आप भी चलिए न! आप चलें, तो मैं भी चलूँगी।'

बिहारी - 'ठीक तो है। मगर बात यों है कि कर्म दरअसल कर्त्ता की इच्छा पर होता है। बाबू की क्या राय है।?'

बिहारी के प्रति इस पक्षपात से मालिक और मालकिन, दोनों ही भीतर-भीतर कुढ़ गए। बिहारी को साथ ले चलने की बात से महेंद्र का आधा उत्साह जाता रहा। वह बिहारी को हर तरह से यह जता देने को आतुर था कि उसकी मौजूदगी विनोदिनी को कभी पसंद नहीं - लेकिन अब तो उसे छोड़ जाना असंभव होगा।

महेंद्र ने कहा - 'बेजा क्या है, अच्छा ही तो है। लेकिन बिहारी, तुम्हारा खास ऐब है कि जहाँ जाते हो, वहाँ कोई-न-कोई हंगामा मचाने से बाज नहीं आते। या तो वहाँ आस-पास के बच्चों की जमात जुटा लगे या फिर गोरों से मार-पीट की नौबत। क्या कर बैठोगे क्या पता?'

बिहारी महेंद्र की अनिच्छा को समझ गया। मन-ही-मन हँसा। बोला - 'दुनिया में यही तो मजा है। क्या से क्या हो जाए, कहाँ कौन-सा फसाद खड़ा हो जाए - पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। तो विनोद भाभी, तड़के ही चल देना पड़ेगा। मैं समय से हाजिर हो जाऊँगा।'

सामान और नौकरों के लिए एक थर्ड क्लास और उन लोगों के लिए एक सेकेण्ड क्लास की बग्घी लाई गई। खासा बड़ा एक पैक बक्स लिए बिहारी ठीक समय पर हाजिर हो गया।

महेंद्र ने कहा - 'अरे यह फिर क्या उठा लाए? नौकरों वाली गाड़ी में तो अब यह आएगा नहीं।'

बिहारी बोला - 'आप परेशान न हों, मैं ठीक किए देता हूँ।'

विनोदिनी और आशा गाड़ी पर सवार हुए। बिहारी का क्या करे, महेंद्र जरा आगा-पीछा करने लगा। बिहारी ने अपना सामान गाड़ी के ऊपर पटका और आप कोच-बक्स पर जा बैठा।

महेंद्र के जी में जी आया। वह सोच रहा था, 'जाने बिहारी अंदर ही बैठ जाएगा कि क्या करेगा!'

विनोदिनी ने परेशान हो कर पूछा - 'गिर तो नहीं पड़ेंगे बिहारी बाबू?'

बिहारी बोल उठा - 'आप फिक्र न करें, गिरना या बेहोश हो जाने की भूमिका नहीं।'

जैसे ही गाड़ी खिसकी, महेंद्र ने कहा - 'न हो तो मैं ही ऊपर जाता हूँ, बिहारी अंदर आ जाए।'

आशा ने जल्दी से उसकी चादर खींची। कहा - 'नहीं, तुम नहीं जा सकते।'

विनोदिनी बोली - 'आपको आदत नहीं, क्या पता गिर-विर पड़ें।'

जोश में आ कर महेंद्र ने कहा - 'गिर पड़ूँगा? हर्गिज नहीं।'



और वह गाड़ी से बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा।

विनोदिनी - 'तोहमत आप बिहारी बाबू पर लगाते हैं, मगर हंगामा मचाने में बेजोड़ तो आप ही हैं।'

महेंद्र ने जरा मुँह लटका कर कहा - 'अच्छा एक काम करें। मैं एक और गाड़ी ले कर चलता हूँ, बिहारी यहाँ आ जाए।'

आशा ने कहा, 'तो मैं तुम्हारे ही साथ चलूँगी।'

विनोदिनी बोली - 'और मैं तब गाड़ी में से कूद पड़ूँ?' होते-होते झंझट आखिर निबट गया।

रास्ते भर महेंद्र बड़ा गंभीर रहा।

गाड़ी दमदम के बगीचे में पहुँच गई। नौकरों वाली गाड़ी बहुत पहले ही रवाना हुई थी, लेकिन अभी तक उसका पता न था।

शरत का सवेरा! बड़ा ही सुहाना। धूप निकल आई थी। ओस की बूँदें सूख चुकी थीं, पर निर्मल प्रकाश से पेड़-पौधे झिलमिल रहे थे। दीवार से लगी हरसिंगार की कतार थी। नीचे फूल बिछ गए थे। मह-मह खुशबू!

कलकत्ता की ईंट की ऊँची दीवार के घेरे में बाहर आ कर आशा वन की हिरनी-सी उमग उठी। विनोदिनी के साथ उसने ढेरों फूल बीने, पेड़ से शरीफे तोड़े और नीचे बैठ कर खाए। दोनों सखियों ने पोखर में देर तक स्नान किया। एक निरर्थक आनंद से इन दो नारियों ने पेड़ों की छाया और छिटकी किरणों, पोखर के पानी और कुंजों के फूल-पत्तों को पुलकित सचेतन कर दिया।

दोनों सखियाँ नहा आईं। देखा, नौकरों वाली गाड़ी अब भी नदारद है। महेंद्र बँगले के बरामदे में बिछी एक चौकी पर बैठा-बैठा उदास हो कर एक विलायती इश्तहार पढ़ रहा था।

विनोदिनी ने पूछा - 'और बिहारी बाबू?'

संक्षेप में महेंद्र बोला - 'पता नहीं।'

विनोदिनी - 'चलिए, उन्हें ढूँढ़ें।'

महेंद्र - 'आखिर उन्हें कोई चुरा कर तो ले नहीं जाएगा! ढूँढ़े बिना भी मिल जाएँगे।'

विनोदिनी - 'मगर हो सकता है, आपकी फिक्र से वह बेहाल हो रहे हों। चल कर उन्हें दिलासा ही दे आएँ।'

तालाब के किनारे बँधा हुआ विशाल बरगद था। उसी के चौतरे पर बिहारी अपना पैक-बक्स खोल कर मिट्टी के तेल का चूल्हा जला कर पानी गरम कर रहा था। जैसे ही लोग पहुँचे, उसने सबको चौतरे पर बिठा कर एक-एक प्याला गरम चाय और तश्तरी में दो-एक मिठाइयाँ दे कर उनकी खातिर की। विनोदिनी बार-बार कहने लगी - 'गनीमत है कि बिहारी बाबू सारा सरंजाम साथ ले आए हैं! वरना चाय न मिलती तो क्या हाल होता महेंद्र बाबू का।'

चाय मिली, तो महेंद्र जी उठा। फिर भी बोला - 'यह सब बिहारी की ज्यादाती है। आए हैं हजरत पिकनिक को और यहाँ भी बदस्तूर सारा इंतजाम उठा लाए हैं। इससे मजा नहीं रहता!'

तपी दोपहरी की हवा पत्तों में मर्मराहट ला कर बहती रही, तालाब के बाँध पर जामुन की डालों पर कोयल रह-रह कर कूकती रही। विनोदिनी अपने बचपन के किस्से सुनाने लगी - माँ-बाप की बात, छुटपन की सखी-सहेलियों की चर्चा। अचानक उसके माथे पर का पल्ला खिसक पड़ा। विनोदिनी की आँखों में कौतुक का जो तीखा कटाक्ष देख पैनी निगाहों वाले बिहारी के मन में आज तक तरह-तरह की शंकाएँ उठती रही थीं, वह श्याम चमक जब एक शांत सजल रेखा से मंद पड़ गई, तो बिहारी ने मानो और ही नारी को देखा। लजीली सती की नाई विनोदिनी एकांत भक्ति से पति की सेवा कर रही है, मंगलमयी माता के समान संतान को अपनी गोद में लिए हुए है - पहले यह छवि क्षण के लिए भी कभी बिहारी के मन में न आई - आज मानो जरा देर के लिए रंगमंच का परदा उठ गया और अंदर का एक मंगल दृश्य उसे दिखाई दिया। बिहारी ने सोचा, 'विनोदिनी बाहर से विलासिनी युवती तो है, पर उसके अंतर्मन में पूजा-निरत एक नारी तपस्या में लीन है।' एक लंबी साँस तोड़ कर बिहारी ने मन-ही-मन कहा - 'सही-सही अपने को मनुष्य आप भी नहीं जानता - अंतर्यामी ही जानते हैं - परिस्थितिवश जो रूप बाहर बन जाता है, दुनिया उसी को सच समझती है।' बिहारी ने बातों के सिलसिले को टूटने न दिया, प्रश्नों से उसे जगाए रहा।

आज सुबह ही जगने के जुल्म से थके हुए महेंद्र की नींद पाँच बजे खुली। आजिजी से बोला - 'अब चल देना चाहिए।'

विनोदिनी ने कहा - 'थोड़ी देर और रुकें तो?'

सामान सहेजने में अँधेरा हो आया। नौकरों ने इतने में खबर दी, किराए की गाड़ी न जाने कहाँ गायब है। ढूँढ़े न मिली। गाड़ी बगीचे के बाहर खड़ी थी। दो गोरे जबर्दस्ती उसे ले कर स्टेशन चल दिए।

दूसरी गाड़ी ठीक करने के लिए नौकर भेजा गया। कुढ़ा हुआ महेंद्र बार-बार मन में कहने लगा - 'आज का दिन मुफ्त में बर्बाद हो गया।' ऐसी नौबत आ गई कि अपनी अधीरता वह छिपा न सका।

अँजोरिया का चाँद धीरे-धीरे झुरमुटों की ओर से खुले आकाश में आया। सुनसान अकंप बगीचा छाँह-जोत से झिलमिला उठा। इस माया-मंडित धरती पर आज विनोदिनी ने अपने को न जाने किस रूप में अनुभव किया। उसने जब तरु-वीथिका में आशा को जकड़ लिया, तो उसमें प्रणय की बनावट जरा भी न थी। आशा ने देखा, विनोदिनी की आँखों से आँसू बह रहे हैं। आशा ने पीड़ित होकर पूछा - "भई आँख की किरकिरी, तुम रो क्यों रही हो?"

विनोदिनी बोली - "कुछ नहीं बहन, सब ठीक है। आज का दिन मुझे बड़ा भला लगा।"

आशा ने पूछा - "किस बात से इतना भला लगा?"

विनोदिनी बोली - "मुझे लगता है, मानो मैं मर गई हूँ, मानो परलोक में आई हूँ - यहाँ मानो मुझे मेरा सर्वस्व मिल सकता है।"

अचरज में पड़ी आशा यह सब-कुछ न समझ सकी। मौत की बात सुनकर दुखी होकर कहा - "छिः, ऐसा नहीं कहते, बहन!"

गाड़ी मिली। बिहारी फिर कोच-बक्स पर जा बैठा। विनोदिनी चुपचाप ही बाहर की तरफ देखती रही - चाँदनी में अवाक पेड़ों की पाँत दौड़ते हुए घने छाया-प्रवाह की तरह उसकी आँखों से हो कर गुजरने लगी। आशा गाड़ी के एक कोने में सो गई और महेंद्र सारी राह उदास बैठा रहा।

## 18

पिकनिक के दिन जो वाकया गुजरा उसके बाद फिर महेंद्र में विनोदिनी को अपनाने की चाहत बढ़ने लगी। लेकिन दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को फलू हो गया। बीमारी कुछ खास न थी, फिर भी उन्हें तकलीफ और कमजोरी काफी थी। विनोदिनी रात-दिन उनकी सेवा में लगी रहती।

महेंद्र बोला - 'माँ के सेवा-जतन में यों दिन-रात एक करोगी, तो तुम्हीं बीमार पड़ जाओगी।'

बिहारी ने कहा - 'आप नाहक परेशान हैं, भैया! ये सेवा कर रही है, करने दो। दूसरा कोई ऐसी सेवा थोड़े ही करेगा।'

महेंद्र बार-बार मरीज के कमरे में आने-जाने लगा। एक आदमी काम कुछ नहीं करता, लेकिन हर घड़ी पीछे लगा फिरता है, यह बात विनोदिनी को अच्छी न लगी। तंग आ कर उसने दो-तीन बार कहा - 'महेंद्र बाबू, यहाँ बैठे रह कर आप क्या कर रहे हैं? जाइए, नाहक क्यों कॉलेज से गैर-हाजिर होते हैं?'

महेंद्र उसके पीछे लगा डोलता है, इसका विनोदिनी को नाज था। खुशी थी। लेकिन फिर भी ऐसा क्या, बीमार माँ के बिस्तर के पास भी क्षुब्ध बैठे रहना - उसका धीरज टूट जाता, घृणा होती। अपने ऊपर किसी काम की जिम्मेदारी रहने पर वह और किसी बात का खयाल नहीं करती। जब तक खिलाना-पिलाना, रोगी की सेवा, घर के काम-धंधे की जरूरत रहती - किसी ने उसे कभी ढीला-ढाला नहीं देखा और खुद भी काम-काज के समय निकम्मापन पसंद नहीं करती।

कभी-कभी जरा देर को, माँ का हाल पूछने के लिए बिहारी आ जाया करता। कमरे में कदम रखते ही वह समझ जाता कि काहे की जरूरत है, कहाँ कौन-सी चीज की कमी है, उसकी आँखें तुरंत ताड़ जातीं और लमहे भर में सब कुछ ठीक करके वह कमरे से निकल जाता। विनोदिनी समझ रही थी कि मेरी सेवा को बिहारी श्रद्धा की नजर से देखता है। लिहाजा बिहारी के आने से उसे जैसे विशेष पुरस्कार मिलता था।

महेंद्र नियम से कॉलेज जाने लगा। एक तो उसका मिजाज ही बड़ा कड़वा हो गया, उस पर यह कैसा परिवर्तन! समय पर खाना तैयार नहीं होता, साइस जाने कहाँ गायब रहता, मोजे का छेद धीरे-धीरे बड़ा होता जाता। ऐसी गड़बड़ में उसे पहले - जैसा आनंद नहीं आता। जब जिस चीज की जरूरत हो, उसी क्षण उसे पा जाने से आराम कैसा होता है, इस बारे में वह कई दिन पहले ही स्वाद चख चुका था। अब उसकी कमी से आशा की जहालत में मजा खत्म हो गया - 'चुन्नी, मैंने बाहर तुमसे कहा कि मेरे नहाने के पहले ही कुरते में बटन लगा रखना, अचकन,

पतलून ठीक करके रखना - मगर यह कभी नहीं होता। नहा कर बटन लगाने और कपड़े ढूँढ़ने में ही मेरा घंटा भर निकल जाता है।

शर्मसार हो कर आशा कहती - 'मैंने बैरे से कह दिया था।'

'...बैरे से कह दिया था! खुद कर लेतीं तो कौन-सा गुनाह हो जाता! कभी जो तुमसे कोई काम हो!'

आशा पर मानो गाज गिरी। ऐसी झिड़की उसे कभी नहीं सुननी पड़ी। उसकी जबान पर या मन में यह जवाब न आया कि मेरी इस जहालत के तुम्हीं तो जिम्मेदार हो। उसे तो मालूम ही न था गृह-कार्य की कुशलता अभ्यास के अनुभव से आती है। वह सोचा करती थी कि अपनी अयोग्यता और निर्बुद्धिता के कारण ही मैं कोई भी काम ठीक से नहीं कर पाती। जब-जब महेंद्र ने विनोदिनी की उपमा दे कर आशा को धिक्कारा है, उसने उसे विनम्रता से स्वीकारा है।

कभी-कभी आशा बीमार सास के आस-पास चक्कर काटती, कभी-कभी शरमायी-सी दरवाजे के पास खड़ी हो जाती। उसकी इच्छा होती कि अपने आपको वह गृहस्थी के उपयुक्त बनाए, कुछ काम करके दिखाए, परंतु उससे कोई भी कैसी मनोवेदना उसमें भीतर-ही-भीतर बढ़ रही थी, लेकिन अपनी अस्पष्ट व्यथा और अजानी आशंका को वह साफ समझ नहीं पाती। वह खूब महसूस कर रही थी कि उसे चतुर्दिक का सब कुछ बर्बाद हो रहा है। लेकिन यह सब कैसे बना था और नष्ट ही कैसे हो रहा है और कैसे इसका प्रतिकार हो - वह नहीं जानती। रह-रह कर यही कहने को जी चाहता कि मैं अयोग्य हूँ, - मेरी मूढ़ता की तुलना नहीं हो सकती।

अब तक तो पति-पत्नी दोनों घर के एक कोने में दुबके कभी बोल-बतिया कर कभी यों ही चुपचाप मजे में दिन बिताते रहे। मगर जब विनोदिनी न होती तो आशा के साथ अकेले बैठ कर महेंद्र बात ही न कर पाता।

महेंद्र ने बैरे से पूछा - 'किसकी चिट्ठी है?'

'बिहारी बाबू की।'

'किसने दी है?'

'बहूजी (विनोदिनी) ने।'

'देखूँ जरा।' चिट्ठी ले ली। जी में आया, फाड़ कर उसे पढ़े। उलट-पलट कर देखा, फिर बैरे की तरफ फेंक दिया।

बरामदे में कुछ देर चहलकदमी करके कमरे में आ कर महेंद्र ने देखा, कमरे की दीवार पर टँगी एक तस्वीर की डोरी टूटने वाली है और इसकी वजह से तस्वीर टेढ़ी हो गई है। आशा को डाँटते हुए महेंद्र ने कहा - 'तुम कुछ भी नहीं देखतीं। इस तरह सारी चीजें बर्बाद हो रही हैं।'

दमदम के फूलों का जो गुच्छा बना कर विनोदिनी ने पीतल की फूलदानी में सजाया था, वह आज भी वहीं सूखा पड़ा है। महेंद्र कभी इन बातों पर गौर नहीं करता था, आज उसकी निगाह उस पर पड़ी। बोला - 'जब तक विनोदिनी आ कर फेंक न दे, यह पड़ा ही रहेगा।'

उसने फूल-समेत फूलदानी उठा कर बाहर फेंक दी। ठन-ठन बजती वह सीढ़ी पर लुढ़कती जा पड़ी। 'आशा मेरे मन के लायक क्यों नहीं रहती, क्यों वह मेरे मन-मुताबिक काम नहीं करती?'

महेंद्र बाहर निकला। जा कर फूलदानी उठा लाया। कोने में एक मेज पड़ी सीढ़ी पर बैठ कर उसी टेबल पर कोहनी टिकाए हाथों पर सिर रखे सोया रहा।

अँधेरा होने पर कमरे में बत्ती आई, लेकिन आशा नहीं। महेंद्र छत पर जोर-जोर से चहल-कदमी करने लगा। रात के नौ बजे, महेंद्र के सूने कमरे में आधी रात का सन्नाटा छा गया - आशा फिर भी न आई। महेंद्र ने बुलावा भेजा। सकुचाई-सी आ कर वह छत पर दरवाजे के पास ठिठक गई। महेंद्र पास गया - उसे छाती से लगा लिया। पति के कलेजे से लग कर वह जोरों से रो पड़ी - अपने को जब्त न कर सकी, आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। कलेजे से लगा कर महेंद्र ने उसके बालों को चूमा - मौन आसमान के सितारे चुपचाप देखते रहे।

रात को महेंद्र ने बिस्तर पर बैठ कर बताया - 'कॉलेज में मेरी रात की ड्यूटी लगी है, कुछ दिनों के लिए मुझे कॉलेज के ही आस-पास कहीं डेरा लेना पड़ेगा।'

आशा सोचने लगी - 'गुस्सा शायद रह ही गया है? मुझ पर नाराज हो कर तो नहीं जा रहे? आखिर निगुनी मैं। पति को घर से रुखसत करके ही रही! मेरा तो मर जाना ही अच्छा था।'

लेकिन महेंद्र के हाव-भाव में गुस्से का कोई लक्षण न दीखा। बड़ी देर तक वह चुप रहा। आशा के मुखड़े को कलेजे से लगा कर उँगली से बालों को चीरते-चीरते उसके जूड़े को ढीला कर दिया। पहले प्यार से महेंद्र इसी तरह आशा का जूड़ा खोल दिया करता था - आशा इस पर एतराज करती थी। आज मगर उसने चूँ भी न की। अचानक उसके कपाल पर आँसू की एक बूँद टपक पड़ी। महेंद्र ने उसका मुँह अपनी ओर फेर कर स्नेह से रुँधे स्वर में पुकारा - 'चुन्नी!'

आशा को कोई जवाब न मिला। अपने कोमल हाथों से उसने कस कर महेंद्र को दबा लिया। महेंद्र ने कहा - 'मुझसे गलती हो गई, माफ कर दो।'

अपने फूल-से सुकुमार हाथ से महेंद्र के होंठों को दबाती हुई वह बोली - 'छिः, ऐसा न कहो! तुमने कोई कसूर नहीं किया। कसूर मेरा है। मुझे दासी के समान फटकारो। मुझे अपने पाँवों में रहने लायक बना लो!'

जिस दिन जाना था, सुबह जगते समय महेंद्र ने कहा - 'चुन्नी, मेरी रतन, तुम्हें मैं अपने हृदय में सबसे ऊपर रखूँगा। कोई तुमसे आगे नहीं जा सकेगा।'

कलेजे को कड़ा करके सब तरह का त्याग करने को तैयार हो कर उसने पति से अपनी एक निहायत मामूली-सी माँग की। बोली - 'मुझे रोज-रोज चिट्ठी लिखना!'

महेंद्र ने पूछा - 'तुम भी लिखोगी?'

आशा ने कहा - 'मैं क्या लिखना जानती हूँ?'

उसके कान के पास की लट को सरकाता हुआ महेंद्र बोला - 'तुम अक्षय कुमार दत्ता से भी अच्छा लिख सकती हो - जिसे चारुपाठ कहते हैं!'

आशा ने कहा - 'मजाक रहने दो, हाँ।'

जाने के पहले आशा महेंद्र का सामान सहेजने लगी। मोटे-मोटे गरम कपड़ों की तह बनाना कठिन था, बक्स में सबका सामान और भी कठिन। दोनों ने मिल कर दबा-दुबूकर जो एक बक्स में आ जाता, उसे दो बक्सों में रखा। फिर भी भूल से जो चीजें छूट गईं, उनकी कई गठरियाँ अलग से बन गईं। इससे आशा शर्म महसूस करती रही, तो भी आपस की छीना-झपटी और हँस-हँस कर एक-दूसरे को दोषी ठहराने में आनंद के पिछले दिन लौट आए। यह तैयारी विदाई की है, जरा देर के लिए आशा यह भूल गई। साईस कम-से-कम दस बार जता गया कि गाड़ी तैयार है, मगर कौन सुनता है। अंत में खिन्न हो कर बोला - 'खोल दो घोड़ों को।'

सुबह से तीसरा पहर हो गया और अब साँझ होने को आई। तब कहीं एक-दूसरे की सेहत का खयाल रखने की ताकीद करके, नियम से चिट्ठी लिखने का बार-बार वादा कराके भारी हृदय लिए दोनों जुदा हुए।

दो दिन हुए, राजलक्ष्मी उठने-बैठने लगी हैं। शाम को बदन पर एक मोटी चादर लपेटे विनोदिनी के साथ ताश खेल रही थी। आज उसे कोई हरारत न थी। महेंद्र कमरे में आया। विनोदिनी की तरफ उसने बिलकुल नहीं देखा। माँ से बोला - 'माँ, कॉलेज में मेरी रात की ड्यूटी लगी है। यहाँ से आते-जाते नहीं बनता - कॉलेज के पास ही एक डेरा ले लिया है। आज से वहीं रहूँगा।'

राजलक्ष्मी अंदर से रूठ कर बोली - 'जाओ, पढ़ाई में हर्ज होगा, तो रह भी कैसे सकते हो!'

बीमारी तो उनकी जाती रही थी, लेकिन जैसे ही उन्होंने सुना कि महेंद्र जा रहा है, अपने को बीमार और कमजोर महसूस करने लगीं। विनोदिनी से कहा - 'जरा तकिया तो इधर खिसका दो, बिटिया!'

और वह तकिए का सहारा ले कर लेट गई। विनोदिनी धीरे-धीरे उनके बदन पर हाथ फेरने लगी।

महेंद्र ने उनके कपाल पर हाथ रखा, नब्ज देखी। माँ ने अपनी कलाई हटा ली। कहा - 'नब्ज से क्या खाक पता चलता है! तू फिक्र मत कर, मैं ठीक हूँ।'

कह कर उन्होंने बड़ी बमुश्किल करवट बदली।

विनोदिनी से महेंद्र ने कुछ न कहा। राजलक्ष्मी को प्रणाम करके वह चला गया।

## 19

विनोदिनी ने सोचा, 'आखिर माजरा क्या है? मान या गुस्सा या डर, पता नहीं क्या? मुझे यह दिखाना चाहते हैं कि वह मेरी परवाह नहीं करते? बाहर जा कर रहेंगे? अच्छा, यही देखना है, कितने दिन?'

लेकिन खुद उसके मन में भी बेचैनी लगने लगी।

वह रोज ही उस पर नया फंदा फेंका करती, तरह-तरह के तीरों से वेधा करती थी। उस काम के चुक जाने से वह छटपटाने लगी। घर का नशा ही उतर गया। महेंद्र-विहीना आशा उसके लिए बिल्कुल स्वाद-रहित थी। आशा को महेंद्र जितना प्यार करता था, वह विनोदिनी के प्यार के भूखे हृदय को मथा करता था। जिस महेंद्र ने उसके जीवन की सार्थकता को चौपट कर दिया, जिसने उस जैसी नारी की उपेक्षा करके आशा - जैसी मंदबुद्धि बालिका को अपनाया - उस महेंद्र को विनोदिनी चाहती है या उससे चिढ़ती है, उसे इसकी सजा देगी या अपने हृदय में एक आग लहकाई है, वह आग ईर्ष्या की है या प्रेम की या दोनों की मिलावट है, यह वह सोच न पाती। वह मन-ही-मन तीखी हँसी हँस कर कहती - 'मुझ-जैसी गत किसी भी स्त्री की नहीं हुई होगी। मैं यही नहीं समझ सकी कि मैं मारना चाहती हूँ कि मरना।' लेकिन चाहे जिस वजह से भी हो, जलने के लिए या जलाने के लिए, महेंद्र की उसे नितांत आवश्यकता थी। गहरा निःश्वास छोड़ती हुई विनोदिनी बोली - 'बच्चू जाएगा कहाँ? उसे आना पड़ेगा। वह मेरा है।'

घर की सफाई के बहाने शाम को आशा महेंद्र के कमरे में उसकी किताबें, उसकी तस्वीर आदि सामानों को छू-छा रही थी, अपने अँचरे से उन्हें झाड़-पोंछ रही थी। महेंद्र की चीजों को बार-बार छू कर, कभी उठा कर कभी रख कर अपने बिछोह की साँझ बिता रही थी। विनोदिनी धीरे-धीरे उसके पास आ कर खड़ी हो गई। आशा शर्मा गई। छूना तो उसने छोड़ दिया और कुछ ऐसा जताया मानो वह कुछ खोज रही है। विनोदिनी ने हँस कर पूछा - 'क्या हो रहा है, बहन?'

होठों पर हल्की हँसी ला कर बोली - 'कुछ भी नहीं।'

विनोदिनी ने उसे गले लगाया। पूछा - 'भई आँख की किरकिरी, देवर जी इस तरह घर से चले क्यों गए?'

विनोदिनी के इस सवाल से ही आशा शंकित हो उठी। कहा - 'तुम्हें तो मालूम है। जानती ही हो, काम का दबाव रहता है।'

दाहिने हाथ से उसकी ठुड्डी उठा कर, मानो करुणा से गल गई हो इस तरह सन्न हो कर उसने आशा को देखा और लंबी साँस ली।

आशा का दिल बैठ गया। वह अपने को अबोध और विनोदिनी को चालाक समझा करती थी। विनोदिनी के चेहरे का भाव देख कर उसके लिए सारा संसार अंधकारमय हो गया। विनोदिनी से साफ-साफ कुछ पूछने की उसकी हिम्मत न पड़ी। दीवार के पास एक सोफे पर बैठ गई। विनोदिनी भी बगल में बैठी। उसे अपने कलेजे से जकड़ लिया। सखी के इस आलिंगन से वह अपने आपको सम्हाल न सकी। दोनों के आँसू झरने लगे। दरवाजे पर अंधा भिखारी मँजीरा बजाता हुआ गा रहा था, 'तरने को अपने चरणों की तरणी दे माँ, तारा!'

बिहारी महेंद्र की तलाश में आया था। दरवाजे पर से ही उसने देखा, आशा रो रही है और विनोदिनी उसे अपनी छाती से लगाए उसके आँसू पोंछ रही है। देख कर बिहारी वहाँ से खिसक गया। बँगले के अँधरे कमरे में जा कर बैठ गया। दोनों हथेलियों से अपना सिर दबा कर सोचने लगा, 'आशा आखिर रो क्यों रही है? जो बेचारी स्वभाव से ही कोई कसूर करने में असमर्थ है, ऐसी नारी को भी जो रुलाए उसे क्या कहा जाए।' विनोदिनी की उस तरह की सांत्वना, निस्वार्थ सखी-प्रेम को देख कर अभिभूत हो गया।

वह बड़ी देर तक अँधेरे में बैठा रहा। अंधे भिखारी का गाना जब बंद हो गया तो वह पैर पटक कर खाँसता हुआ महेंद्र के कमरे की तरफ बढ़ा। द्वार पर पहुँचा भी न था कि आशा घूँघट काढ़ कर अंतःपुर की ओर भाग गई।

अंदर पहुँचते ही विनोदिनी ने पूछा - 'अरे, क्या आपकी तबीयत खराब है, बिहारी बाबू?'

बिहारी - 'नहीं तो।'

विनोदिनी - 'फिर आँखें ऐसी लाल क्यों हैं?'

बिहारी ने इस बात का जवाब नहीं दिया। पूछा - 'विनोद भाभी, महेंद्र कहाँ गया?'

विनोदिनी गंभीर हो कर बोली - 'सुना है, कॉलेज में काम ज्यादा है। इसलिए उन्होंने वहीं कहीं पास में डेरा ले लिया है। अच्छा, मैं चलूँ।'

अनमना बिहारी दरवाजे के सामने राह रोक कर खड़ा हो गया था। चौंक कर वह जल्दी से हट गया। शाम के वक्त बाहर से सूने कमरे में इस तरह विनोदिनी से बात करना लोगों को अच्छा न लगेगा।- अचानक इसका ध्यान आया। उसके जाते-जाते बिहारी इतना कह गया - 'विनोद भाभी, आशा का खयाल रखिएगा। सीधी है बेचारी। उसे किसी को न तो चोट पहुँचाना आता है, न चोट से अपने को बचाना।'

अँधेरे में बिहारी विनोदिनी का चेहरा न देख पाया - उसमें ईर्ष्या के भाव जग आए थे। आज बिहारी पर नजर पड़ते ही वह समझ गई थी कि आशा के लिए उसका हृदय दुःखी है। विनोदिनी आप कुछ नहीं! उसका जन्म आशा को सुरक्षित रखने, उसकी राहों के काँटों को बीनने के लिए ही हुआ है! श्रीमान महेंद्र बाबू आशा से विवाह करें, इसीलिए किस्मत की मार से विनोदिनी को बारामात के बर्बर बंदर के साथ वनवास लेना पड़ेगा। और श्रीमान बिहारी बाबू से आशा की आँखों में आँसू नहीं देखे जाते, सो विनोदिनी को अपना दामन उठाए सदा तैयार रहना पड़ेगा! वह महेंद्र और बिहारी को एक बार अपने पीछे की छाया के साथ धूल में पटक कर बताना चाहती है कि यह आशा कौन है, और कौन है विनोदिनी! दोनों में कितना फर्क है! दुर्भाग्य से विनोदिनी अपनी प्रतिभा को किसी पुरुष-हृदय के राज्य में विजयी बनाने का अवसर नहीं पा सकी, इसलिए उसने जलता शक्तिशैल उठा कर संहार मूर्ति धारण की।

बड़े ही मीठे स्वर में विनोदिनी बिहारी को कहती गई - 'आप बेफिक्र रहें, बिहारी बाबू! मेरी आँख की किरकिरी के लिए इतनी चिंता करके आप नाहक इतना कष्ट न उठाएँ।'

## 20

जल्दी ही महेंद्र को एक चिड़्डी मिली। उस पर पहचाने अक्षर देख कर वह चौंक गया। दिन में झमेलों के कारण उसने उसे खोला नहीं - कलेजे के पास जेब में डाल दिया। कॉलेज के लेक्चर सुनते हुए, अस्पताल का चक्कर काटते हुए यक-ब-यक उसे ऐसा लग आता कि उसके कलेजे के घोंसले में मुहब्बत की एक चिड़िया सो रही है। उसे जगाया नहीं कि उसकी मीठी चहक कानों में गूँज उठेगी।



शाम को अपने सूने कमरे में महेंद्र लैंप की रोशनी में आराम से कुर्सी पर बैठा। अपनी देह के ताप से तपी उस चिढ़ी को बाहर निकला। देर तक उसने उसे खोला नहीं, मगर गौर से देखता रहा। उसे पता था कि खत में खास कुछ है नहीं। ऐसी संभावना ही नहीं कि आशा अपने मन की बात सुलझा कर लिख सकेगी। उसके टेढ़े-मेढ़े हरफों और आड़ी-तिरछी पंक्तियों से उसके मन के भावों की कल्पना कर लेनी होगी। आशा के कच्चे हाथों, बड़े जतन से लिखे अपने नाम में महेंद्र को एक रागिनी सुनाई पड़ी - 'साध्वी नारी के मन के गहन बैकुंठ से उठने वाला पावन प्रेम-संगीत।'

दो ही चार दिनों की जुदाई से महेंद्र के मन का वह अवसाद चला गया। सरल आशा के नवीन प्रेम की स्मृति फिर ताजा हो गई। इन दिनों गिरस्ती की रोजमर्रा की असुविधाएँ उसे खिझाने लगी थीं, अब वह सब मिट गया, बस कर्म और कारणहीन एक विशुद्ध प्रेमानंद की जोत में आशा की मानसी मूर्ति उसके मन में जीवंत हो उठी।

महेंद्र ने लिफाफे को इत्मीनान से खोला। उसमें से चिढ़ी निकाल कर अपने गाल और कपाल से लगाई। महेंद्र ने जो खूशबू कभी आशा को भेंट की थी, अकुलाए निःश्वास-सी उसी की महक खत में से निकल कर महेंद्र के प्राणों में पैठ गई।

खत खोल कर पढ़ा। अरे, जैसी टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ हैं, वैसी भाषा तो नहीं है! हरफ कच्चे, मगर उनसे बातों का मेल कहाँ? लिखा था-

'प्रियतम, जिसे भूलने के लिए घर से चल दिए, इस लिखावट से उसकी याद क्यों दिलाऊँ? जिस लता को मरोड़ कर माटी में फेंक दिया, किस हया से वह फिर धड़ को जकड़ कर उठने की कोशिश करे! जाने वह मिट्टी में मिल कर मिट्टी क्यों न हो गई!

'लेकिन इससे तुम्हारा क्या नुकसान है नाथ, लमहे भर को याद ही आ गया तो! उससे जी को चोट भी कितनी लगेगी! मगर तुम्हारी उपेक्षा काँटे-सी मेरे पंजर में चुभ कर रह गई है! तुम जिस तरह भूल बैठे, मुझे भी उसी तरह भुलाने की तरकीब बता दो।'

'नाथ, तुमने मुझे प्यार किया था, यह क्या मेरा ही कसूर था! ऐसे सौभाग्य की मैंने स्वप्न में भी आशा की थी क्या? मैं कहाँ से आई, मुझे कौन जानता था? मुझे नजर उठा कर न देखा होता, मुझे अगर यहाँ मुफ्त की बाँदी बन कर रहना होता, तो मैं क्या तुम्हें दोष दे सकती थी? जाने मेरे किस गुण पर तुम खुद ही बिना मेघ के बिजली ही कड़की, तो उस बिजली ने सिर्फ जलाया ही क्यों? तन-मन को बिलकुल राख क्यों न कर डाला?

'इन दो दिनों में बेहद सब्र किया, बहुत सोचती रही, लेकिन एक बात न समझ सकी कि यहाँ रह कर भी क्या तुम मुझे ठुकरा नहीं सकते थे? मेरे लिए भी क्या घर छोड़ कर जाने की जरूरत थी? क्या मैं तुम्हें इतना घेरे हूँ? मुझे अपने कमरे के कोने में, दरवाजे के बाहर फेंक देने पर भी क्या मैं तुम्हारी नजर में आती? यही था, तो तुम फिर गए क्यों? मेरे कहीं जाने का क्या कोई उपाय न था? बह कर आई थी, बह कर चली जाती...'

यह चिढ़ी कैसी! भाषा किसकी थी, महेंद्र को समझते देर न लगी। महेंद्र उस पत्र को लिए स्तंभित रहा।

बड़ी देर तक सोचता रहा। खत को उसने कई बार पढ़ा। कुछ दिनों तक जो दूर के आभास की तरह रहा, आज वह साफ प्रकट होने लगा। उसकी जिंदगी के आसमान के एक कोने में जो धूमकेतु छाया था, आज उसकी उठी हुई पूँछ आग की रेखाओं में जलती हुई दिखाई पड़ी।

चिट्ठी यह असल में विनोदिनी की है। भोली आशा ने इसे अपनी बात समझ कर लिखा है। पहले जिन बातों को उसने कभी सोचा नहीं, विनोदिनी के लिखाने से वे ही बातें उसके मन में जाग उठीं। जो नई वेदना पैदा हुई, उसे इस खूबी के साथ आशा तो हर्गिज जाहिर नहीं कर सकती थी। वह सोचने लगी, 'सखी ने मेरे मन की बात को ऐसा ठीक-ठीक कैसे समझ लिया! और, इतना ठीक से जाहिर कैसे किया!' वह अपनी अंतरंग सखी को और भी मजबूत सहारे की तरह पकड़ बैठी। क्योंकि जो बात उसके मन में है, उसकी भाषा उसकी सखी के पास है - इतनी बेबस थी वह!

महेंद्र कुर्सी से उठा। भवों पर बल डाला। विनोदिनी पर क्रोध करने की कोशिश की। मगर बीच में आशा पर गुस्सा आ गया। आशा की मूर्खता तो देखो, पति पर यह कैसा जुल्म! वह फिर बैठ गया और इस बात के सबूत में उस खत को फिर से पढ़ गया। अंदर-ही-अंदर खुशी होने लगी। यह समझ कर उसने चिट्ठी को पढ़ने की बहुत चेष्टा की, मानो वह आशा की ही लिखी हो। लेकिन इसकी भाषा किसी भी तरह से भोली आशा की याद नहीं दिलाती। दो ही चार पंक्तियाँ पढ़ते ही सुख से पागल कर देने वाली एक झाग भरी शराब-जैसा संदेह मन को ढाँप लेता। प्रेम की इस प्रतीति ने महेंद्र को मतवाला बना दिया। उसे लगने लगा चाहे खुद के प्रति हिंसा करके ही मन को किसी और तरफ लगा दे। उसने मेज पर जोरों का मुक्का मारा और उछल कर खड़ा हो गया। बोला - 'हटाओ, चिट्ठी को जला डालें।' चिट्ठी को वह लैंप के करीब ले गया। जलाया नहीं, फिर एक बार पढ़ गया। अगले दिन नौकर कागज की बहुत-सी राख उठा ले गया था, लेकिन यह राख आशा की चिट्ठियों की न थी, उसके उत्तर की कई अधूरी कोशिशों की राख थी, जिन्हें अंत में महेंद्र ने जला दिया था।

## 21

इस बीच और एक चिट्ठी आ पहुँची -

'तुमने मेरे पत्र का जवाब नहीं दिया? अच्छा ही किया, सही बात लिखी तो नहीं जाती; तुम्हारा जो जवाब है, उसे मैंने मन में समझ लिया। भक्त जब अपने देवता को पुकारता है तो देवता क्या जबान से कुछ कहते हैं? लगता है, दुखिया की तुलसी को चरणों में जगह मिल गई।'

'लेकिन भक्त की पूजा से कहीं शिव की तपस्या टूटती हो तो मेरे हृदय के देवता, नाराज न होना! वरदान दो या न दो, आँखें उठा कर निहारो या न निहारो, जान सको या न जान सको - पूजा किए बिना भक्त की दूसरी गति नहीं। इसलिए आज भी दो पंक्तियाँ लिख भेजती हूँ - हे मेरे पत्थर के देवता! तुम अडिग ही रहो!'

महेंद्र फिर जवाब लिखने बैठा। लेकिन पत्र को आशा को लिखते हुए कलम की नोक पर जवाब विनोदिनी का आ जाता। चालाकी से इधर-उधर की हाँकते उससे लिखते हुए नहीं बनता। लिख-लिख कर बहुत-से पन्ने फाड़ डाले। एक लिखा भी गया तो उसे लिफाफे में भर कर आशा का नाम लिखते हुए अचानक किसी ने उसकी पीठ पर चाबुक

जमाया- 'बेईमान! विश्वस्त बालिका से इस तरह दगा!' महेंद्र ने पत्र को टुकड़े करके फेंक दिया और बाकी रात मेज पर दोनों हथेलियों में मुँह छिपाए अपने को मानो अपनी ही नजर से छिपाने की कोशिश करता रहा।

तीसरा पत्र! 'रूठना जो कतई नहीं जानता, वह भी क्या प्यार करता है? अपने प्यार को अनादर और अपमान से बचाए न रख सकूँ तो वह तुम्हें दूँगी कैसे?'

'शायद तुम्हारे मन को ठीक-ठीक समझ नहीं पाई हूँ, तभी इतनी हिम्मत कर सकी हूँ। तुम छोड़ गए तो भी मैंने ही बढ़ कर चिट्ठी लिखी; जब तुम चुप हो गए थे, तब भी मन की कह गई हूँ। मगर तुम्हारे साथ अगर गलती की है, तो वह भी क्या मेरा ही कसूर है? शुरू से आखिर तक सारी बातें एक बार दुहरा कर देखो तो सही कि मैंने जो कुछ समझा था, वह तुम्हीं ने नहीं समझाया क्या?

'चाहे जो हो, गलत हो या सही, जो लिखा है, वह मिटने का नहीं, जो दिया है, वह वापिस नहीं ले सकूँगी, यही शिकायत है। छिः-छिः ऐसी शर्म भी नारी के नसीब में आती है। लेकिन इससे यह हर्गिज न समझना कि जो प्यार करती है, वह अपने प्यार को बार-बार अपमानित कर सकती है। साफ बताओ कि मेरी चिट्ठी की चाहत नहीं हो तो बताओ और इसका जवाब न मिला तो यहीं तक बस।'

महेंद्र से और न रहा गया। मन में बोला - 'खूब नाराज हो कर ही घर लौट रहा हूँ। विनोदिनी का खयाल है, मैं उसे भूलने के लिए घर से भाग खड़ा हुआ हूँ।' उसकी इस हेकड़ी को भुलाने के लिए ही महेंद्र ने उसी दम घर लौट जाने का संकल्प किया।

इतने में बिहारी आ गया। उसे देखते ही महेंद्र के मन की उमंग दुगुनी हो गई। अब तक संदेहों के चलते बिहारी से उसे ईर्ष्या होती रही थी और दोनों में गाँठ पड़ती जा रही थी। चिट्ठी पढ़ने के बाद और ज्यादा आवेग में उसने उसकी आगवानी की।

लेकिन बिहारी का चेहरा आज उतरा हुआ था। महेंद्र ने सोचा, 'बेचारे ने इस बीच विनोदिनी से जरूर मुलाकात की होगी और वहाँ से ठोकर खा कर आया है।' उसने पूछा - 'क्यों भाई, इस बीच मेरे घर गए थे कभी?'

बिहारी ने कहा - 'वहीं से हो कर आ रहा हूँ अभी।'

मन-ही-मन बिहारी की पीड़ा का अनुमान करके महेंद्र को अच्छा न लगा। उसने मन में कहा - 'अभागा! किसी महिला ने कभी उसे नहीं चाहा।' फिर भी उसने बातचीत शुरू करते हुए पूछा - 'कैसे हैं सब?'

इस बात का जवाब देने के बजाय वह बोला - 'घर छोड़ कर अचानक यहाँ!'

महेंद्र ने कहा - 'इधर लगातार नाइट-ड्यूटी पड़ रही है - वहाँ दिक्कत हो रही थी।'

बिहारी बोला - 'नाइट-ड्यूटी तो इसके पहले भी पड़ी है, मगर घर छोड़ते तो नहीं देखा कभी?'

महेंद्र ने हँस कर कहा - 'क्यों, कोई शक हो रहा है।'

बिहारी बोला - 'मजाक न करो। तुम्हें कहीं नहीं रहना है। चलो इसी वक्त घर चलो।'

घर जाने को तो वह तैयार ही बैठा था; मगर बिहारी ने आग्रह किया तो वह मना कर गया, गोया घर जाने की उसे जरा भी इच्छा नहीं। बोला - 'पागल हुए हो, मेरे एक साल पर पानी फिर जाएगा।'

बिहारी ने कहा - 'देखो महेन्द्र भैया, मैं तुम्हें तब से देखता आया हूँ, जब तुम छोटे-से थे। मुझे फुसलाने की कोशिश न करो! तुम जुल्म कर रहे हो।'

महेन्द्र - 'जुल्म कर रहा हूँ, किस पर, जज साहब!'

बिहारी नाराज हो कर बोला - 'तुम सदा दिल की तारीफ करते आए हो, अब तुम्हारा दिल कहाँ गया?'

महेन्द्र - 'फिलहाल तो अस्पताल में है।'

बिहारी - 'चुप रहो! तुम यहाँ हँस-हँस कर मुझसे मजाक कर रहे हो और वहाँ तुम्हारी आशा तुम्हारे कमरों में रोती फिर रही है।'

आशा के रोने की बात सुन कर अचानक महेन्द्र को धक्का लगा। अपने नए नशे में उसे इसकी सुध न थी कि दुनिया में और भी किसी का सुख-दुःख है। वह चौंका! पूछा - 'आशा क्यों रो रही है?'

बिहारी ने अपनी आँखों जो कुछ देखा, आदि से अंत तक कह सुनाया। उसे याद आ गया कैसे विनोदिनी से लिपट कर आशा की आँखें बह रही थीं। उसका गला रुँध गया। महेन्द्र को खूब पता था कि आशा का मन वास्तव में किधर है!

महेन्द्र बोला - 'खैर चलो। गाड़ी बुला लो!'

## 22

महेन्द्र घर पहुँचा। उसका चेहरा देखते ही आशा के मन का सारा संदेह कुहरे के समान एक ही क्षण में फट गया। अपनी चिट्ठियों की बात सोच कर महेन्द्र के सामने मारे शर्म के वह सिर न उठा सकी। इस पर महेन्द्र ने शिकवा किया - 'ऐसे आरोप लगा कर तुमने चिट्ठियाँ लिखीं कैसे!'

और उसने जाने कितनी बार पढ़ी हुई वे तीनों चिट्ठियाँ अपनी जेब से निकालीं। आशा ने गिड़गिड़ाकर कहा - 'तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, इन चिट्ठियों को फाड़ फेंको!'

महेन्द्र से उन चिट्ठियों को ले लेने के लिए वह उतावली हो गई। महेन्द्र ने उसे रोक कर चिट्ठियों को जेब के हवाले किया। कहा - 'मैं काम से गया और तुमने मेरा मतलब ही नहीं समझा? मुझ पर संदेह किया?'

छलछलाती आँखों से आशा बोली - 'अबकी बार मुझे माफ कर दो! आइंदा ऐसा न होगा।'

महेन्द्र ने कहा - 'कभी नहीं?'

आशा बोली - 'कभी नहीं।'

महेंद्र ने उसे अपने पास खींच कर चूम लिया। आशा बोली - 'लाओ, चिट्ठियाँ दे दो, फाड़ डालूँ!'

महेंद्र बोला - 'रहने दो उन्हें।'

आशा ने विनय से यह समझा - 'मेरी सजा के रूप में इन्होंने चिट्ठियाँ रख ली हैं।'

चिट्ठियों के चलते आशा का मन विनोदिनी की तरफ से जरा ऐंठ गया। पति लौट आए, यह खबर वह विनोदिनी से कहने न गई, बल्कि उससे कतराती रही। विनोदिनी इसे ताड़ गई और काम के बहाने बिलकुल दूर ही रही।

महेंद्र ने सोचा - 'अजीब है! सोचा था, अबकी बार विनोदिनी को मजे से देख पाऊँगा- उलटा ही हुआ। फिर उन चिट्ठियों का मतलब?'

महेंद्र ने अपने मन को इसके लिए सख्त बनाया कि नारी के दिल को अब कभी समझने की कोशिश नहीं करेगा। सोच रखा था, 'विनोदिनी पास आना भी चाहेगी तो मैं दूर-दूर रहूँगा।' अभी उसके जी में आया, 'न, यह तो ठीक नहीं हो रहा है- सचमुच ही हम लोगों में कोई विकार आ गया है। खुले दिल की विनोदिनी से बातचीत, हँसी-दिल्लगी करके संदेह की इस घुटन को मिटा डालना ही ठीक है।' उसने आशा से कहा - 'लगता है, मैं ही तुम्हारी सखी की आँख की किरकिरी हो गया। उनकी तो अब झाँकी भी नहीं दिखाई पड़ती।'

उदास हो कर आशा बोली - 'जाने उसे क्या हो गया है!'

इधर राजलक्ष्मी आ कर रोनी-सी हो कर बोलीं- 'बेटी, अब तो विपिन की बहू को रोकना मुश्किल हो रहा है।'

महेंद्र चौंकते मगर अपने पर नियंत्रण करते हुए उसने पूछा - 'क्यों माँ?'

'बेटा, वह तो अबकी बार अपने घर जाने के लिए अड़ गई है। तुझे तो किसी की खातिरदारी आती नहीं। एक पराई लड़की अपने घर आई है, उसका अगर घर के लोगों-जैसा आदर-मान न हो तो रहे कैसे?'

विनोदिनी सोने के कमरे में चादर सी रही थी। महेंद्र गया। आवाज दी - 'किरकिरी!'

विनोदिनी सम्हलकर बैठी। पूछा - 'जी! महेंद्र बाबू!'

महेंद्र बाबू ने कहा - 'अजीब मुसीबत है! ये हजरत महेंद्र बाबू कब से हो गए!'

अपनी सिलाई में आँखें गड़ाए हुए ही विनोदिनी बोली - 'फिर क्या कह कर पुकारूँ आपको?'

महेंद्र ने कहा - 'जिस नाम से अपनी सखी को पुकारती हो- 'आँख की किरकिरी!'

और दिन की तरह विनोदिनी ने मजाक करके कोई जवाब न दिया। वह अपनी सिलाई में लगी रही।

महेंद्र ने कहा - 'लगता है, वही सच्चा रिश्ता है, तभी तो दुबारा जुड़ पा रहा है।'

विनोदिनी जरा रुकी। सिलाई के किनारे से बढ़ रहे धागे के छोर को दाँतों से काटती हुई बोली - 'मुझे क्या पता, आप जानें!'

और दूसरे जवाबों को टाल कर गंभीरता से पूछ बैठी- 'कॉलेज से एकाएक कैसे लौट आए।'

महेंद्र बोला - 'केवल लाश की चीर-फाड़ से कब तक चलेगा?'

विनोदिनी ने फिर दाँत से सूत काटा और उसी तरह सिर झुकाए हुए बोली - 'तो अब जीवन की जरूरत है?'

महेंद्र ने सोचा था, आज विनोदिनी से बड़े सहज ढंग से हँसी-मजाक करूँगा लेकिन बोझ इतना हो गया कि लाख कोशिश करके भी हल्का जवाब जुबान पर न आ सका। विनोदिनी आज कैसी दूरी रख कर चल रही है, यह देख कर महेंद्र उद्वेलित हो गया। इच्छा होने लगी, एक झटके से इस रुकावट को मटियामेट कर दे। उसने विनोदिनी की काटी हुई वाक्य-चिकोटी का कोई जवाब न दिया - अचानक उसके पास जा बैठा। बोला - 'तुम हम लोगों को छोड़ कर जा क्यों रही हो? कोई अपराध हो गया है मुझसे।' विनोदिनी इस पर जरा खिसक गई। सिलाई से सिर उठा कर उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें महेंद्र की ओर लगा कर कहा - 'काम-धन्धा तो हर किसी को है। आप सब छोड़ कर कहीं और रहने चले दिए। वह क्या किसी अपराध से कम है।'

महेंद्र को कोई अच्छा जवाब ढूँढ़े न मिला। जरा देर चुप रह कर पूछा - 'ऐसा क्या काम पड़ा है कि गए बिना होगा ही नहीं?'

बड़ी सावधानी से सुई में धागा डालती हुई वह बोली - 'काम है या नहीं, यह मैं ही जानती हूँ। आपको उसकी फेहरिस्त क्या दूँ।'

महेंद्र खिड़की से बाहर चिंतित-सा बड़ी देर तक एक नारियल की फुनगी पर नजर टिकाए चुप बैठा रहा। विनोदिनी चुपचाप सिलाई करती रही। यह हाल कि फर्श पर सुई गिरे, तो आवाज सुनाई दे! बड़ी देर बाद महेंद्र अचानक बोल उठा। हठात जो निस्तब्धता भंग हुई, विनोदिनी चौंक पड़ी। उसकी उँगली में सुई चुभ गई।

महेंद्र ने पूछा - 'किसी भी तरह से न रुक सकोगी?'

सुई चुभी उँगुली का खून चूसती हुई विनोदिनी ने कहा - 'विनती किस बात की? मैं रही न रही, आपको क्या फर्क पड़ता है।'

कहते-कहते उसका गला भर आया। फिर झुक कर वह सिलाई में लग गई। लगा, उसकी पलकों की कोर में आँखों की हल्की-सी रेखा झलक पड़ी है। माघ का अपराहन उधर शाम के अँधेरे में खोने लगा था।

लमहे-भर में महेंद्र ने विनोदिनी का हाथ दबा कर रुंधे और सजल स्वर में कहा, 'अगर इससे मेरा कुछ बिगड़ता हो तो रुकोगी?'

विनोदिनी ने झट से हाथ छुड़ा लिया। थोड़ा सरक कर बैठ गई। महेंद्र चौंका। अपनी अंतिम बात अपने ही कानों में व्यंग्य-जैसी गूँजती रही। दोषी जीभ को उसने दाँत से काटा फिर कुछ कहते न बना।

घर में सन्नाटा छाया था, तभी आशा आ गई। विनोदिनी झट कह उठी, 'खैर, तुम लोगों ने जब मेरी अकड़ इतनी बढ़ा रखी है, तो मेरा भी फर्ज है कि तुम लोगों की एक बात मान लूँ। जब तक विदा नहीं करोगे, मैं यहीं रहूँगी।'

पति की कामयाबी से फूली न समाती हुई आशा सखी से लिपट गई। बोली - 'तो फिर यही पक्का रहा! तीन बार कबूल करो कि जब तक हम विदा नहीं करते, तब तक रहोगी, रहोगी, रहोगी।'

विनोदिनी ने तीन बार कबूल किया। आशा ने कहा - 'भई किरकिरी, रहना तो पड़ा, फिर नाकों चने क्यों चबवाए? अंत में मेरे पति से हार माननी ही पड़ी।'

विनोदिनी हँस कर बोली - 'भाई साहब, हार मैंने मानी कि तुमने मानी?'

महेंद्र को जैसे काठ मार गया हो। लग रहा था, जैसे उसका अपराध तमाम कमरों में बिखरा पड़ा है। उसने गंभीर हो कर कहा - 'हार तो मेरी ही हुई है।'

और वह कमरे से बाहर चला गया।

और दूसरे ही क्षण फिर अंदर आया। आ कर विनोदिनी से कहा - 'मुझे माफ कर दो!'

विनोदिनी बोली - 'क्या कुसूर किया है तुमने, लालाजी?'

महेंद्र बोला - 'तुम्हें यों जबरदस्ती यहाँ रोक रखने का हमें कोई अधिकार नहीं।'

विनोदिनी हँस कर बोली - 'जबरदस्ती कहाँ की है? प्यार से सीधी तरह ही तो रहने को कहा - यह जबरदस्ती थोड़े है।'

आशा सोलहों आने सहमत हो कर बोली - 'हर्गिज नहीं।'

विनोदिनी ने कहा - 'भाई साहब, तुम्हारी इच्छा है, मैं रहूँ। मेरे जाने से तुम्हें तकलीफ होगी- यह तो मेरी खुशकिस्मती है। क्यों भई किरकिरी, ऐसे सहृदय दुनिया में मिलते कितने हैं? और दुःख में दुखी, सुख में सुखी भाग्य से कोई मिला, तो मैं ही उसे छोड़ कर जाने को क्यों उतावली होऊँ?'

पति को चुप रहते देख आशा जरा खिन्न मन से बोली - 'बातों में तुमसे कौन जीते? मेरे स्वामी तो हार मान गए, अब जरा रुक भी जाओ।'

महेंद्र फिर तेजी से बाहर हो गया। उधर बिहारी कुछ देर राजलक्ष्मी से बातचीत करके महेंद्र की ओर आ रहा था। दरवाजे पर ज्यों ही बिहारी पर नजर पड़ी, महेंद्र बोल उठा- 'भाई बिहारी, मुझ-सा नालायक दुनिया में दूसरा नहीं।'

उसने कुछ ऐसे कहा कि वह बात कमरे में पहुँच गई।

अंदर से उसी दम पुकार हुई - 'बिहारी बाबू?'

बिहारी ने कहा - 'अभी आया, विनोद भाभी!'

कमरे में जाते ही बिहारी ने तुरंत आशा की तरफ देखा - घूँघट में से जितना-भर दिखाई पड़ा, उसमें विषाद या वेदना की कोई निशानी ही न थी। आशा उठ कर जाने लगी। विनोदिनी उसे पकड़े रही। कहा - 'यह तो बताएँ भाई

साहब, मेरी आँखों की किरकिरी से आपका सौत का नाता है क्या? आपको देखते ही वह भाग क्यों जाना चाहती है?

आशा ने शर्मा कर विनोदिनी को झिड़का।

बिहारी ने हँस कर कहा - 'इसलिए कि विधाता ने मुझे वैसा खूबसूरत नहीं बनाया है।'

विनोदिनी - 'देख लिया भई किरकिरी, बिहारी बाबू किस कदर बचा कर बात करना जानते हैं! इन्होंने तुम्हारी पसंद को दोष नहीं दिया, दिया विधाता को। लक्ष्मण-जैसे सुलक्षण देवर को पा कर तुझे आदर करना न आया, तेरी ही तकदीर खोटी है।'

बिहारी - 'इस पर तुम्हें अगर तरस आए विनोद भाभी, तो फिर मुझे शिकवा ही क्या रहे!'

विनोदिनी - 'समुद्र तो है ही, फिर भी बादलों के बरसे बिना चातक की प्यास क्यों नहीं मिटती?'

आशा को आखिर रोक कर न रखा जा सका। वह जबरदस्ती हाथ छुड़ा कर चली गई। बिहारी भी जाना चाह रहा था। विनोदिनी ने कहा - 'महेन्द्र बाबू को क्या हुआ है, कह सकते हैं आप?'

बिहारी ठिठक पड़ा। बोला - 'मुझे तो कुछ पता नहीं, कुछ हुआ है क्या?'

विनोदिनी - 'पता नहीं, मुझे तो ठीक नहीं दीखता।'

उत्सुक हो कर बिहारी कुर्सी पर बैठ गया। पूरी तरह सुन लेने के खयाल से वह उन्मुख हो कर विनोदिनी की ओर ताकता रहा। विनोदिनी कुछ न बोली। मन लगा कर चादर सीने लगी।

कुछ देर रुक कर वह बोला, 'तुमने महेन्द्र में खास कुछ गौर किया क्या?'

विनोदिनी बड़े सहज भाव से बोली - 'क्या जानें, मुझे तो ठीक नहीं दीखता। मुझे तो अपनी किरकिरी के लिए फिक्र होती है।' - और एक लंबी उसाँस ले कर वह सिलाई छोड़ कर जाने लगी।

बिहारी ने व्यस्त हो कर कहा - 'जरा बैठो, भाभी!'

विनोदिनी ने कमरे के सारे खिड़की-किवाड़ खोल दिए। लालटेन की बत्ती बढ़ा दी और सिलाई का सामान लिए बिस्तर के उस छोर पर जा बैठी। बोली - 'मैं तो यहाँ सदा रहूँगी नहीं- मेरे चले जाने पर मेरी किरकिरी का खयाल रखना- वह बेचारी दुखी न हो।'

कह कर मन के उद्वेग को जब्त करने के लिए उसने मुँह फेर लिया।

बिहारी बोल पड़ा - 'भाभी, तुम्हें रहना ही पड़ेगा। तुम्हारा अपना कहने को कोई नहीं- इस भोली लड़की को सुख-दुःख में बचाने का भार तुम लो- कहीं तुम छोड़ गई, तो फिर कोई चारा नहीं।'

विनोदिनी - 'भाई साहब, दुनिया का हाल तुमसे छिपा नहीं, मैं यहाँ सदा कैसे रह सकता हूँ? लोग क्या कहेंगे?'



बिहारी - 'लोग जो चाहें कहें, तुम ध्यान ही मत दो! तुम देवी हो, एक असहाय लड़की को दुनिया की ठोकरों से बचाना तुम्हारे ही योग्य काम है।'

विनोदिनी का रोआँ-रोआँ पुलकित हो उठा। बिहारी के इस भक्ति-उपहार को वह मन से भी गलत मान कर ठुकरा न सकी, हालाँकि वह छलना कर रही थी। ऐसा व्यवहार उसे कभी किसी से न मिला था। विनोदिनी के आँसू देख कर बिहारी मुश्किल से अपने आँसू जब्त करके महेन्द्र के कमरे में चला गया। बिहारी को यह बात बिल्कुल समझ में न आई कि महेन्द्र ने अचानक अपने आपको नालायक क्यों कह दिया। कमरे में जा कर देखा, महेन्द्र नहीं था। पता चला, वह टहलने निकल गया है। पहले बे-वजह वह घर से कभी बाहर नहीं जाया करता था। जाने-पहचाने लोगों के घर से बाहर उसे बड़ी परेशानी होती। बिहारी सोचता हुआ धीरे-धीरे अपने घर चला गया।

विनोदिनी आशा को अपने कमरे में ले आई। उसे छाती से लगा कर छलछलाई आँखों से कहा - 'भई किरकिरी, मैं बड़ी अभागिन हूँ, बड़ी बदशकुन।'

आशा दुखी मन से बोली - 'ऐसा क्यों कहती हो, बहन?'

सुबकते बच्चे की तरह वह आशा की छाती में मुँह गाड़ कर बोली - 'मैं जहाँ भी रहूँगी, बुरा ही होगा। मुझे छोड़ दे बहन, छुट्टी दे! मैं अपने जंगल में चली जाऊँ।'

महेन्द्र से बिहारी की मुलाकात न हो सकी, इसलिए कोई बहाना बना कर फिर वह वहाँ आया ताकि आशा और महेन्द्र के बीच की आशंका वाली बात को और कुछ साफ तौर से जान सके।

वह विनोदिनी से यह अनुरोध करने का बहाना लिए आया कि कल महेन्द्र को अपने यहाँ भोजन के लिए आने को कहे। उसने आवाज दी - 'विनोद भाभी!' और बाहर से ही बत्ती की मद्धम रोशनी में गीली आँखों वाली दोनों सखियों को आलिंगन में देख कर वह ठिठक गया। अचानक आशा के मन में हुआ कि हो न हो, आज बिहारी ने जरूर विनोदिनी से कुछ निंदा की बात कही है, तभी वह जाने की बात कर रही है। यह तो बिहारी बाबू की बड़ी ज्यादाती है। ऊँहू, अच्छे मिजाज के नहीं हैं। कुढ़ कर आशा बाहर निकल आई और बिहारी भी विनोदिनी के प्रति मन की भक्ति की ओर बढ़ कर बैरँग वापस हो गया।

रात को महेन्द्र ने आशा से कहा - 'चुन्नी, मैं सुबह की गाड़ी से बनारस चला जाऊँगा।'

आशा का कलेजा धक से रह गया। पूछा, 'क्यों?'

महेन्द्र बोला - 'काफी दिन हो गए, चाची से भेंट नहीं हुई।' महेन्द्र की यह बात सुन कर आशा शर्मिदा हो गई। उसे यह इससे भी पहले सोचना चाहिए था। अपने सुख-दुःख के आकर्षण में वह अपनी स्नेहमयी मौसी को भूल गई।

महेन्द्र ने कहा - 'अपने स्नेह की एकमात्र थाती को वह मेरे ही हाथों सौंप गई हैं - उन्हें एक बार देखे बिना मुझे चैन नहीं मिलता।'

कहते-कहते महेन्द्र का गला भर आया। स्नेह-भरे मौन आशीर्वाद और अव्यक्त मंगल-कामना से वह बार-बार अपना दायाँ हाथ आशा के माथे पर फेरने लगा। अचानक ऐसे उमड़ आए स्नेह का मर्म आशा न समझ सकी।

उसका हृदय केवल पिघल कर आँखों से बहने लगा। आज ही शाम को स्नेहवश विनोदिनी ने उसे जो कुछ कहा था, याद आया। इन दोनों में कहीं योग भी है या नहीं, वह समझ न सकी। लेकिन उसे लगा, 'यह मानो उसके जीवन की कोई सूचना है। अच्छी बुरी, कौन जाने!'

भय से व्याकुल हो कर उसने महेंद्र को बाँहों में जकड़ लिया। महेंद्र उसके नाहक संदेह के आवेश को समझ गया। बोला - 'चुन्नी, तुम पर तुम्हारी पुण्यवती मौसी का आशीर्वाद है। तुम्हें कोई खतरा नहीं। तुम्हारी ही भलाई के लिए वह अपना सर्वस्व छोड़ कर चली गई - तुम्हारा कभी कोई बुरा नहीं हो सकता।'

इस पर आशा ने निडर हो कर अपने मन के भय को निकाल फेंका। पति के इस आशीर्वाद को उसने अक्षय कवच के समान ग्रहण किया। मन-ही-मन उसने मौसी के चरणों की धूल को बार-बार अपने माथे से लगाया और एकाग्र हो कर बोली - 'तुम्हारा आशीर्वाद सदा मेरे स्वामी की रक्षा करे।'

दूसरे दिन महेंद्र चला गया। विनोदिनी ने जाते समय कुछ न बोला। विनोदिनी मन में कहने लगी - 'गलती खुद की और गुस्सा मुझ पर! ऐसा साधु पुरुष तो मैंने नहीं देखा। लेकिन ऐसी साधुता ज्यादा दिन नहीं टिकती!'

## 23

बहुत दिनों के बाद अचानक महेंद्र को आते देख कर एक ओर तो अन्नपूर्णा गदगद हो गई और दूसरी ओर उन्हें यह शंका हुई कि शायद आशा की माँ से फिर कुछ चख-चख हो गई है - महेंद्र उसी की शिकायत पर दिलासा देने आया है। छुटपन से ही महेंद्र मुसीबत पड़ने पर अपनी चाची की शरण में जाता रहा है। कभी किसी पर उसे गुस्सा आया, तो चाची ने उसे शांत कर दिया और कभी उसे कोई तकलीफ हुई तो चाची ने धीरज से सहने की नसीहत दी। लेकिन विवाह के बाद से जो सबसे बड़ा संकट महेंद्र पर आ पड़ा, उसके प्रतिकार की कोशिश तो दूर रही - सांत्वना देने तक में वह असमर्थ रहीं। इसके बारे में जब वह यह समझ गई कि चाहे जैसे भी वह हाथ डालें, घर की अशांति दुगुनी हो जाएगी, तो उन्होंने घर ही छोड़ दिया। बीमार बच्चा जब पानी के लिए चीखता-रोता है और पानी देने की मनाही होती है, तो दुखिया माँ जैसे दूसरे कमरे में चली जाती है, अन्नपूर्णा ठीक वैसे ही काशी चली गई थीं। सुदूर तीर्थ में रह कर धर्म-कर्म में ध्यान-मन लगा कर दीन-दुखिया को कुछ भुलाया था - महेंद्र क्या फिर उन्हीं झगड़े-झंझटों की चर्चा से उनके छिपे घाव पर चोट करने आया है?

लेकिन महेंद्र ने आशा के संबंध में अपनी माँ से कोई शिकायत नहीं की। फिर तो उनकी शंका दूसरी ओर बढ़ी। जिस महेंद्र के लिए आशा को छोड़ कर कॉलेज तक जाना गवारा न था, वह चाची की खोज-खबर लेने के लिए काशी कैसे आ पहुँचा? तो क्या आशा के प्रति उसका आकर्षण ढीला पड़ रहा है?

उन्होंने पूछा - 'मेरे सिर की कसम महेंद्र, ठीक-ठीक बताना, चुन्नी कैसी है?'

महेंद्र बोला - 'वह तो खासे मजे में है, चाची!'

'आजकल वह करती क्या है, बेटे! तुम लोग अभी तक वैसे ही बच्चों-जैसे हो या घर-गिरस्ती का भी ध्यान रखते हो अब?'

महेंद्र ने कहा - 'बचपना तो बिलकुल बंद है, चाची! सारे झंझटों की जड़ तो किताब थी - चारुपाठ - वह जाने कहाँ गायब हो गई, अब ढूँढ़े भी नहीं मिलती, कहीं।'

- 'अरे, बिहारी क्या कर रहा है?'

महेंद्र ने कहा - 'अपना जो काम है, उसे छोड़ कर वह सब कुछ कर रहा है। पटवारी-गुमाश्ते उसकी जायदाद की देख-भाल करते हैं। वे क्या देख-भाल करते हैं, खुदा जाने। बिहारी का हमेशा यही हाल रहा। उसका अपना काम दूसरे लोग देखते हैं, दूसरों का काम वह खुद देखता है।'

अन्नपूर्णा ने पूछा - 'विवाह नहीं करेगा क्या?'

महेंद्र जरा हँस कर बोला - 'कहाँ, ऐसा कुछ तो दिखाई नहीं पड़ता।'

अन्नपूर्णा को अंतर के गोपन स्थान में एक चोट-सी लगी।

महेंद्र ने कभी मजाक से, कभी गंभीर हो कर अपनी गिरस्ती का मौजूदा हाल उन्हें सुनाया, केवल विनोदिनी का कोई जिक्र उसने नहीं किया।

कॉलेज अभी खुला था। महेंद्र के ज्यादा दिन काशी में रहने की गुंजाइश न थी। लेकिन सख्त बीमारी के बाद अच्छी आबोहवा में सेहत सुधारने की जो तृप्ति होती है, काशी में अन्नपूर्णा के पास महेंद्र को हर रोज उसी तृप्ति का अनुभव हो रहा था - लिहाजा दिन बीतने लगे। अपने आप ही से विरोध की जो स्थिति हो गई थी, वह मिट गई। इन कई दिनों तक धर्मप्राण अन्नपूर्णा के साथ रह कर दुनियादारी के फर्ज़ ऐसे सहज और सुख देने वाले लगे कि महेंद्र को उनके हौआ लगने की पिछली बात हँसी उड़ाने-जैसी लगी। उसे लगा - विनोदिनी कुछ नहीं। यहाँ तक कि उसकी शक्ल भी वह साफ-साफ याद नहीं कर पाता। आखिरकार बड़ी दृढ़ता से महेंद्र मन-ही-मन बोला - 'आशा को मेरे हृदय से बाल-भर भी खिसका सके, ऐसा तो मैं किसी को, कहीं भी नहीं देख पाता।'

उसने अन्नपूर्णा से कहा - 'चाची, मेरे कॉलेज का हर्ज हो रहा है, अब इस बार तो मैं चलूँ! तुम संसार की माया छोड़ कर यहाँ आ बसी हो अकेले में, फिर भी अनुमति दो कि बीच-बीच में तुम्हारे चरणों की धूल ले जाया करूँ!'

काशी से लौट कर महेंद्र ने आशा को जब मौसी के भेजे गए स्नेहोपहार - एक सिंदूर की डिबिया और सफेद पत्थर का एक लोटा - दिए, तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। मौसी का वह स्नेहमय धीरज और उन पर अपनी तथा सास की फजीहतों की बात याद आते ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने महेंद्र से कहा - 'बड़ी इच्छा हो रही है कि एक बार मैं भी काशी जाऊँ और मौसी की क्षमा तथा चरणों की धूल ले आऊँ। क्या यह मुमकिन नहीं?'

महेंद्र ने आशा के मन की पीड़ा को समझा और इस बात पर राजी भी हुआ कि वह कुछ दिनों के लिए अपनी मौसी के पास जाए। लेकिन फिर अपनी पढ़ाई का हर्ज करके खुद उसे काशी ले जाने में उसे हिचक होने लगी।

आशा ने कहा - 'मेरी बड़ी चाची जी तो जल्दी ही काशी जाने वाली हैं। उनके साथ चली जाऊँ तो क्या हर्ज है?'

महेंद्र ने जा कर राजलक्ष्मी से कहा - 'माँ, बहू एक बार चाची से मिलने के लिए काशी जाना चाहती है।'

राजलक्ष्मी ने व्यंग्य से कहा - 'बहू जाना चाहती है, तो जरूर जाए। जाओ, उन्हें ले जाओ!'

बिहारी राजलक्ष्मी से मिलने आया, तो वह बोली - 'अरे, बिहारी, सुना तूने? अपनी बहू काशी जा रही है?'

बिहारी बोला - 'कह क्या रही हो माँ, महेंद्र भैया फिर पढ़ाई हर्ज करके जाएँगे?'

राजलक्ष्मी बोली - 'न-न, महेंद्र क्यों जाएँगे? महेंद्र यहीं रहेंगे। बहू अपने बड़े चाचा के साथ जाएगी।'

बिहारी भीतर-ही-भीतर परेशान हुआ। वह सोचने लगा, 'आखिर माजरा क्या है। महेंद्र काशी गया तो आशा यहाँ रही और वह लौटा, तो अब आशा काशी जा रही है। दोनों में कुछ ऐसा हुआ है। आखिर ऐसा कितने दिन चलेगा? दोस्त हो कर भी हम इसका कोई प्रतिकार नहीं कर सकते - दूर से खड़े-खड़े तमाशा देखते रहेंगे?'

माता के व्यवहार से बड़ा ही कुढ़ कर महेंद्र अपने कमरे में आ कर बैठा था। विनोदिनी ने इस बीच महेंद्र से भेंट नहीं की थी, सो आशा उसे बगल के कमरे से यहाँ ले आने के लिए अनुरोध कर रही थी।

ऐसे में बिहारी आया। उसने महेंद्र से पूछा - 'आशा भाभी का काशी जाना तय हुआ है?'

महेंद्र बोला - 'क्यों न हो, कोई अड़चन है?'

बिहारी बोला - 'अड़चन की बात कौन कह रहा है! मगर अचानक तुम्हारे दिमाग में यह आया कैसे?'

महेंद्र ने कहा - 'अपनी मौसी को देखने की इच्छा, परदेस में रहने वाले आत्मीय के लिए व्याकुलता मानव चरित्र में होती है।'

बिहारी ने पूछा - 'साथ तुम जा रहे हो?'

पूछते ही महेंद्र के दिमाग में आया, 'बड़े चाचा के साथ भेजना ठीक नहीं - बिहारी इसी पर बात करने आया है।' - ज्यादा बोल-चाल से कहीं गुस्सा न फट पड़े, इसीलिए उसने संक्षेप में कहा - 'नहीं।'

बिहारी महेंद्र को पहचानता था। वह नाराज है, यह बिहारी से छिपा न था। वह यह भी जानता था कि उसने ज़िद पकड़ ली, तो उसे टस से मस नहीं किया जा सकता। इसलिए उसने फिर उसके जाने का जिक्र ही न किया। सोचा - 'बेचारी आशा अगर जी में कोई पीर ही छिपाए जाती हो, तो विनोदिनी के साथ जाने से उसे थोड़ी-सी राहत मिलेगी।' उसने धीरे से कहा - 'उनके साथ विनोद भाभी जाएँ, तो अच्छा न रहेगा?'

महेंद्र चीख उठा - 'बिहारी, अपने मन की बात खोल कर ही कहो! मेरे साथ टेढ़े-टेढ़े चलने की क्या जरूरत है? मैं समझ रहा हूँ, तुम्हें शुबहा है कि मैं विनोदिनी को प्यार करता हूँ। गलत है। प्यार मैं नहीं करता। मुझे बचाने के लिए पहरा देते फिरने की जरूरत नहीं। अपने को सम्हालो!

जहाँ पर काफी दर्द हो, वहाँ अगर कोई बेरहमी के साथ पाँवों से मसल डाले तो चोट खाया हुआ आदमी चोट करने वाले पर जिस तरह बिना कुछ विचारे टूट पड़ना चाहता है, उसी तरह रुद्ध गले से बदरंग पड़ा चेहरा लिए बिहारी

कुर्सी से उठ कर महेंद्र की ओर लपका और, सहसा रुक कर किसी तरह बोल पाया- 'ईश्वर तुम्हें क्षमा करें, मैं चला।'

लड़खड़ाता हुआ वह कमरे से बाहर निकल गया। बगल के कमरे से विनोदिनी झपट कर आई- 'बिहारी बाबू!'

दीवार का सहारा लिए हँसने की कोशिश करते हुए बिहारी ने कहा - 'क्या है, विनोद भाभी!'

विनोदिनी बोली - 'किरकिरी के साथ मैं भी काशी जाऊँगी।'

बिहारी ने कहा - 'नहीं-नहीं भाभी, यह न होगा। मैं आरजू करता हूँ, मेरे कहने से कुछ मत करना। मैं यहाँ का कोई नहीं होता, यहाँ की किसी भी बात में मैं दखल नहीं देना चाहता। तुम देवी हो, जो तुम्हें ठीक जँचे, वही करना! मैं चला।'

विनोदिनी को नम्रता से नमस्कार करके बिहारी जाने लगा।

विनोदिनी बोली - 'मैं देवी नहीं हूँ भाई साहब, सुनो तो सही। तुम चल दोगे, तो किसी का भला न होगा। फिर मुझे दोष मत देना!'

बिहारी चला गया। महेंद्र ठगा-सा बैठा रहा।

विनोदिनी बिजली-सी कटाक्ष करती हुई बगल के कमरे में चली गई जहाँ आशा मारे शर्म के मरी-सी जा रही थी। बिहारी उसे प्यार करता है - महेंद्र के मुँह से ऐसा सुन कर वह मुँह नहीं उठा पा रही थी। लेकिन उस समय उस पर विनोदिनी को दया न आई। आशा ने अगर निगाह उठा कर देखा होता, तो वह डर जाती। सारे संसार पर मानो खून चढ़ आया था। विनोदिनी का झूठ! बेशक विनोदिनी को कोई भी नहीं प्यार करता।

आवेश में वही जो एक बार महेंद्र के मुँह से निकल पड़ा था कि मैं नालायक हूँ, उसके बाद जब वह आवेश जाता रहा तो अपने उस अचानक उबल पड़ने की वजह से बिहारी से वह सकुचा गया था। उसे लग रहा था कि उसकी सारी बातें खुल गई हैं। वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता, फिर भी बिहारी का खयाल है, प्यार करता है। जो कुढ़न बढ़ रही थी, आज वह अचानक भभक पड़ी।

लेकिन बगल के कमरे से विनोदिनी दौड़ती आई, और उसने बिहारी को रोकने की कोशिश की और बिहारी के कहे मुताबिक वह काशी जाने को तैयार हो गई - यह सब महेंद्र की कल्पना के भी बाहर था। इस दृश्य ने महेंद्र को एक चोट पहुँचा कर अभिभूत कर दिया। उसने कहा था कि वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता; लेकिन जो कुछ सुना, जो कुछ देखा, उसने उसे चैन न लेने दिया। चारों तरफ से उसे बेचैन बनाने लगा। और बार-बार निरे अफसोस के साथ उसके जी में होने लगा कि विनोदिनी ने मुझे यह कहते सुना कि मैं उसे प्यार नहीं करता।

महेंद्र ने सोचा, गलत, मैं विनोदिनी को प्यार नहीं करता। शायद प्यार न भी करता हूँ, मगर कहना कि नहीं करता हूँ यह तो और भी कठिन है। इससे चोट न पहुँचे, ऐसी स्त्री कौन है? इसके प्रतिवाद की गुंजाइश कैसे हो?

महेंद्र ने बक्स से निकाल कर उसकी तीनों चिट्ठियों को फिर से पढ़ा। वह मन-ही-मन बोला - 'इसमें कोई संदेह नहीं कि विनोदिनी मुझे प्यार करती है। मगर कल वह बिहारी के सामने इस तरह क्यों आई? शायद मुझे दिखाने के ही लिए। मैंने जब साफ जता दिया कि मैं उसे प्यार नहीं करता, तो फिर किसी मौके से मेरे सामने प्यार को ठुकराए नहीं तो और क्या करे? हो सकता है, मुझसे इस तरह ठुकराई जाने पर वह बिहारी को प्यार भी करने लगे।'

महेंद्र का क्षोभ इस तरह बढ़ चला कि अपनी उतावली से वह आप ही अचरज में पड़ गया। डर उठा। और, विनोदिनी ने सुन ही लिया तो क्या कि महेंद्र उसे प्यार नहीं करता? इसमें दोष भी क्या?

आँधी आने पर नाव की जंजीर जैसे लंगर को कस कर पकड़ती है, वैसे ही अकुलाहट में महेंद्र ने आशा को और भी कस कर पकड़ा।

रात को महेंद्र ने आशा का मुँह अपनी छाती से लगा कर पूछा - 'चुन्नी, ठीक बताओ, तुम मुझे कितना प्यार करती हो?'

आशा सोचने लगी - 'यह सवाल कैसा! बिहारी के बारे में जो शर्मनाक बात निकली है, क्या उसी से उस पर संदेह की ऐसी छाया पड़ी?'

वह शर्म से मुई-सी हो कर बोली - 'छिः, आज यह क्या पूछ रहे हो तुम! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, साफ बताओ, मेरे प्यार में तुम्हें कब क्या कमी दिखाई दी?'

उसे सता कर उसका माधुर्य निचोड़ने की नीयत से महेंद्र बोला - 'फिर तुम काशी क्यों जाना चाहती हो?'

आशा बोली - 'मैं नहीं जाना चाहती। कहीं भी नहीं जाऊँगी मैं।'

महेंद्र - 'लेकिन चाहा तो था पहले?'

आशा बहुत दुखी हो कर बोली - 'तुम्हें पता है, मैंने क्यों चाहा था? मजे से रहने के लिए नहीं जाना चाहती थी मैं।'

महेंद्र ने कहा - 'सच कहूँ चुन्नी, और किसी से विवाह किया होता तो तुम इससे कहीं ज्यादा सुखी होती।'

सुनते ही चौंक कर आशा महेंद्र से छिटक पड़ी और तकिए में मुँह गाड़ कर काठ की मारी-सी पड़ी रही। कुछ ही क्षण में उसकी रुलाई रोके न रुकी। सांत्वना देने के लिए महेंद्र ने उसे कलेजे से लगाने की कोशिश की, पर आशा तकिए से चिपकी रही। पतिव्रता के ऐसे रूठने से महेंद्र सुख, गर्व और धिक्कार से क्षुब्ध होने लगा।

विनोदिनी सोचने लगी, 'आखिर ऐसी तोहमत लगाए जाने पर बिहारी ने प्रतिवाद क्यों नहीं किया? उसने झूठा प्रतिवाद भी किया होता, तो मानो विनोदिनी को खुशी होती। ठीक ही हुआ कि महेंद्र ने बिहारी पर ऐसी चोट की। यह उसका पावना ही था। आखिर बिहारी-जैसा आदमी आशा को प्यार क्यों करेगा? इस चोट ने बिहारी को दूर जो हटा दिया, मानो वह अच्छा ही हुआ।' -विनोदिनी निश्चित हो गई।

लेकिन मृत्यु-बाण से बिंधे बिहारी का रक्तहीन पीला मुखड़ा विनोदिनी के हर काम में उसके पीछे-पीछे घूमता-सा रहा। विनोदिनी के अंदर जो एक सेवापरायण नारी प्रकृति थी, वह उस कातर चेहरे को देख कर रोने लगी।

दो-तीन दिन तक वह सभी कामों में अनमनी रही। आखिर उससे न रहा गया। उसने एक सांत्वना पत्र लिखा -

'भाई साहब, तुम्हारा जो सूखा चेहरा देखा, है, तब से मैं हृदय से यही कामना करती हूँ कि तुम भले-चंगे हो जाओ, जैसे तुम थे, वैसे ही हो जाओ - तुम्हारी वह सहज हँसी फिर कब देखूँगी - वह उदार बातें फिर कब सुनूँगी; एक पंक्ति में अपनी कुशल मुझे लिख भेजो! - तुम्हारी विनोदिनी भाभी।'

दरबान की मार्फत चिट्ठी उसने बिहारी को भेज दी।

बिहारी आशा को प्यार करता है, इस बात को महेंद्र इस रुखाई और इस बेहयाई से जुबान पर ला सकता है - बिहारी ने यह कभी स्वप्न में भी न सोचा था। क्योंकि उसने खुद भी कभी ऐसी बात को दिल में जगह न दी थी।

लेकिन बात जब एक बार मुँह से निकल पड़ी, तो एकबारगी मार तो नहीं डाला जा सकता। उसमें सच्चाई का बीज जितना था, देखते-ही-देखते वह अँकुराने लगा।

अब उसने खुद को कसूरवार समझा। मन-ही-मन बोला - 'मेरा गुस्सा करना तो शोभा नहीं देता, महेंद्र से माफी माँग कर विदा लेनी होगी। उस रोज मैं कुछ इस तरह चला आया था, मानो महेंद्र दोषी है, मैं विचारक हूँ... अपनी यह गलती मुझे कबूल करनी पड़ेगी।'

बिहारी समझ रहा था, आशा चली गई है। एक दिन शाम को वह धीरे-धीरे जा कर महेंद्र के दरवाजे पर जा कर खड़ा हुआ। राजलक्ष्मी के दूर के रिश्ते के मामा साधुचरण पर नजर पड़ी। कहा - 'कई दिनों से इधर आ नहीं सका - सब कुशल तो है?'

साधुचरण ने कुशल कही। बिहारी ने पूछा - 'भाभी काशी कब गई?'

साधुचरण ने कहा - 'कहाँ, गई कहाँ? उनका जाना अब न होगा।'

यह सुन कर बिहारी सब कुछ भूल कर अंदर जाने को बेचैन हो उठा। पहले वह जैसे ग्रहण भाव से खुशी-खुशी अपनों-सा परिचित सीढ़ियों से अंदर जाया करता था, सबसे हँसता-बोलता था, जी में कुछ होता न था, आज उसकी मनाही थी, दुर्लभ था वह - इसकी याद आते ही उसका मन पागल हो गया। बस एक बार, केवल अंतिम बार इसी तरह अंदर जा कर परिवार के सदस्य-सा राजलक्ष्मी से, घूँघट निकाले आशा भाभी से दो बातें मात्र कर आना उसके लिए परम आकांक्षा का विषय बन बैठा।

साधुचरण ने कहा - 'अरे, अँधेरे में खड़े क्यों रह गए, अंदर आओ!'

बिहारी तेजी से दो-चार डग की तरफ बढ़ा और मुड़ कर बोला - 'नहीं, चलूँ मैं, काम है।' और जल्दी से लौट गया।

उसी रात बिहारी पश्चिम की ओर कहीं चला गया।

बिहारी घर पर नहीं मिला - दरबान विनोदिनी की चिट्ठी ले कर लौट आया। महेंद्र डयोढ़ी के सामने वाले बगीचे में टहल रहा था। उसने पूछा - 'किसकी चिट्ठी है?'

दरबान ने बताया। महेंद्र ने उससे चिट्ठी ले ली। एक बार तो जी में आया, चिट्ठी वह विनोदिनी को दे आए - कुछ कहे नहीं, सिर्फ विनोदिनी का लज्जित चेहरा देख आए। उसे इसमें जरा भी शक न था कि खत में लज्जा की बात जरूर है। याद आया, पहले भी एक बार उसने बिहारी को चिट्ठी भेजी थी। आखिर खत में है क्या, यह जाने बिना मानो उससे रहा ही न गया। उसने अपने आपको समझाया, 'विनोदिनी उसी की देख-रेख में है, उसके भले-बुरे का वही जिम्मेदार है। लिहाजा ऐसे संदेह वाले खत को खोल कर देखना वाजिब है। विनोदिनी को गलत रास्ते पर हर्गिज नहीं जाने दिया जा सकता।

खोल कर महेंद्र ने उस छोटी-सी चिट्ठी को पढ़ा। वह सहज भाषा में लिखी थी, इसलिए उसमें मन का सच्चा उद्वेग फूट पड़ा था। महेंद्र ने उसे बार-बार पढ़ा। खूब सोचा, मगर समझ नहीं सका कि विनोदिनी का झुकाव है किस तरफ। उसे रह-रह कर यही आशंका होने लगी, चूँकि मैंने यह कह कर उसका अपमान किया है कि मैं उसे प्यार नहीं करता, इसीलिए रूठ कर वह अपने मन को और तरफ लगाना चाहती है।

इसके बाद महेंद्र के लिए धीरज रखना असंभव हो उठा। जो लड़की अपने आपको उसके हाथों सौंप देने के लिए आई थी, वह महज जरा-सी गलती से उसके कब्जे से निकल जाएगी, यह सोच कर महेंद्र भीतर-ही-भीतर सुलगने लगा। मन में सोचा, 'विनोदिनी मन-ही-मन अगर तुझे चाहती है, तो उसकी खैर जानो - क्योंकि वह एक जगह बँधी रहेगी। अपने मन का तो मुझे पता है, मैं उस पर कभी जुल्म नहीं कर सकूँगा... वह मुझे निश्चित हो कर प्यार कर सकती है। मैं आशा को प्यार करता हूँ, मुझसे उसे कोई खतरा नहीं। यदि वह और किसी तरफ खिंची तो क्या अनर्थ होगा, वह कौन जानता है?'

महेंद्र ने निश्चय किया, 'अपने को प्रकट किए बिना किसी-न-किसी तरह फिर से विनोदिनी को अपनी ओर खींचना ही पड़ेगा।'

अंदर जाते ही महेंद्र ने देखा, विनोदिनी बीच में ही खड़ी उत्सुकता से किसी का इंतजार कर रही है और महेंद्र का मन डाह से जल उठा। बोला - 'नाहक इंतजार में खड़ी है, भेंट नहीं होने की। यह लीजिए, आपकी चिट्ठी लौट आई।'

कह कर उसने चिट्ठी उसकी ओर फेंक दी।

विनोदिनी बोली - 'खुली क्यों?'

महेंद्र जवाब दिए बिना ही चला गया। 'बिहारी ने चिट्ठी खोल कर पढ़ी और कोई जवाब न दे कर चिट्ठी वापस भेज दी' यह सोच कर विनोदिनी की सारी नसें दप-दप करने लगीं। उसने चिट्ठी ले जाने वाले दरबान को बुलवा भेजा। वह और कहीं चला गया था - न मिला। चिराग की कोर से जैसे गरम तेल की बूँदें टपक पड़ती हैं - बंद कमरे में विनोदिनी की दमकती हुई आँखों से आँसू टपक गए। उसने अपनी चिट्ठी के टुकड़े कर डाले, फिर भी उसे चैन न मिला। स्याही की उन दो-चार लकीरों को भूत और वर्तमान से पोंछ डालने की, कतई मनाही कर देने की गुंजाइश क्यों नहीं? गुस्से में आई मधुमक्खी जिस प्रकार हर सामने पड़ने वाले को काट खाती है, उसी प्रकार क्षुब्ध



विनोदिनी अपने चारों ओर की दुनिया को जला डालने पर आमादा हो गई। मैं जो भी चाहती हूँ, उसी में रुकावट?  
किसी बात में कामयाबी नहीं!

[>>पीछे>>](#) [>>आगे>>](#)

[शीर्ष पर जाएँ](#)

## आँख की किरकिरी रवींद्रनाथ टैगोर

### 25

उस दिन फागुन की पहली बसंती बयार बह आई। बड़े दिनों के बाद आशा शाम को छत पर चटाई बिछा कर बैठी। मद्धिम रोशनी में एक मासिक पत्रिका में छपी हुई एक धारावाहिक कहानी पढ़ने लगी। एक जगह जब कहानी का नायक काफी दिनों बाद पूजा की छुट्टी में अपने घर लौट रहा था कि डकैतों के चंगुल में फँस गया। आशा का दिल धड़क उठा। इधर ठीक उसी समय नायिका सपना देख कर रोती हुई जग पड़ी। आशा के आँसू रोके न रुके। वह कहानियों की बड़ी उदार समालोचक थी। जो भी कहानी पढ़ती, वह उसे अच्छी लगती। विनोदिनी को बुला कर कहती, 'भई आँख की किरकिरी, मेरे सिर की कसम रही, इस कहानी को पढ़ देखना। ऐसी ही है! पढ़ कर रोते-रोते बेदम!'

विनोदिनी की अच्छे-बुरे की कसौटी से आशा के उमंग, उत्साह को बड़ी चोट पहुँचती।

महेंद्र को वह कहानी पढ़ाने का निश्चय करके गीली आँखों से उसने पत्रिका बंद की। इतने में महेंद्र आ गया। महेंद्र बोला - 'छत पर अकेली किस भाग्यवान को याद कर रही हो?'

आशा नायक-नायिका की बात भूल गई। उनसे पूछा - 'आज तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है क्या?'

महेंद्र - 'नहीं, तबीयत ठीक है।'

आशा - 'फिर तुम मन-ही-मन जो कुछ सोच रहे हो मुझे साफ-साफ बताओ।'

आशा के डिब्बे में से एक पान निकाल कर खाते हुए महेंद्र ने कहा - 'मैं यह सोच रहा था कि तुम्हारी बेचारी मौसी ने न जाने कब से तुम्हें नहीं देखा। अचानक ही एक दिन तुम वहाँ पहुँच जाओ तो वे कितनी खुश हो जाएँ।'

आशा ने कोई जवाब न दिया। उसकी ओर ताकती रही। वह समझ न सकी कि एकाएक फिर क्यों यह बात महेंद्र के मन में आई।

आशा को चुप देख कर महेंद्र ने पूछा - 'तुम्हारी जाने की इच्छा नहीं होती क्या?'

इस बात का जवाब देना कठिन था। मौसी से मिलने की इच्छा भी होती है और महेंद्र को छोड़ कर जाने का दिल भी नहीं चाहता। आशा बोली - 'कॉलेज की छुट्टियाँ होने पर जब तुम चलोगे तो मैं भी साथ चलूँगी।'

महेंद्र - 'छुट्टियों में भी जाने की गुंजाइश नहीं है। इम्तहान की तैयारी करनी है।'

आशा - 'फिर रहने दो। न ही गई तो क्या?'

महेंद्र - 'रहने क्यों दे? तुमने जाना चाहा था, जाओ!'

आशा - 'नहीं, मेरी इच्छा जाने की नहीं है।'

महेंद्र - 'अभी-अभी उस दिन तो ऐसी जबरदस्त इच्छा थी और अचानक ही वह इच्छा गायब हो गई!'

आशा नजर झुकाए बैठी रही।

विनोदिनी से सुलह के लिए मौका ढूँढ़ते हुए महेंद्र का मन भीतर-ही-भीतर अधीर हो उठा था। आशा को चुपचाप देख कर नाहक ही उसे गुस्सा आ गया। बोला - 'मुझ पर तुम्हें किसी तरह का शुबहा हुआ है क्या कि आँखों की निगरानी में रखना चाहती हो मुझे?' आशा की स्वाभाविक नम्रता, कोमलता और धीरजता महेंद्र की बर्दाश्त से बाहर हो गई। अपने आप बोला - 'मौसी के यहाँ जाने की इच्छा है। - यह कहो कि मैं जा कर ही रहूँगी, जैसे भी हो। कभी हाँ, तो कभी नहीं, कभी चुप - यह क्या करती रहती हो?'

महेंद्र की ऐसी रुखाई से आशा अचरज में पड़ी डर गई, लाख कोशिश करने पर भी उसे कोई जवाब न सूझा। यह समझ ही न पाती थी कि क्यों महेंद्र कभी तो इतना आदर करता है और फिर अचानक बेरहम-सा बन जाता है। इस तरह आशा के लिए महेंद्र जितना ही दुर्बोध बनता जाता, आशा उतना ही धड़कते कलेजे से, भय और प्यार से उसे ज्यादा जकड़ती जाती।

वह महेंद्र पर शक करे, उसे आँखों की निगरानी में रखना चाहती है। यह कोई कठोर उपहास है कि निर्दय संदेह! कसम खा कर इसका प्रतिवाद करना जरूरी है कि उसे हँस कर टाल जाए?

आशा थी और अब भी चुप रहते देख कर अधीर महेंद्र तेजी से उठ कर चला गया। फिर कहाँ तो रहा कहानी का नायक और कहाँ गई नायिका। सूर्यास्त की आभा अँधेरे में खो गई, साँझ वाली बसंती बयार जाती रही और सर्द हवा चलने लगी। फिर भी आशा उसी चटाई पर लेटी रही।

जब बहुत देर बाद वह कमरे में गई, तो देखा, महेंद्र ने उसे बुलाया भी नहीं, सो गया है। मन में आया, स्नेहमयी मौसी की तरफ से उसे उदासीन देख कर महेंद्र मन-ही-मन शायद उससे घृणा करता है। खाट पर जा कर आशा ने उसके दोनों पैर पकड़ लिए। इससे महेंद्र करुणा से विगलित हो गया और उसने उसे खींच लेने की कोशिश की। लेकिन आशा बिलकुल न उठी। उसने कहा - 'मुझसे कोई कुसूर हुआ हो, तो मुझे माफ करो!'

महेंद्र ने पिघल कर कहा - 'तुम्हारा कोई कुसूर नहीं है, चुन्नी! मैं ही बड़ा पाखंडी हूँ, इसलिए नाहक ही मैंने तुम्हें चोट पहुँचाई।'

इस पर आशा की आँखें बरसती हुई महेंद्र के पैरों को भिगोने लगीं। महेंद्र उठ बैठा। अपनी बाँहों में उसे कस कर पास में सुलाया। रुलाई का वेग कुछ कम हुआ तो आशा बोली - 'भला मौसी को देखने जाने को जी नहीं चाहता मेरा? लेकिन तुम्हें छोड़ कर जाने का मन नहीं होता। इसी से जाना नहीं चाहती। तुम इससे नाराज मत हो।'

आशा के गीले गालों को धीरे-धीरे पोंछते हुए महेंद्र ने कहा - 'भला यह भी कोई नाराज होने की बात है? तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती, इस पर मैं नाराज होऊँ? खैर, तुम्हें कहीं नहीं जाना पड़ेगा।'

आशा ने कहा - 'नहीं, मैं काशी जरूर जाऊँगी।'

महेंद्र - 'क्यों?'

आशा - 'मैं तुम पर संदेह कर रही हूँ इसलिए नहीं जाती - जब यह बात एक बार तुम्हारे मुँह से निकल गई, तो कुछ दिनों के लिए मुझे जाना ही पड़ेगा।'

महेंद्र - 'पाप मैंने किया है और प्रायश्चित्त तुम्हें करना पड़ेगा?'

आशा - 'मैं नहीं जानती - लेकिन कहीं-न-कहीं पाप मुझसे हुआ है, नहीं तो ऐसी बातें उठतीं ही नहीं। जिन बातों को मैं ख्वाब में भी नहीं सोच सकती, आखिर वे बातें क्यों सुननी पड़ रही हैं।'

महेंद्र - 'इसलिए कि मैं कितना बुरा हूँ, इसका तुम्हें पता नहीं।'

आशा ने परेशान हो कर कहा - 'फिर! ऐसा न कहो, मगर काशी अब मैं जरूर जाऊँगी।' महेंद्र ने हँस कर कहा - 'तो जाओ! लेकिन तुम्हारी नजरों की ओट में मैं अगर बिगड़ जाऊँ तो?'

आशा बोली - 'इतना डराने की जरूरत नहीं... मानो मैं इस विचार में ही घबरा रही हूँ।'

महेंद्र - 'लेकिन सोचना चाहिए। लापरवाही से अपने ऐसे स्वामी को अगर तुम बिगाड़ दो, तो दोष किसे दोगी?'

आशा - 'दोष कमसे-कम तुम्हें न दूँगी, बेफिक्र रहो!'

महेंद्र - 'ऐसे में अपना दोष मान लोगी?'

आशा - 'हजार बार मान लूँगी।'

महेंद्र - 'ठीक है। तो कल मैं तुम्हारे बड़े चाचा जी से मिल कर सब तय कर आऊँगा।'

और महेंद्र ने कहा, 'रात बहुत हो गई।' करवट बदल कर वह सो गया।

जरा देर बाद फिर इधर पलट कर अचानक कह उठा - 'चुन्नी, रहने भी दो। न भी जाओगी तो क्या हो जाएगा?'

आशा बोली - 'फिर मनाही क्यों? अब अगर एक बार मैं जा न पाई, तो मेरे बदन से तुम्हारी वह झिड़की हमेशा लगी रहेगी। दो ही चार दिन के लिए सही, मुझे भेज दो!'

महेंद्र बोला - 'अच्छा।'

वह फिर करवट बदल कर सो गया।

काशी जाने से एक दिन पहले आशा ने विनोदिनी के गले से लिपट कर कहा - 'भई किरकिरी, मेरा बदन छू कर एक बात बताओ!'

विनोदिनी ने आशा का गाल दबा दिया। कहा - 'कौन-सी?'

आशा - 'पता नहीं आजकल तुम कैसी तो हो गई हो। मेरे पति के सामने तुम निकलना ही नहीं चाहती।'

विनोदिनी - 'क्यों नहीं चाहती, यह क्या तू नहीं जानती? उस दिन महेंद्र बाबू ने बिहारी बाबू से जो कुछ कहा, तूने अपने कानों नहीं सुना? जब ऐसी बातें होने लगीं, तो फिर कमरे में क्या निकलना!'

'ठीक नहीं है'- आशा यह समझ रही थी और ये बातें कैसी शर्मनाक हैं, फिलहाल उसने अपने मन से यह भी समझा है। तो भी बोली - 'बातें तो ऐसी जाने कितनी उठती हैं, उन्हें अगर बर्दाश्त नहीं कर सकती तो फिर प्यार क्या! तुम्हें यह सब भूलना पड़ेगा!'

विनोदिनी - 'ठीक है, भूल जाऊँगी।'

आशा - 'मैं कल काशी जा रही हूँ। तुम्हें इसका खयाल रखना होगा कि उन्हें कोई तकलीफ न हो। जैसे भागती-फिरती हो, ऐसा करने से न चलेगा।'

विनोदिनी चुप रही। उसकी हथेली दबा कर आशा ने कहा - 'मेरे सिर की कसम, वह वचन तो तुम्हें देना ही पड़ेगा।'

विनोदिनी बोली - 'अच्छा।'

## 26

एक ओर चाँद डूबता है, दूसरी ओर सूरज उगता है। आशा चली गई लेकिन महेंद्र के नसीब में अभी तक विनोदिनी के दर्शन नहीं। महेंद्र डोलता-फिरता, जब-तब किसी बहाने माँ के कमरे में पहुँच जाता - लेकिन विनोदिनी उसे पास आने की कोई मौका ही न देती।

महेंद्र को ऐसा उदास देख कर राजलक्ष्मी सोचने लगीं - 'बहू चली गई, इसीलिए महेंद्र को कुछ अच्छा नहीं लगता है।'

अब महेंद्र के सुख-दुख के लिहाज से माँ गैर जैसी हो गई है। हालाँकि इस बात के जहन में आते ही उसे मर्मांतक कष्ट हुआ! फिर भी वह महेंद्र को उदास देख कर चिंतित हो गई।

उन्होंने विनोदिनी से कहा - 'इस बार इनफ्लुएंजा के बाद मुझे दमा-जैसा कुछ हो गया है। बार-बार सीढ़ियाँ चढ़ कर मुझसे ऊपर जाते नहीं बनता। महेन्द्र के खाने-पीने का खयाल तुम्हीं को रखना है, बिटिया! उसकी हमेशा की आदत है, किसी के जतन के बिना महेन्द्र रह नहीं सकता। देखो तो, बहू के जाने के बाद उसे पता नहीं क्या हो गया है। और बहू की भी बलिहारी, वह चली गई!'।

विनोदिनी बोली - 'जरूरत क्या है, बुआ!'

राजलक्ष्मी बोली- 'अच्छा, कोई जरूरत नहीं। मुझसे जो हो सकेगा, वही करूँगी।'

और वह उसी समय महेन्द्र के ऊपर वाले कमरे की झाड़-पोंछ करने जाने लगी। विनोदिनी कह उठी - 'तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं, तुम मत जाओ! मैं ही जाती हूँ। मुझे माफ करो बुआ, जैसा तुम कहोगी, करूँगी।'

राजलक्ष्मी लोगों की बातों की कतई परवाह नहीं करती। पति की मृत्यु के बाद से दुनिया और समाज में उन्हें महेन्द्र के सिवाय और कुछ नहीं पता। विनोदिनी ने जब समाज की निंदा का इशारा किया, तो वह खीझ उठीं। जन्म से महेन्द्र को देखती आई हैं, उसके जैसा भला लड़का मिलता कहाँ है? जब कोई उसकी आलोचना करता तो राजलक्ष्मी से रहा न जाता, उन्हें लगता कि इसी पल उसकी जबान गल क्यों नहीं रही!

महेन्द्र कॉलेज से लौटा और आज अपने कमरे को देख कर ताज्जुब में पड़ गया। दरवाजा खोलते ही चंदन और धूप की खुशबू से घर महक उठा। मसहरी में रेशमी झालर बिछौने पर धप-धप धुली चादर और पुराने तकिए के बजाए दूसरा रेशमी फूल कढ़ा चौकोर तकिया - उसकी खूबसूरत कढ़ाई विनोदिनी की काफी दिनों की मेहनत का फल था। आशा उससे पूछा करती थी - 'ये चीजें तू बनाती आखिर किसके लिए है किरकिरी?' विनोदिनी हँस कर कहती - 'अपनी चिता की सेज के लिए। मरण के सिवा अपने सुहाग के लिए है भी कौन?'

दीवार पर महेन्द्र की जो तस्वीर थी, उसके फ्रेम के चारों कोनों पर बड़ी कुशलता से रेशमी गाँठें बाँधी गई थीं - नीचे की तिपाई पर फूलदानियों में गुलदस्ते - मानो महेन्द्र की प्रतिमूर्ति को किसी अजाने भक्त की पूजा मिली हो। कुल मिला कर घर की शकल ही बदल गई थी। खाट पहले जहाँ थी, वहाँ से थोड़ी खिसकी हुई थी। कमरे को दो हिस्सों में बाँट दिया गया था। खाट के पास की दो बड़ी अलमारियों में कपड़े डालने से एक ओट जैसी हो गई थी, जिससे फर्श पर बैठने का बिछौना और रात को सोने की खाट अलग-अलग हो गई थी। काँच की जिस अलमारी में आशा की शौकिया सजावट थी, खिलौने थे, उसमें के काँच पर अंदर से लाल कपड़ा जड़ दिया गया था। अब कुछ न दीखता था। कमरे के पुराने इतिहास की जो भी निशानी थी, नए हाथ की नई सजावट से वह ढँक गई थी।

थका-माँदा महेन्द्र फर्श के साफ-सुथरे बिछौने पर लेट गया। तकियों पर माथा रखते ही एक मीठी-सी खूशबू मिली - तकिए की रुई में नागकेसर का पराग और कुछ इत्र डाला गया।

महेन्द्र की आँखें झप आईं। लगा, इस तकिए पर जिन हाथों की कला-कुशलता की छाप पड़ी है, मानो उसी की चंपा-कली-सी उँगुलियों की सुगंध आ रही है।

इतने में चाँदी की तश्तरी में फल-फूल और काँच के गिलास में बर्फ डला अनन्नास का शर्बत लिए नौकरानी आई।

महेंद्र ने बड़ी तृप्ति से खाया। बाद में चाँदी के डिब्बे में पान ले कर विनोदिनी आई। बोली - 'इधर कई दिन मैं खाने के समय न आ पाई, माफ करना! और जो चाहे सो करो, मगर मेरे सिर की कसम रही, मेरी आँख की किरकिरी को यह मत लिख भेजना कि तुम्हारी देख-भाल ठीक से नहीं हो रही है। जहाँ तक मुझसे बनता है, करती हूँ।'

विनोदिनी ने पान का डिब्बा महेंद्र की तरफ बढ़ाया। पान में भी आज केवड़े की खुशबू थी।

महेंद्र ने कहा - 'सेवा-जतन के मामले में कभी-कभी ऐसी कमी रहना भी अच्छा है।'

विनोदिनी बोली - 'क्यों भला?'

महेंद्र ने कहा - 'बाद में उलाहना दे कर ब्याज समेत वसूलने की गुंजाइश रहती है।'

'महाजन जी, सूद कितना?'

महेंद्र ने कहा - 'खाने के समय हाजिर न रहें, तो बाद में हाजिर होने के बाद भी बकाया रह जाएगा।'

विनोदिनी बोली - 'ऐसा कड़ा हिसाब है तुम्हारा कि देखती हूँ, तुम्हारे हाथों पड़ जाने पर छुटकारा नहीं।'

महेंद्र ने कहा - 'हिसाब कड़ा तो उसे कहते हैं जब वसूला जा सके। यदि वसूल ही न पाओ तो हिसाब तो रखना अपने पास?'

विनोदिनी ने कहा - 'वसूल करने योग्य है भी क्या! मगर कैद तो कर ही रखा है।'

और मजाक को एकाएक गंभीर बनाते हुए उसने एक लंबी साँस छोड़ी।

महेंद्र ने भी गंभीर हो कर कहा - 'तो यह कैदखाना है, क्यों?'

ऐसे में रोज की तरह बैरा तिपाई पर बत्ती रख गया।

अचानक आँख पर रोशनी पड़ी, तो हाथ की ओट करके नजर झुकाए विनोदिनी ने कहा - 'क्या पता भई, बातों में तुमसे कौन जीते? मैं चली।'

महेंद्र ने अचानक कस कर उसका हाथ पकड़ लिया। कहा - 'बंधन जब मान ही लिया, तो फिर जाओगी कहाँ?'

विनोदिनी बोली - 'छि: छोड़ो! जिसके भागने का कोई रास्ता नहीं, उसे बाँधने की कोशिश कैसी!'

जबरदस्ती हाथ छोड़ा कर विनोदिनी चली गई। महेंद्र सुगंधित तकिए पर सिर रखे बिछावन पर पड़ा रहा। उसके कलेजे में खलबली मच गई। सूनी साँझ, सूना कमरा, नव वसंत की बयार - विनोदिनी का मन मानो पकड़ में आया-आया; लगा महेंद्र अब अपने को संयमित नहीं कर पाएगा। जल्दी से उसने बत्ती बुझा दी, दरवाजा बंद कर लिया और समय से पहले ही बिस्तर पर सो गया।

बिछावन भी तो यह पिछले वाला नहीं। चार-पाँच गद्दे पड़े थे। काफी नर्म। एक खुशबू यहाँ भी। अगरु की, खस की या काहे की थी, ठीक-ठीक समझ में नहीं आया। महेंद्र बार-बार इस-उस करवट लेटने लगा - मानो कोई भी पुरानी

एक निशानी मिले कि उसे जकड़ ले। मगर कुछ भी हाथ न आया।

रात के नौ बजे दरवाजे पर दस्तक पड़ी। बाहर से विनोदिनी ने कहा - 'भाई साहब, आपका भोजन! दरवाजा खोलिए!'

महेंद्र जल्दी से उठा और दरवाजा खोलने के लिए कुंडी पर हाथ लगाया। लेकिन दरवाजे को खोला नहीं, फर्श पर पट पड़ गया। बोला - 'नहीं, मुझे भूख नहीं है।'

बाहर से घबराहट-भरी आवाज - 'तबीयत तो खराब नहीं है? पानी ला दूँ? और कुछ चाहिए?'

महेंद्र ने कहा - 'नहीं, मुझे नहीं चाहिए।'

विनोदिनी बोली - 'आपको हमारी कसम। क्या हुआ बताओ! अच्छा चलो तबीयत खराब है तो कुंडी तो खोलो।'

महेंद्र ने जोर से कहा - 'उहँ! नहीं खोलूँगा। तुम जाओ।'

महेंद्र फिर जा कर अपने बिस्तर पर लेट गया और आशा की स्मृति को सूनी सेज पर टटोलने लगा।

लाख कोशिश करने पर भी जब नींद न आई, तो दवात-कलम ले कर आशा को खत लिखने बैठा। लिखा, 'आशा, अब और ज्यादा दिन मुझे अकेला मत छोड़ो - तुम्हारे न रहने से ही मेरी सारी प्रवृत्तियाँ जंजीर तोड़ कर मुझे न जाने कहाँ खींच ले जाना चाहती हैं। जिससे राह देख-देख कर चलूँ वह रोशनी कहाँ? वह रोशनी तो तुम्हारी विश्वास-भरी आँखों की प्रेमपूर्ण दृष्टि है। मेरी मंगल, ध्रुव, तुम जल्दी चली आओ! मुझे अविचल बनाओ, मुझे बचाओ, मेरे हृदय को भर दो।'

महेंद्र न जाने कब तक लिखता रहा। दूर, और दूर के कई गिरजों की घड़ियों में तीन बजे। कलकत्ता की सड़कों पर गाड़ियों की घड़-घड़ाहट थम चुकी थी, मुहल्ले के उस छोर पर किसी नटी के कंठ से विहाग की जो तान उठ रही थी, वह भी सारी दुनिया पर फैली हुई शांति और नींद में बिलकुल डूब गई। आशा को हृदय से याद करके और मन के आवेग को लंबे पत्र में जाहिर करके महेंद्र को काफी राहत मिली और लेटते ही उसे नींद आने में देर न लगी।

सुबह उसकी नींद खुली तो बेला हो आई थी। कमरे में धूप आ रही थी।

महेंद्र जल्दी से उठ बैठा, रात की बातें मन में हल्की हो गई थीं। देखा, रात की लिखी चिट्ठी दावात से दबी तिपाई पर पड़ी है। उसे फिर से पढ़ गया। उसे लगा - 'अरे, यह किया क्या मैंने! यह तो मानो उपन्यास का वृत्तांत हो गया। गनीमत कहो कि भेजी नहीं। क्या सोचती आशा मन में! आधी तो वह समझती ही नहीं।'

रात को जो आवेग बेहिसाब बढ़ गया था, उसकी याद आते ही महेंद्र शर्मसार हो गया। चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिए। सरल भाषा में आशा को एक छोटा-सा पत्र लिखा -

'और कितनी देर करोगी तुम? तुम्हारे बड़े चाचा के आने में अगर विलंब हो, तो मुझे वैसा लिखो। मैं खुद आ कर तुम्हें ले जाऊँगा। अकेले मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।'



महेंद्र वापस आ गया और कुछ ही दिनों में आशा काशी पहुँच गई, इससे अन्नपूर्णा को बड़ी आशंका हुई। आशा से वह तरह-तरह के सवाल पूछने लगी -

'क्यों री चुन्नी, और तेरी वह आँख की किरकिरी! तेरी राय में जिसके मुकाबले दूसरी गुणवंती नहीं?'

'सच मौसी, मैंने बढ़ा कर बिलकुल नहीं कहा है। जैसी बुद्धि, वैसा ही रूप! काम-काज में उतनी ही कुशल।'

'तेरी तो सखी ठहरी। तू तो गुणवंती बताएंगी ही। घर के और दूसरे लोग क्या कहते हैं?'

'माँ तो उसकी तारीफ करते नहीं थकतीं कभी। जब भी वह अपने घर जाने को कहती है, माँ परेशान हो उठती हैं। उसके जैसी सेवा कोई नहीं कर सकता। घर की नौकर-नौकरानी भी बीमार पड़ जाएँ, तो माँ-सी, बहन-सी उसकी सेवा करती है।'

'और महेंद्र की क्या राय है?'

'उन्हें तो तुम जानती ही हो, निहायत अपना कोई न हो तो उन्हें नहीं जँचता। हर कोई उसे चाहता है, लेकिन उनसे अब तक ठीक पटरी नहीं बैठी।'

'सो क्यों?'

'जोर-जबरदस्ती मैं कभी मिला भी देती हूँ, पर बोल-चाल लगभग बंद ही समझो! कितने कम बोलने वाले हैं, मालूम ही है तुम्हें! लोग समझते हैं, दंभी हैं। मगर बात वैसी नहीं, दो-एक खास-खास आदमियों के सिवा औरों को वे बर्दाश्त नहीं कर पाते।'

अंतिम बात कह कर आशा को अचानक लाज लगी - दोनों गाल तमतमा उठे। अन्नपूर्णा खुश हो कर मन-ही-मन हँसीं। बोली - 'ठीक कहती हो, महेंद्र जब आया था यहाँ, उसका नाम कभी उसकी जबान पर भी न आया।'

आशा ने दुखी हो कर कहा - 'यही उनमें खामी है। जिसे नहीं चाहते वह मानो है ही नहीं। उसे मानो न कभी देखा, न जाना।' शांत स्निग्ध मुस्कान से अन्नपूर्णा ने कहा - 'और जिसे चाहता है, मानो जन्म-जन्मांतर उसी को देखता-जानता रहा है, यह भाव भी उसमें है, है न चुन्नी?'

आशा ने उत्तर न दे कर नजर झुका ली।

अन्नपूर्णा ने पूछा - 'और बिहारी का क्या हाल है, चुन्नी? वह शादी करेगा ही नहीं?'

सुनते ही आशा का चेहरा गंभीर हो गया। वह सोच ही न पाई कि क्या जवाब दे।

आशा को निरुत्तर देख कर अन्नपूर्णा घबरा गई। पूछा - 'सच-सच बता चुन्नी, बिहारी बीमार-वीमार तो नहीं है।'

आशा ने कहा - 'देख मौसी, उनकी बात उन्हीं से पूछ।'

अचरज से अन्नपूर्णा ने कहा - 'क्यों?'

आशा बोली - 'यह मैं नहीं बता सकती।' कह कर वह कमरे से बाहर चली गई।

अन्नपूर्णा चुपचाप बैठी सोचने लगी - हीरे जैसा लड़का बिहारी, कैसा हो गया है कि उसका नाम सुनते ही चुन्नी उठ कर बाहर चली गई। किस्मत का फेर!

साँझ को अन्नपूर्णा पूजा पर बैठी थीं कि कोई गाड़ी बाहर आ कर रुकी। गाड़ीवान घर वाले को पुकारता हुआ दरवाजे पर थपकी देने लगा। पूजा करती हुई अन्नपूर्णा बोल उठीं - 'अरे लो! मैं तो भूल ही गई थी एकबारगी। आज कुंज की सास और उसकी बहन की दो लड़कियों के आने की बात थी इलाहाबाद से। शायद आ गई सब। चुन्नी, बत्ती ले कर दरवाजा खोल जरा!'

लालटेन लिए आशा ने दरवाजा खोल दिया। बाहर बिहारी खड़ा है। वह बोल उठा - 'अरे यह क्या भाभी, मैंने तो सुना था, तुम काशी नहीं आओगी?'

आशा के हाथ से लालटेन छूट गई। उसे मानो भूत दिख गया। एक साँस में वह दुतल्ले पर भागी और घबरा कर चीख पड़ी - 'मौसी! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ मैं, इनसे कह दो, आज ही चले जाएँ।'

पूजा के आसन पर अन्नपूर्णा चौंक उठीं। कहा - 'अरे, किनसे कह दूँ चुन्नी, किनसे?'

आशा ने कहा - 'बिहारी बाबू यहाँ भी आ गए!'

और बगल के कमरे में जा कर उसने दरवाजा बंद कर लिया।

नीचे खड़े बिहारी ने सब सुन लिया। वह उल्टे पाँवों भाग जाने को तैयार हो गया - लेकिन पूजा छोड़ कर अन्नपूर्णा जब नीचे उतर आई तो देखा, बिहारी दरवाजे के पास जमीन पर बैठा है- उसके शरीर की सारी शक्ति चली गई है।

वह रोशनी नहीं ले आई थीं। अँधेरे में बिहारी के चेहरे का भाव न देख सकीं, बिहारी भी उन्हें न देख सका।

अन्नपूर्णा ने आवाज दी - 'बिहारी!'

बिहारी का बेबस शरीर एड़ी से चोटी तक बिजली की चोट से चौंक पड़ा। बोला - 'चाची, बस और एक शब्द भी न कहो, मैं चला।'

बिहारी ने जमीन पर ही माथा टेका, अन्नपूर्णा के पाँव भी न छुए। माँ जिस तरह गंगासागर में बच्चे को डाल आती है, अन्नपूर्णा ने उसी तरह रात के उस अँधेरे में चुप-चाप बिहारी का विसर्जन किया - पलट कर उसे पुकारा नहीं। देखते-ही-देखते गाड़ी बिहारी को ले कर ओझल हो गई।

आशा ने उसी रात महेंद्र को पत्र लिखा -

'आज शाम को एकाएक बिहारी यहाँ आए थे। बड़े चाचा कब तक कलकत्ता लौटेंगे, ठिकाना नहीं। तुम जल्दी आ कर मुझे यहाँ से ले जाओ।'

उस दिन रात तक जागते रहने और भारी आवेग के कारण सुबह महेन्द्र में एक अवसाद-सा था। फागुन के अर्धबीच गर्मी पड़नी शुरू हो गई थी। और सवेरे महेन्द्र अपने सोने के कमरे के एक ओर बैठ कर पढ़ता था। आज वह तकिए के सहारे फर्श पर पड़ा रहा। बेला हो आई, नहाने नहीं गया। रास्ते में फेरी वाले आवाज लगाते हुए गुजरने लगे। दफ्तर जाने वाली गाड़ियों की अविराम गड़गड़ाहट। पड़ोसी का नया मकान खड़ा हो रहा था। मजदूरोंने छत की कुटाई की ताल पर एक स्वर से गाने लगीं। हल्की गर्म दक्खिनी बयार से महेन्द्र की दुखती नसें शिथिल हो आई थीं। कोई कठिन निश्चय, कोई दुरूह चेष्टा, मन से जूझना आज के इस अलसाए गिरे-गिरे-से वसंत के दिन के लायक न था।

'भाई साहब, आज हो क्या गया तुम्हें? नहाओगे नहीं, खाना तैयार है। अरे, सो रहे हो। तबीयत खराब है? सिर दुख रहा है?'- और, पास आ कर विनोदिनी ने उसके माथे पर हाथ रखा।

अधमुँदी आँखों और लड़खड़ाई आवाज में महेन्द्र ने कहा - 'आज तबीयत कुछ अच्छी नहीं - नहाऊँगा नहीं आज।'

विनोदिनी बोली - 'न नहाओगे, तो थोड़ा-सा खा लो!'

जिद करके विनोदिनी उसे रसोई में ले गई और बड़े जतन और आग्रह से खिलाया।

खा-पी कर महेन्द्र फिर आ कर लेट गया। विनोदिनी उसके सिरहाने बैठ कर धीरे-धीरे सिर दबाने लगी! आँखें बंद किए महेन्द्र ने कहा - 'तुमने अभी खाया नहीं है, भई किरकिरी! जाओ, खा लो!'

मगर विनोदिनी न गई। अलसाई दोपहरी के गर्म झोंकों से घर के परदे उड़ने लगे, दीवार के पास वाले नारियल के पेड़ की बेमानी मरमराहट कमरे में आने लगी। महेन्द्र का कलेजा जोर-जोर से थिरकने लगा और विनोदिनी का घना निःश्वास उसी ताल पर महेन्द्र के कपाल पर पड़े बालों को नचाता रहा। किसी के भी गले से एक शब्द न निकला। महेन्द्र सोचने लगा - 'ओर-छोर-हीन इस संसार के अनंत स्रोत में बहा जा रहा हूँ, जरा देर के लिए कभी कहीं नाव अगर किनारे पर लगे तो उससे किसी का क्या आता-जाता है, और कितने दिनों के लिए!'

सिरहाने बैठी महेन्द्र का सिर सहलाती विनोदिनी का सिर विहवल यौवन के भार से धीरे-धीरे झुका जा रहा था और अंत तक उसकी लटों की नोक महेन्द्र के कपोल को छूने लगी। हवा से हिलती हुई लटों के कोमल स्पर्श से उसका सारा शरीर रह-रह कर काँप उठने लगा, साँस मानो कलेजे के पास रुक गई, बाहर निकलने की राह न मिली। महेन्द्र झट-पट उठ बैठा। बोला - 'मेरी क्लास है। कॉलेज चलूँ!'

कह कर वह विनोदिनी की तरफ ताके बिना खड़ा हो गया।

विनोदिनी बोली - 'परेशान न हो, कपड़े मैं ला देती हूँ।'

जा कर वह महेन्द्र के कॉलेज जाने के कपड़े ले आई।

महेन्द्र जल्दी-जल्दी चला गया, लेकिन कॉलेज में मन न लगा। देर तक पढ़ने में जी लगाने की कोशिश की मगर बेकार। आखिर जल्दी ही घर लौट आया।

कमरे में दाखिल हुआ तो देखा, पेट के नीचे तकिया रखे जमीन पर बैठी विनोदिनी कोई किताब पढ़ रही है - घने काले बालों का ढेर उसकी पीठ पर बिखरा पड़ा है। महेंद्र के जूतों की आवाज शायद उसे सुनाई नहीं दी। पैर दबा कर महेंद्र उसके करीब जा खड़ा हुआ। पढ़ते-पढ़ते उसने विनोदिनी को एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए देखा।

महेंद्र ने कहा - 'अरी ओ करुणामयी, कल्पना की दुनिया के लिए हृदय की फिजूलखर्ची मत करो! पढ़ क्या रही हो?'

घबरा कर विनोदिनी उठ बैठी। किताब अपने आँचल में छिपा ली। महेंद्र ने झपट कर छीनने की कोशिश की। देर तक हाथापाई, छीना-झपटी के बाद महेंद्र ने विनोदिनी से किताब छीन ली। देखा बंकिम बाबू की लिखी 'विषवृक्ष' थी। जल्दी-जल्दी साँस लेती हुई गुस्से में मुँह फेर कर विनोदिनी चुप हो रही।

महेंद्र के कलेजे में बेहद उथल-पुथल मची थी। बड़ी कोशिश के बाद वह हँस कर बोला - 'जा, बेहद छका दिया। मैंने सोचा था, कुछ बड़ी ही गोपनीय चीज होगी और पहाड़ खोदने के बाद निकली क्या, चुहिया ही न! बंकिम बाबू का 'विषवृक्ष'?'

विनोदिनी बोली - 'मेरे पास भला क्या गोपनीय हो सकता है, सुनूँ तो जरा।'

महेंद्र फट से कह उठा - 'कहीं बिहारी की चिट्ठी आई होती!'

पल में विनोदिनी की निगाह से बिजली छिटक पड़ी। अब तक मानो कामदेव कमरे के कोने में खिलवाड़ कर रहा था - वह मानो दूसरी बार जलकर राख हो गया। जलती हुई एक लपट की तरह विनोदिनी लमहे भर में उठ खड़ी हुई। उसकी कलाई पकड़ कर महेंद्र ने कहा - 'माफ करो, मैंने मजाक किया था।'

विनोदिनी ने तेजी से अपनी कलाई छुड़ा ली और कहा - 'मजाक आखिर किसका! उनसे मैत्री के योग्य होते, तो मैं मजाक सह लेती। तुम्हारा दिल बड़ा छोटा है - मैत्री करने की जुर्रत नहीं, फिर मजाक!'

विनोदिनी चलने लगी। महेंद्र ने दोनों हाथों से उसके पैर थाम लिए।

ठीक इसी समय सामने एक छाया दिखी। महेंद्र ने चौंक कर उसके पैर छोड़ दिए। देखा, बिहारी खड़ा था।

बिहारी ने अपनी स्थिर दृष्टि से दोनों को जलाते हुए शांत और धीर स्वर से कहा - 'बड़े बे-मौके आ पहुँचा मैं। खैर! ज्यादा देर ठहरना नहीं है। एक बात कहनी थी। मैं काशी गया था। पता नहीं था कि भाभी वहाँ हैं। अनजाने उनके प्रति यह कसूर हो गया। उनसे माफी माँगने का अवसर नहीं है, सो तुमसे माँगने आया हूँ। जाने-अनजाने अगर कभी मेरे मन को कोई पाप छू गया हो, तो उसके लिए उन्हें भी कोई दुःख न सहना पड़े, तुमसे यही मेरी विनती है।'

अचानक बिहारी के सामने उसकी कमजोरी जाहिर हो गई, इससे महेंद्र का मन दहक उठा। अभी उदार बनने का मौका न था। वह जरा हँस कर बोला, 'एक कहावत है - ठाकुर घर में कौन? तो मैंने केला नहीं खाया। तुम्हारा ठीक वही हाल है। मैंने न तो तुम्हें दोष मानने को कहा, न इनकार करने को ही। फिर माफी माँग कर साधु बनने क्यों आए?'

बिहारी कुछ देर खड़ा रहा। फिर जवाब देने की जोरदार कोशिश से उसके होंठ काँप उठे, तो विनोदिनी बोल पड़ी - 'बिहारी बाबू, तुम कोई जवाब मत दो - कुछ मत कहो! यह आदमी जो कुछ भी जबान पर लाया, वह उसी के मुँह

का कलंक हो रहा है - वह कलंक तुम्हें नहीं छू पाया है।'

जाने विनोदिनी का कहा बिहारी के कानों तक पहुँचा या नहीं - जैसे स्वप्न में चलता हो, वह वहाँ से सीढ़ियों पर हो कर नीचे उतरने लगा।

विनोदिनी पीछे लगी हुई गई। कहा - 'भाई साहब, मुझसे तुम्हें कुछ भी नहीं कहना है? झिड़कना हो तो झिड़को!'

बिहारी फिर भी जब कुछ न बोला और आगे ही बढ़ने लगा तो विनोदिनी ने आगे आ कर दोनों हाथों से दाएँ हाथ को कस कर पकड़ लिया। बेहद नफरत से उसे झटक कर बिहारी चला गया। उसे यह भी न मालूम हुआ कि उस झटके से विनोदिनी गिर पड़ी। गिरने की आवाज सुन कर महेंद्र दौड़ा आया। विनोदिनी के बाएँ हाथ की कोहनी फूट गई थी। लहू बह रहा था।

महेंद्र बोला - 'उफ, काफी कट गया है!' और अपने महीन कुरते से थोड़ा-सा कपड़ा फाड़ कर महेंद्र ने वहाँ पट्टी बाँध देनी चाही।

विनोदिनी ने झट अपना हाथ हटा लिया। कहा - 'ऊँहूँ, छोड़ दो। लहू बहने दो!'

महेंद्र ने कहा - 'पट्टी बाँध कर एक दवा देता हूँ - दर्द जाता रहेगा, घाव जल्दी ठीक हो जाएगा।'

विनोदिनी खिसक गई। बोली - 'मैं दर्द मिटाना नहीं चाहती - यह जख्म रहे।'

महेंद्र ने कहा - 'आज बेताब हो कर दूसरे के सामने मैंने तुम्हारी हेठी की है, माफ कर सकोगी मुझे?'

विनोदिनी बोली - 'माफी किस बात की? ठीक किया है। मैं क्या किसी से डरती हूँ? मैं किसी को नहीं मानती! जो मुझे धक्का दे कर गिरा जाते हैं, वही क्या अपने सब हैं और जो पैर पकड़ कर खींचते हुए रोक रखना चाहते हैं, वे कोई नहीं?'

महेंद्र उन्मत्त-सा गदगद स्वर में बोला - 'विनोदिनी! तो मेरे प्रेम को तुम पैरों से ठुकराओगी नहीं?'

विनोदिनी ने कहा - 'सिर-आँखों रखूँगी। जिन्दगी में मुझे इतना ज्यादा तो नहीं मिला कि मैं 'नहीं चाहिए' कह कर लौटा दूँ।'

महेंद्र ने फिर तो दोनों हाथों से उसके दोनों हाथ थाम कर कहा - 'तो फिर मेरे कमरे में चलो! आज मैंने तुम्हारा दिल दुखाया है - तुम भी मुझे चोट पहुँचा कर चली आई हो, यह मलाल जब तक मिट नहीं जाता, मुझे न खाने में चैन है, न सोने में।'

विनोदिनी बोली - 'आज नहीं। आज छोड़ दो मुझे। अगर मैंने तकलीफ पहुँचाई हो तो माफ करना!'

महेंद्र बोला - 'तुम भी माफ कर दो मुझे, वरना रात में सो नहीं सकूँगा।'

विनोदिनी बोली - 'मैंने माफ कर दिया।'

उसी दम विनोदिनी से प्यार और क्षमा का निदर्शन पाने के लिए महेंद्र व्यग्र हो उठा। लेकिन उसके मुँह की ओर नजर पड़ते ही वह ठिठक गया। विनोदिनी नीचे उतर गई और वह भी छत पर टहलने लगा। आज अचानक बिहारी के सामने उसकी चोरी पकड़ी गई, इससे उसके मन में मुक्ति की एक खुशी आई। चोरी-चुपके में एक घिनौनापन है, वह घिनौनापन मानो एक आदमी के पास प्रकट होने से बहुत हद तक जाता रहा। मन-ही-मन वह बोला - 'खुद को भला बता कर मैं अब यह झूठ नहीं चलाना चाहता- लेकिन मैं प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ - यह बात झूठी नहीं है।' अपने प्रेम के गर्व से उसकी अकड़ इतनी बढ़ गई कि खुद को बुरा मानकर वह अकड़ में गर्व का अनुभव करने लगा। साँझ के सन्नाटे में मौन ज्योतिरिंगनों से भरे अनन्त संसार के प्रति एक अवज्ञा का भाव दिखाते हुए वह सोचने लगा - 'कोई चाहे मुझे कितना ही बुरा क्यों न कहे, लेकिन मैं प्यार करता हूँ।' और विनोदिनी की मानस-मूर्ति ने सारे संसार, समूचे आकाश और और अपने सभी कर्तव्यों को छाप लिया। मानो बिहारी ने अचानक आकर आज उसके जीवन की स्याही-भरी सीलबन्द दावात उलटकर तोड़ दी - विनोदिनी की काली आँख और काले बालों ने देखते-ही-देखते फैलकर उसके पहले की सब लिखावट लीप-पोतकर बराबर कर दी।

## 29

दूसरे दिन सो कर उठते ही एक मीठे आवेग से महेंद्र का हृदय परिपूर्ण हो गया। प्रभात की सुनहली किरणों ने मानो उसकी सभी चिंता-वासना पर सोना फेर दिया। कितनी प्यारी है पृथ्वी, कितना अच्छा आकाश! फूल के पराग जैसी हवा मानो उसके मन को उड़ा ले जाने लगी।

सवरे-सवरे मृदंग-मजीरे लिए वैष्णव भिखारी ने गाना शुरू कर दिया था। दरबान उसे खदेड़ने लगा। महेंद्र ने दरबान को झिड़का और भिखारी को एक रुपया दे दिया। बैरा बत्ती ले कर लौट रहा था। लापरवाही से उसने बत्ती गिरा दी। चूर-चूर हो गई। महेंद्र को देख कर तो उसके प्राण कूच करने लगे। महेंद्र ने लेकिन डाँट नहीं बताई। कहा - 'वहाँ अच्छी तरह से झाड़ू लगा दे, किसी को काँच न चुभ जाए।'।

आज कोई नुकसान उसे नुकसान जैसा न लगा।

अब तक प्रेम पर्दे के पीछे नेपथ्य में छिपा बैठा था। अब सामने आ कर उसने परदा उठा दिया है। मानो सारे संसार पर से परदा उठा गया। रोज-रोज की देखी-सुनी दुनिया की सारी तुच्छता गायब हो गई। पेड़-पौधे, राह चलते लोग, शहर की चहल-पहल... आज सब-कुछ जैसे अनोखा हो! संसारव्यापी यह नवीनता अब तक आखिर थी कहाँ!

उसे लगने लगा, आज विनोदिनी से और दिनों - जैसा साधारण मिलन न होगा। आज सुबह से वह बेताब घूमता रहा - कॉलेज न जा सका। जाने मिलन की घड़ी अचानक कब आ जाए - यह तो किसी पत्र में लिखा नहीं।

घर के धंधों में जुटी विनोदिनी की आवाज कभी भंडार से, कभी रसोई से महेंद्र के कानों में पहुँचने लगी। आज यह उसे अच्छा न लगा। आज मन-ही-मन विनोदिनी को उसने संसार से बहुत दूर ले जा कर स्थापित किया था।

समय काटे नहीं कट रहा था। महेंद्र का खाना-पीना चुक गया। घर के काम-धंधों से छुट्टी हुई। दोपहर सुनसान हो गई। मगर विनोदिनी का पता नहीं। दुःख और सुख, बेताबी और उम्मीद में महेंद्र के मन के सितार के सारे तार झनझनाने लगे।

कल जिसके लिए छीना-झपटी हुई थी, वह 'विषवृक्ष' किताब फर्श पर पड़ी थी। उसे देखते ही छीना-झपटी की याद हो आई और महेन्द्र के मन में पुलकन भरा आवेश जग गया। कल विनोदिनी ने जिस तकिए पर अपना सिर रखा था, उसे करीब खींच कर महेन्द्र ने उस पर अपना माथा रखा। पड़ा-पड़ा 'विषवृक्ष' के पन्ने पलटने लगा। जाने कब किताब में जी लग गया और कब पाँच बज गए, पता नहीं।

इतने में एक मुरादाबादी थाली में फल-मिठाई और एक तश्तरी में बर्फ-चीनी डाल खुशबू-बसा खरबूजा लिए विनोदिनी आई। महेन्द्र से बोली - 'कर क्या रहे हैं! आखिर बात क्या है, पाँच बज गए और न तुमने मुँह-हाथ धोया, न कपड़े बदले!'

महेन्द्र के मन में एक धक्का-सा लगा। उसे क्या हुआ है, यह भी पूछने की बात है? महेन्द्र खाने लगा। विनोदिनी जल्दी से महेन्द्र के छत पर सूखते कपड़े ला कर तह करने और अपने कुशल हाथों से उन्हें अलमारी में करीने से रखने लगी।

महेन्द्र ने कहा - 'जरा-रुको तो सही, खा लूँ फिर मैं भी तुम्हारा हाथ बँटाता हूँ।'

विनोदिनी ने हाथ जोड़ कर कहा - 'दुहाई है, और चाहे जो करो, हाथ मत बँटाना!'

महेन्द्र खा चुका तो उठ कर बोला - 'अच्छा, मुझे निकम्मा समझती हो खैर, हो जाए आज इम्तहान!'

और महेन्द्र ने नाहक ही कपड़े तह करने की कोशिश की।

विनोदिनी बोली - 'जनाबेमन, आप रख दीजिए। मेरा काम मत बढ़ाइए!'

महेन्द्र बोला - 'तो तुम काम किए जाओ, मैं देख-देख कर सीखूँ।'

वह अलमारी के सामने विनोदिनी के पास जा कर बैठ गया। विनोदिनी कपड़े झाड़ने के बहाने कभी-कभी महेन्द्र की पीठ पर उन्हें पटक कर ढंग से तह लगाने और सहेजने लगी।

और इस तरह आज का मिलन शुरू हुआ। तड़के से उठ कर महेन्द्र ने जैसी कल्पना कर रखी थी, उस अनोखेपन का कोई आभास ही नहीं। महेन्द्र फिर भी दुखी न हुआ, बल्कि उसे थोड़ा आराम मिला। अपने काल्पनिक आदर्श को किस तरह वह रूप देता, उसका ढंग क्या होता, क्या कहता, क्या जताता, तय नहीं कर पा रहा था। कपड़े सहेजने के इस हँसी-मजाक में मानो अपने गढ़े एक असंभव और कठिन आदर्श से उसे मुक्ति मिली।

इतने में राजलक्ष्मी आई। कहा - 'महेन्द्र, बहू कपड़े सहेज रही है, तू वहाँ बैठा क्या कर रहा है?'

विनोदिनी बोली - 'जरा देखो तो सही बुआ, नाहक ही मेरे काम में देर कर रहे हैं।'

महेन्द्र बोला - 'अरे रे! मैं तो मदद कर रहा था।'

राजलक्ष्मी बोली - 'हाय मेरी तकदीर! तू और मदद, सुनती है बहू, इसकी सदा की यही आदत है। माँ चाची के लाड़ में पला - कभी जो अपने हाथ से तिनका भी हिलाए!'

विनोदिनी से जब भी बातचीत होती, सिर्फ यही कि इसका क्या किया जाए! यह तो हर बात में अपनी माँ का मुँह देखता रहता है। वह उसकी सेवा का भार विनोदिनी पर डाल कर निश्चिंत थीं, वह इससे भी खुश थीं कि महेन्द्र ने विनोदिनी की मर्यादा समझी है। महेन्द्र को सुना-सुना कर वह बोलीं - 'बहू, आज तुमने महेन्द्र के गरम कपड़े धूप में सुखा लिए, कल उसके नए रुमालों में उसके नाम का हरफ तुम्हें काढ़ देना पड़ेगा। जब से तुम्हें साथ ले आई हूँ, आदर-जतन तो कुछ किया नहीं, बस काम में ही परेशान करती रही।'

विनोदिनी ने कहा - 'ऐसा कहोगी बुआ, तो मैं समझूँगी तुम मुझे पराई समझती हो।'

दुलार से राजलक्ष्मी ने कहा - 'अहा बिटिया, तुम्हारी-जैसी अपनी और है कौन मेरी?'

विनोदिनी कपड़े सहेज चुकी। राजलक्ष्मी ने पूछा - 'तो अब चीनी का सिरका चढ़ा दूँ कि और कोई काम है तुम्हें?'

विनोदिनी बोली - 'नहीं बुआ, और कोई काम नहीं है। चलो मिठाइयाँ बना लूँ चल कर।'

महेन्द्र बोला - 'अभी-अभी तो तुम रोना रो गई कि इसे काम से ही परेशान करती रही और फिर तुरंत काम के लिए खींचे लिए जा रही हो।'

विनोदिनी की ठोड़ी पकड़ कर राजलक्ष्मी ने कहा - 'मेरी रानी बिटिया को तो काम करना ही पसंद है।'

महेन्द्र बोला - 'आज मैंने सोच रखा था, इसके साथ कोई किताब पढ़ूँगा बैठ कर क्योंकि मेरे पास कोई काम नहीं था।'

विनोदिनी ने कहा - 'ठीक है बुआ, शाम को हम दोनों भाई साहब का पढ़ना सुनेंगी - क्यों?'

राजलक्ष्मी ने सोचा - 'महेन्द्र बड़ा अकेला पड़ गया है- उसे बहलाए रखना जरूरी है।' बोलीं - 'हाँ, ठीक तो है। खाना बना कर शाम हम लोग पढ़ना सुनने आएँ?'

कनखियों से विनोदिनी ने एक बार महेन्द्र को देख लिया। वह बोला - 'अच्छा।' लेकिन उसे कोई उत्साह नहीं रह गया। विनोदिनी राजलक्ष्मी के साथ-साथ चली गई।

नाराज हो कर महेन्द्र ने सोचा - 'ठीक है, मैं भी कहीं चला जाऊँगा और देर से लौटूँगा।' और समय उसने बाहर जाने के लिए कपड़े बदले। बड़ी देर तक वह छत पर टहलता रहा, बार-बार जीने की तरफ ताकता रहा और अंत में कमरे में जा कर बैठ गया। खीझ कर मन-ही-मन बोला, 'आज मैं मिठाई नहीं खाऊँगा। माँ को यह बता दूँगा कि देर तक चीनी के रस को उबालते रहने से उसमें मिठास नहीं रहती।'

महेन्द्र को भोजन कराने के समय आज विनोदिनी राजलक्ष्मी को साथ ले आई। दम फूलने के डर से वे ऊपर नहीं आना चाहती थीं। महेन्द्र बहुत गंभीर हो कर खाने बैठा।

विनोदिनी बोली - 'अरे यह क्या भाई साहब, तुम तो आज कुछ खा ही नहीं रहे हो।'

परेशान हो कर राजलक्ष्मी ने पूछा - 'तबीयत तो खराब नहीं?'



विनोदिनी बोली - 'इतने जतन से मिठाइयाँ बनाई, कुछ तो खानी ही पड़ेगी। ठीक नहीं बनीं शायद। तो फिर रहने दो। जिद पर खाना भी क्या! रहने दो!'

महेंद्र बोला - 'अच्छी मुसीबत में डाल दिया है! मिठाई ही खाने की इच्छा ज्यादा है और अच्छी लग भी रही है; तुम रोको भी तो सुनने क्यों लगा भला।'

दोनों ही मिठाइयाँ महेंद्र रस ले कर खा गया।

खाना हो गया, तो तीनों महेंद्र के कमरे में आ बैठे। राजलक्ष्मी ने कहा - 'तूने कहा था न, कोई किताब पढ़ेगा। शुरू कर न!'

महेंद्र बोला - 'मगर उसमें धर्म और देवताओं की कोई बात नहीं है। तुम्हें अच्छी नहीं लगेगी।'

अच्छी नहीं लगेगी! जैसे भी हो, अच्छी तो राजलक्ष्मी को लगनी ही थी। महेंद्र चाहे किसी भाषा में पढ़े, उसे अच्छी लगनी ही थी। आह, बेचारा महेंद्र, बहू काशी चली गई है। अकेला पड़ गया है। उसे जो अच्छा लगेगा, वह माँ को अच्छा क्यों नहीं लगेगा?

विनोदिनी बोली - 'एक काम क्यों नहीं करते भाई साहब, बुआ के कमरे में 'शांति-शतक' पड़ा है, आज वही पढ़ कर सुनाओ। बुआ को भी अच्छा लगेगा और शाम भी मजे में कटेगी।'

महेंद्र ने बड़े ही करुण भाव से एक बार विनोदिनी की तरफ देखा। इतने में किसी ने आ कर खबर दी - 'माँजी, ललाइन आ कर आपका इंतजार कर रही हैं।'

ललाइन राजलक्ष्मी की दिली दोस्त है। शाम को उनसे गप-शप करने का लोभ छोड़ सकना उनके लिए असंभव है। फिर भी वह नौकरानी से बोलीं - 'उनसे जा कर कह, आज मुझे महेंद्र से कुछ काम है। कल मगर जरूर आए। मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगी।'

महेंद्र झट-पट बोल उठा - 'तुम उनसे मिल क्यों नहीं आती हो? माँ!'

विनोदिनी बोली - 'न हो तो तुम रुको बुआ; मैं ही बल्कि उनके पास जाती हूँ।'

राजलक्ष्मी प्रलोभन न छोड़ सकीं। बोलीं - 'बहू, तब तक तुम यहाँ बैठो - देखूँ, मैं अगर उन्हें रुखसत करके आ पाऊँ। पढ़ना शुरू करो तुम लोग। मेरी प्रतीक्षा की जरूरत नहीं है।'

राजलक्ष्मी का कमरे से बाहर जाना था कि महेंद्र से और न रहा गया। कह उठा - 'जान-बूझ कर क्यों तुम मुझे इस तरह परेशान करती हो?'

विनोदिनी ने अचरज से कहा - 'मैंने क्या सताया तुम्हें! मेरा आना गुनाह है क्या? तो फिर क्या जरूरत है, मैं जाती हूँ।'

और वह नाराज-सी हो कर उठने लगी।

महेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोला - 'इसी तरह से तो तुम मुझे जलाया करती हो।'

विनोदिनी ने कहा - 'अच्छा, मुझे किसी बात की खबर न थी कि मुझमें इतना तेज है। और तुम्हारी जान तो कम कठिन नहीं है, बेहद झेल सकते हो। शकल से तो समझना मुश्किल है कि काफी जले-झुलसे हो।'

महेंद्र ने कहा - 'शकल से क्या समझोगी?' और जबरदस्ती विनोदिनी का हाथ खींच कर अपनी छाती से लगा लिया।

विनोदिनी 'उफ' कर उठी जोर से। महेंद्र ने झट उसका हाथ छोड़ दिया। पूछा - 'दर्द हो गया क्या?'

कल उसका हाथ जहाँ से कट गया था, वहाँ से फिर रक्त बहने लगा।

अफसोस से महेंद्र ने कहा - 'गलती हो गई, मैं भूल गया था। लेकिन मैं आज वहाँ पर पट्टी बाँध कर ही रहूँगा।'

विनोदिनी बोली - 'नहीं-नहीं, कुछ नहीं हुआ। दवा मैं नहीं लगाती।'

महेंद्र बोली - 'क्यों?'

विनोदिनी ने कहा - 'तुम्हारी डॉक्टरी की मुझे जरूरत नहीं। जैसा है, वैसा ही रहे।'

महेंद्र तुरंत गंभीर हो गया। मन-ही-मन बोला - 'औरत का मन समझ पाना बहुत ही मुश्किल है।'

विनोदिनी उठ खड़ी हुई। रुठे महेंद्र ने रोकने की कोशिश न की। केवल पूछा - 'जा कहाँ रही हो?'

विनोदिनी बोली - 'काम है।'

कह कर वह धीरे से चली गई।

महेंद्र एक मिनट तो बैठा रहा, फिर उसे लौटाने के लिए तेजी से लपका। लेकिन सीढ़ी तक ही बढ़ कर लौट आया और छत पर जा कर टहलने लगा।

विनोदिनी प्रतिपल उसे खींचा भी करती, मगर पास नहीं फटकने देती। कोई उसे जीत नहीं सकता, महेंद्र को इस बात का नाज था। इस नाज को आज उसने तिलांजलि दे दी। लेकिन औरों को वह जीत सकता है क्या - उसका यह गर्व भी अब नहीं रहने का? आज उसने हार मान ली, पर हरा न सका। दिल की बाबत महेंद्र का सिर सदा ऊँचा रहा था, वह अपना सानी नहीं समझता था - लेकिन उसी बात में उसे अपना सिर मिट्टी में गाड़ना पड़ा। अपनी जो ऊँचाई उसने खो दी, उसके बदले कुछ पाया भी नहीं।

फागुन-चैत में बिहारी की जमींदारी से सरसों के फूल का शहद आता है और हर साल वह राजलक्ष्मी के लिए शहद भेजा करता था। इस बार भी भेज दिया।

शहद का मटका विनोदिनी खुद राजलक्ष्मी के पास ले गई। कहा - 'बुआ, बिहारी भाई साहब ने भिजवाया है।'

राजलक्ष्मी ने उसे भंडार में रख देने को कहा। बोली - 'बिहारी बाबू, तुम लोगों की खोज-खबर में कभी नहीं चूकते। बेचारे की माँ नहीं, तुम्हें ही माँ मानते हैं।'

राजलक्ष्मी बिहारी को महेंद्र की ऐसी एक छाया समझा करती थीं कि उसके बारे में विशेष कुछ जानती न थीं। वह उसका बिना दाम का, बिना जतन का और बिना चिंता का फरमाबरदार था। विनोदिनी ने उन्हें उसकी माँ के बारे में जो बताया, वह बात उनके मर्म को छू गई। सहसा उन्हें लगा - 'सच ही, बिहारी की माँ नहीं, वह मुझे ही माँ मानता आया है। याद आया, दुःख-परेशानी में, रोग-शोक में बिना बुलाए, बिहारी सदा चुपचाप निष्ठा के साथ उनकी सेवा करता आया है। उन सेवाओं को राजलक्ष्मी निःश्वास-प्रश्वास की तरह ग्रहण करती रही हैं और उनके लिए किसी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की बात उनके मन में भी न आई। लेकिन बिहारी की खोज-खबर किसी ने न रखी। अन्नपूर्णा जब तक थीं, खोज-खबर रखती थीं।' राजलक्ष्मी सोचा करती थीं कि बिहारी को वश में रखने के लिए अन्नपूर्णा आडंबर फैलाती है।

उसाँस ले कर राजलक्ष्मी ने कहा - 'बिहारी कोख के लड़के-जैसा ही है।'

कहते ही उनके जी में आया कि बिहारी अपने लड़के से भी ज्यादा करता है और उसने अपनी भक्ति सदा एक-सी रखी। खयाल आते ही एक लंबा निःश्वास बरबस उनके अंतर से निकल पड़ा।

विनोदिनी बोली - 'उन्हें तुम्हारे हाथ की रसोई बड़ी प्रिय है।'

स्नेह-भरे गर्व से राजलक्ष्मी बोलीं - 'मछली का शोरबा तो उसे और किसी के हाथ का रुचता ही नहीं।'

कहते-कहते उसे याद आया - 'उधर बहुत दिनों से बिहारी नहीं आया।'

विनोदिनी ने कहा - 'यही तो मैं सोच रही थी, बुआ! मगर विवाह के बाद आपके बेटे-बहू को ले कर इस कदर डूब गए हैं कि हित-मित्र कोई आ कर भी क्या करे?'

बात राजलक्ष्मी को ठीक लगी। बीवी को पा कर महेंद्र ने अपने सारे हितैषियों को दूर हटा दिया। बिहारी का रुठना तो ठीक ही है - आए भी क्यों वह? बिहारी को अपनी ही जमात का आदमी समझ कर उसके प्रति उनकी संवेदना बढ़ गई। वह विस्तार से विनोदिनी को बताने लगी कि छुटपन से बिहारी ने बिना किसी स्वार्थ के महेंद्र का कितना उपकार किया है, उसके लिए कितनी बार कितनी तकलीफें झेली हैं उसने - और, बेटे के लिए उन्हें अपनी जो शिकायत थी, बिहारी के विवरण से वह उसका समर्थन करने लगी। कुछ दिनों में अपनी बहू को पा कर महेंद्र अगर अपने सदा के साथी की ऐसी उपेक्षा करे, तो दुनिया में न्याय-धर्म फिर कहाँ रहा?

विनोदिनी बोली - 'कल रविवार है। तुम बिहारी बाबू को भोजन पर आमंत्रित करो। वह खुश हो जाएगा।'

राजलक्ष्मी बोलीं - 'ठीक कहा तुमने, महेंद्र के हाथ से कह कर किसी से न्योता भिजवा देते हैं।'

विनोदिनी - 'नहीं, न्योता तुम खुद भेजो, बुआ।'

राजलक्ष्मी - 'तुम्हारी तरह मैं क्या लिखना-पढ़ना जानती हूँ।'

विनोदिनी - 'न सही, तुम्हारी तरफ से मैं ही लिखे देती हूँ।'

राजलक्ष्मी के नाम से विनोदिनी ने खुद लिख कर न्योता भेजा।

रविवार महेन्द्र के बड़े आग्रह का दिन होता। पिछली रात से ही उसकी कल्पना उद्दाम हो उठती - जो कि आज तक उसकी उम्मीद के अनुरूप हुआ कुछ भी न था। तो भी इतवार के सवेरे की आभा उसकी आँखों में अमृत बरसाने लगी। जागे हुए शहर की सारी हलचल अनोखे संगीत - जैसी उसके कानों में प्रवेश करने लगी।

मगर माजरा क्या है? आज कोई व्रत है माँ का? और दिन जैसा करती रही हैं, आज तो वह घर के काम-काज का खास भार विनोदिनी पर सौंप कर निश्चिंत नहीं है। आज खुद भी बहुत व्यस्त हैं वे।

इसी हंगामे में दस बज गए। इस बीच किसी भी बहाने महेन्द्र एक पल के लिए भी विनोदिनी से न मिल सका। किताब में मन लगाना चाहा, बिल्कुल न लगा। अखबार के एक विज्ञापन पर नाहक ही पन्द्रह मिनट तक नजर गड़ा रहा। आखिर न रहा गया। नीचे गया। देखा, माँ खुद रसोई कर रही हैं और कमरे में आँचल बाँधे विनोदिनी उनकी मदद कर रही है।

महेन्द्र ने पूछा - 'बात क्या है आज? बड़ी धूम-धाम है।'

राजलक्ष्मी बोलीं- 'बहू ने बताया नहीं तुम्हें? आज बिहारी को खाने के लिए बुलाया है।'

'बिहारी को निमंत्रण!' महेन्द्र को सुन कर बहुत खराब लगा। उसने तुरंत कहा - 'मैं घर पर नहीं रहूँगा, माँ।'

राजलक्ष्मी - 'क्यों?'

महेन्द्र - 'मुझे बाहर जाना है।'

राजलक्ष्मी - 'खा-पी कर जाना। ज्यादा देर न होगी।'

महेन्द्र - 'मुझे भोजन के लिए निमंत्रण है।'

कनखियों से उसे देख कर विनोदिनी बोली - 'दावत है, तो जाने दो, बुआ! न हो बिहारी बाबू अकेले ही खा लेंगे।'

लेकिन अपने हाथ से जतन से पकाएँ और महेन्द्र न खाए, यह उन्हें कैसे बर्दाश्त हो! वह जितना भी आग्रह करने लगीं, महेन्द्र उतना ही टालने लगा।

इस तरह नाराज महेन्द्र ने माँ को सजा देने की ठानी। राजलक्ष्मी की इच्छा हुई, रसोई छोड़ कर चल दें। विनोदिनी बोलीं- 'तुम फिक्र न करो, बुआ। भाई साहब यह सब बेकार की बातें कर रहे हैं - आज वह दावत पर हर्गिज नहीं जाएँगे।'

राजलक्ष्मी गर्दन हिला कर बोलीं, 'नहीं-नहीं बिटिया, तुम महेन्द्र को नहीं जानतीं। वह एक बार जो तय कर लेता है, उससे नहीं डिगता।'

लेकिन साबित यही हुआ कि विनोदिनी महेंद्र को राजलक्ष्मी से कम नहीं जानती। महेंद्र ने समझा था कि बिहारी को विनोदिनी ने ही न्योता भिजवाया है। इससे उसका जी ड़ाह से जितना जलने लगा, उतना ही उसके लिए बाहर जाना कठिन हो गया। बिहारी क्या करता है, विनोदिनी क्या करती है, यह देखे बिना वह भला जिए कैसे? देख कर जलना ही पड़ेगा, फिर भी देखना जरूरी था।

आज बहुत दिनों के बाद एक निमंत्रित आत्मीय की तरह बिहारी महेंद्र के अंतःपुर में आया। छुटपन से ही जो घर उसका जाना-पहचाना रहा है, घर के लड़के ही तरह जहाँ उसने बचपन की शरारतों की हैं, उसी द्वार पर आ कर आज वह ठिठक गया। उसके अंतर के दरवाजे पर आँसू की एक लहर उमड़ उठने के लिए आघात करने लगी। उस चोट को पी कर होंठों में हँसी लिए अंदर गया और तुरंत नहा कर आई राजलक्ष्मी को प्रणाम करके उनके चरणों की धूल ली। जिन दिनों बिहारी हरदम वहाँ आया-जाया करता था, ऐसे प्रणाम की प्रथा न थी। आज मानो वह सुदूर प्रवास से घर लौटा हो। प्रणाम करके उठते ही स्नेह से राजलक्ष्मी ने उसके सिर पर स्पर्श किया।

आज गहरी संवेदनाओं के साथ राजलक्ष्मी ने बिहारी के प्रति पहले से ज्यादा स्नेह जताया। कहा - 'बिहारी, तू इतने दिनों से यहाँ क्यों नहीं आया? मैं रोज ही सोचती थी, आज जरूर आएगा, मगर तेरा पता नहीं?'

बिहारी ने हँस कर कहा - 'रोज आता होता, तो माँ रोज तुम अपने बिहारी को याद नहीं करतीं। कहाँ हैं महेंद्र भैया?'

राजलक्ष्मी उदास हो कर बोली - 'जाने कहाँ आज दावत है उसकी, रुक न सका।'

सुन कर बिहारी का मन परेशान हो गया। 'छुटपन की मैत्री का आखिर यह अंजाम?' एक लंबा निःश्वास छोड़ कर मन से सारे विषाद को हटा देने की कोशिश करता हुआ बोला - 'अच्छा, क्या-क्या बना है।'

और वह अपने प्रिय व्यंजनों की बात पूछने लगा।

इतने में महेंद्र ने आ कर सूखे स्वर में पूछा - 'बिहारी, कैसे हो?'

राजलक्ष्मी बोली - 'दावत में नहीं गए?'

शर्म छिपाते हुए महेंद्र बोला - 'नहीं, गया।'

विनोदिनी नहा कर आई, तो पहले तो बिहारी कुछ बोल ही न सका। विनोदिनी और महेंद्र को जिस रूप में वह देख गया था, वह हृदय में अंकित ही था।

विनोदिनी उसके करीब आ कर बोली - 'क्यों भाई साहब, मुझे भूल गए हैं क्या?'

बिहारी बोला - 'सबको पहचाना जा सकता है क्या?'

विनोदिनी ने कहा - 'अगर थोड़ा-सा विचार हो तो जा सकता है।'

और उसने बुआ को पुकार कर कहा - 'बुआ, खाना तैयार है।'

महेंद्र और बिहारी खाने बैठ गए। राजलक्ष्मी पास बैठ कर देखने लगीं।

महेंद्र का ध्यान खाने पर न था। वह परोसने के पक्षपात पर गौर कर रहा था। उसे लगा, बिहारी को भोजन परोसते हुए विनोदिनी को मानो एक खास आनंद मिल रहा है। बिहारी की पत्तल पर ही दही की मलाई और रोहू मछली का सिर डाला गया। पर चूँकि वह मेजबान था इसलिए शिकायत की कोई गुंजाइश नहीं थी। मौसम न होने पर भी तपसी मछली मिल गई थी। उनमें से एक थी अण्डे वाली। विनोदिनी उसे बिहारी की पत्तल पर परोसने जा रही थी कि उसने कहा - 'महेंद्र भैया को दो, उन्हें बड़ी प्रिय है यह।'

महेंद्र तीखी दबी खीझ से बोल उठा - 'नहीं-नहीं, मुझे नहीं चाहिए।'

विनोदिनी ने दूसरी बार उससे अनुरोध नहीं किया और उसे बिहारी की पत्तल पर डाल दिया।

खाना खत्म हुआ। दोनों दोस्त बाहर निकले। विनोदिनी आ कर बोली, 'बिहारी बाबू चले मत जाना, चलिए, ऊपर के कमरे में बैठिए जरा देर।'

बिहारी ने पूछा - 'और तुम नहीं खाओगी।'

विनोदिनी बोली - 'आज मेरा एकादशी का व्रत है।'

तीखे व्यंग्य की एक हल्की हास्य-रेखा बिहारी के होंठों के किनारों पर खेल गई।

हँसी की यह लकीर विनोदिनी की निगाह से छिपी न रही, लेकिन जिस तरह वह हाथ के जखम को सह गई थी - इसे भी पी गई। निहोरा करती हुई बोली - 'मेरे सिर की कसम, चलो, बैठो!'

महेंद्र अचानक अजीब ढंग से गर्म हो उठा। बोला - 'अकल से तो कोई वास्ता ही नहीं - काम-धाम पड़ा रहे, ख्वाहिश हो या न हो, बैठना ही पड़ेगा। इतनी ज्यादा खातिरदारी का मतलब मेरी समझ में नहीं आया।'

विनोदिनी ठठा कर हँस पड़ी। बोली - 'भाई साहब, खातिरदारी शब्द का कोश में दूसरा कोई मतलब नहीं।'

फिर महेंद्र से कहा - 'कहने को चाहे जो कहो भाई साहब, खातिरदारी का मतलब छुटपन से जितना तुम समझते हो, शायद ही कोई समझता हो।'

बिहारी बोला - 'महेंद्र भैया, एक बात है, सुन जाओ जरा!'

बिहारी ने विनोदिनी से विदा न माँगी और महेंद्र के साथ बाहर चला गया। बरामदे पर खड़ी विनोदिनी चुपचाप सूने आँगन को ताकती रही।

बाहर जा कर बिहारी ने कहा - 'भैया, एक बात का मैं खुलासा करना चाहता हूँ, हमारी दोस्ती क्या यहीं खत्म हो गई?'

उस समय महेंद्र के कलेजे में आग लग रही थी। विनोदिनी का व्यंग्य बिजली की लपट-सा उसके दिमाग के एक सिरे से दूसरे सिरे तक लपकता हुआ बार-बार उसे वेध रहा था। वह बोला - 'इस बात के फैसले से शायद ही तुम्हें

कुछ लाभ हो, पर मेरे लिए यह काम्य नहीं। अपनी दुनिया में मैं किसी बाहरी आदमी का प्रवेश नहीं चाहता। अंतःपुर को मैं अंतःपुर रखना चाहता हूँ।

बिहारी ने कुछ नहीं कहा। चला गया।

ईर्ष्या के दाह से जर्जर महेंद्र ने एक बार प्रतिज्ञा की - 'विनोदिनी से मैं नहीं मिलूँगा।' और फिर उससे मिलने की उम्मीद में वह घर-बाहर, ऊपर-नीचे छटपटाता हुआ चक्कर काटता रहा।

### 30

आशा ने एक दिन अन्नपूर्णा से पूछा - 'अच्छा मौसी, मौसा जी तुम्हें याद आते हैं?'

अन्नपूर्णा बोली - 'महज ग्यारह साल की उम्र में मैं विधवा हुई, पति की सूरत मुझे छाया-सी धुँधली याद है।'

आशा ने पूछा - 'फिर तुम किसकी बात सोचती हो?'

अन्नपूर्णास हँस कर बोली - 'अब मैं उन भगवान की याद करती हूँ जिनमें मेरे पति हैं।'

आशा ने पूछा - 'इससे तृप्ति होती है?'

स्नेह से आशा के माथे पर हाथ फेरते हुए अन्नपूर्णा ने कहा - 'मेरे मन की तू क्या समझेगी, बिटिया!'

आशा अपने मन में सोचने लगी - 'और मैं जिनकी बात आठों पहर सोचा करती हूँ, वे क्या मेरे मन की नहीं जानते! मैं ठीक से चिट्ठी नहीं लिख सकती, इसीलिए उन्होंने मुझे पत्र लिखना बंद क्यों कर दिया?'

इधर कुछ दिनों से उसे महेंद्र की चिट्ठी नहीं मिली। एक उसाँस ले कर आशा ने मन में सोचा - 'इस वक्त मेरी आँख की किरकिरी पास रही होती, तो मेरे मन की बात चिट्ठी में ठीक-ठीक लिख देती।'

'अच्छी तरह से न लिखी गई चिट्ठी का कोई मोल पति के लिए न होगा', यह सोच कर आशा ने चिट्ठी नहीं लिखी। जितना ही जतन से लिखना चाहती, उतना ही चिट्ठी बिगड़ जाती। मन की बातों को जितना ही सुलझा-सहेज कर लिखना चाहती, उसकी पंक्तियाँ पूरी न पड़तीं। अगर सिर्फ एक शब्द 'मेरे देवता' लिखने से ही अंतर्यामी की नाईं महेंद्र सब कुछ समझ सकता, तो आशा का पत्र लिखना सार्थक हो सकता था। ईश्वर ने प्रेम दिया है, थोड़ी-सी भाषा क्यों न दी?

संध्या की आरती के बाद अन्नपूर्णा मन्दिर से लौटीं, तो आशा धीरे-धीरे उनके पैर सहलाने लगी। बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। उसके बाद आशा बोली - 'अच्छा मौसी, तुम तो कहती हो कि देवता के समान पति की सेवा करना स्त्री का धर्म है, लेकिन जो स्त्री मूर्ख हो, जिसे बुद्धि न हो, जिसे यह न मालूम हो कि पति की सेवा कैसे करनी चाहिए, वह क्या करे?'

अन्नपूर्णा देर तक आशा की ओर देखती रहीं। एक लंबी साँस छोड़ कर बोलीं - 'मूर्ख तो मैं भी हूँ बिटिया, मगर फिर भी तो भगवान की सेवा करती हूँ।'

आशा ने कहा - 'भगवान तो तुम्हारे मन को समझते हैं, तभी वे खुश होते हैं। लेकिन यों समझो, स्वामी अगर मूर्ख स्त्री की सेवा से संतुष्ट न हो?'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'सबको खुश करने की शक्ति सबमें नहीं होती, बेटी। लेकिन स्त्री अगर तहेदिल से श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पति की सेवा और गृहस्थी के काम करती है, तो पति चाहे नाचीज समझ कर उसे ठुकरा दे, स्वयं जगदीश्वर जतन से उसे चुन लेते हैं।'

जवाब में आशा चुप रही। मौसी द्वारा दी गई सांत्वना को उसने अपनाने की बहुत कोशिश की, लेकिन यह बात उसके दिमाग में हर्गिज न बैठ सकी कि पति जिसे नाचीज समझ कर ठुकरा देंगे, उसे जगदीश्वर सार्थक कर सकेंगे। वह सिर झुकाए मौसी के पाँव सहलाती रही।

अन्नपूर्णा ने इस पर आशा को अपने और करीब खींच लिया। उसके माथे को चूमा। रूंध कंठ को बलपूर्वक खोल कर बोली - 'चुन्नी, तकलीफ झेल कर जीवन में जो सबक सीखा जा सकता है, केवल सुन कर वह संभव नहीं। तेरी इस मौसी ने भी तेरी उम्र में संसार से लेन-देन का बहुत बड़ा नाता जोड़ लिया था। उस समय मेरे भी जी में तेरी ही तरह होता था कि जिसकी मैं सेवा करूँगी, वह आखिर संतुष्ट क्यों न होगा। जिसकी पूजा करूँगी, उसका प्रसाद भला क्यों न मिलेगा? जिसके भले की करूँगी, वह मेरी चेष्टा को भली क्यों न समझेगा? लेकिन हर कदम पर देखा, वैसा होता नहीं है। और अंत में एक दिन दुनिया को छोड़ कर चली आई। और आज यह पा रही हूँ कि मेरा कुछ भी बेकार नहीं हुआ। असल में बिटिया जिससे लेन-देन का सही संबंध है, जो संसार की इस पैठ के असली महाजन हैं, वही मेरा सब कुछ स्वीकार कर रहे हैं, आज मेरे अंतर में बैठ कर उन्होंने यह बात कबूल की है। काश! तब यह जानती होती! अगर संसार के कर्म को उनका समझ कर करती, उन्हीं को दे रही हूँ - यह समझ कर संसार को अपना हृदय देती तो फिर कौन था जो मुझे दुःख दे सकता है!'

बिस्तर पर पड़ी-पड़ी आशा बड़ी रात तक बहुत बातें सोचती रही। लेकिन तो भी ठीक-ठीक कुछ न समझ सकी।

आशा के बड़े चाचा के लौट जाने का दिन आया। जाने के पहले दिन शाम को अन्नपूर्णा ने आशा को अपनी गोदी में बिठा कर कहा - 'चुन्नी, मेरी बिटिया, संसार के शोक-दुःख से सदा तुझे बचाते रहने की शक्ति मुझमें नहीं है। मेरा इतना ही कहना है कि जहाँ भी, जितना भी कष्ट क्यों न मिले, अपने विश्वास, अपनी भक्ति को दृढ़ रखना, तेरा धर्म जिससे अटूट रहे।'

आशा ने उनके चरणों की धूल ली। बोली - 'आशीर्वाद दो मौसी! ऐसा ही हो।'

### 31

आशा लौट आई। रूठ कर विनोदिनी ने कहा - 'भई किरकिरी, इतने दिन पीहर रही, खत लिखना भी पाप था क्या?'

आशा बोली - 'और तुमने तो लिख दिया जैसे!'



विनोदिनी - 'मैं पहले क्यों लिखती, पहले तुम्हें लिखना था।'

विनोदिनी के गले से लिपट कर आशा ने अपना कसूर मान लिया। बोली - 'जानती तो हो, मैं ठीक-ठीक लिख नहीं पाती। खास कर तुम-जैसी पंडिता को लिखने में शर्म आती है।'

देखते-ही-देखते दोनों का विषाद मिट गया और प्रेम उमड़ आया। विनोदिनी ने कहा - 'आठों पहर साथ रह कर तुमने अपने पति देवता की आदत बिलकुल बिगाड़ रखी है। कोई हरदम पास न रहे, तो रहना मुश्किल।'

आशा - 'तभी तो तुम पर जिम्मेदारी सौंप गई थी। और साथ कैसे दिया जाता है, यह तुम मुझसे ज्यादा अच्छी तरह से जानती हो।'

विनोदिनी - 'दिन को तो किसी तरह से कॉलेज भेज कर निश्चिंत हो जाती थी - मगर साँझ को किसी भी तरह से छुटकारा नहीं। किताब पढ़ कर सुनाओ, और-और न जाने क्या-क्या? पूछो मत, मचलने का तो अंत नहीं।'

आशा - 'आई न काबू में! जब जी बहलाने में पटु हो, तो लोग छुट्टी क्यों दें?'

विनोदिनी - 'मगर सावधान बहन, भाई साहब कभी-कभी तो ऐसी अति कर बैठते हैं कि धोखा होने लगता है, शायद मैं जादू-मंत्र जानती हूँ।'

आशा - 'जादू तुम नहीं जानती तो कौन जानता है! तुम्हारी विद्या जरा मुझे आ जाती, तो जी जाती मैं।'

विनोदिनी - 'क्यों, किसके बंटाधार का इरादा है! जो सज्जन घर में है, उन पर रहम करके किसी और को मोहने की कोशिश भी न करना।'

विनोदिनी को तर्जनी दिखा कर आशा बोली - 'चुप भी रह, क्या बक-बक करती है!'

काशी से लौटने के बाद पहली बार आशा को देख कर महेंद्र ने कहा - 'तुम्हारी सेहत तो पहले से अच्छी हो गई है। काफी तंदुरुस्त हो कर लौटी हो।'

आशा को बड़ी शर्म आई। उसकी सेहत अच्छी नहीं रहनी चाहिए थी- मगर उस गरीब का बस नहीं चलता।

आशा ने धीमे से पूछा - 'तुम कैसे रहे?'

पहले की बात होती तो महेंद्र कुछ तो मजाक और कुछ मन से कहता - 'मरा-मरा'। मगर अभी मजाक करते न बना - गले तक आ कर अटक गया। कहा - 'बेजा नहीं, अच्छा ही था।'

आशा ने गौर किया, महेंद्र पहले से कुछ दुबला ही हो गया है। चेहरा पीला पड़ गया है, आँखों में कैसी एक तेज चमक है। कोई भीतरी भूख मानो आग की जीभ से उसे चाटे जा रही हो। आशा पीड़ित हो कर सोचने लगी - 'स्वामी अपने दुरुस्त नहीं रहे यहाँ, मैं क्यों काशी चली गई। पति दुबले हो गए और खुद वह तगड़ी हो गई' - इसके लिए उसने अपनी सेहत को धिक्कारा।

महेंद्र देर तक सोचता रहा कि अब कौन-सी बात की जाए। बोला - 'चाची मजे में हैं?'

उत्तर में कुशल-क्षेम पा कर पूछने को दूसरी बात मन में लाना उसके लिए मुहाल हो गया। पास ही एक फटा-पुराना अखबार पड़ा था, उसे उठा कर वह अनमना-सा पढ़ने लगा। आशा सिर झुकाए सोचने लगी, 'इतने दिनों के बाद भेंट हुई, लेकिन उन्होंने मुझसे ठीक से बात क्यों नहीं की? बल्कि लगा, मेरी ओर उनसे ताकते भी न बना।'।

महेंद्र कॉलेज से लौटा। जल-पान करते समय राजलक्ष्मी थीं। आशा भी घूँघट निकाले पास ही दरवाज़ा पकड़े खड़ी थी - लेकिन और कोई न था।

राजलक्ष्मी ने परेशान-सी हो कर पूछा - 'आज तेरी तबीयत कुछ खराब है क्या, महेंद्र?'

जैसे ऊब गया हो, महेंद्र बोला - 'नहीं, ठीक है।'

राजलक्ष्मी - 'फिर तू कुछ खा क्यों नहीं रहा है?'

महेंद्र फिर खीझे हुए स्वर में बोला - 'खा तो रहा हूँ - और कैसे खाते हैं?'

गर्मी की साँझ। बदन पर एक हल्की चादर डाल महेंद्र छत पर इधर-उधर घूमने लगा। बड़ी उम्मीद थी कि इधर जो पढ़ाई नियम से चल रही थी, वह वैसी ही चलेगी। 'आनंदमठ' लगभग खत्म हो चला है। गिने-चुने कुछ अध्याय रह गए थे। यों जितनी भी निर्दयी हो विनोदिनी, ये बाकी अध्याय वह जरूर पढ़ कर सुनाएगी। लेकिन शाम हो गई और महेंद्र को कुछ हासिल न हुआ तो वह सोने चला गया।

सजी-सँवरी शरमाई आशा धीरे-धीरे कमरे में आई। देखा, महेंद्र बिस्तर पर सोया है। वह यह न सोच पाई कि किस तरह से आगे बढ़े। जुदाई के बाद जरा देर के लिए एक नई लज्जा होती है - जहाँ पर से जुदा होते हैं, दोनों, ठीक वहाँ पर मिलने से पहले एक-दूसरे को नए संभाषण की उम्मीद होती है। अपनी उस चिर-परिचिता सेज पर आशा आज बे-बुलाए कैसे जाए? दरवाजे के पास देर तक खड़ी रही। महेंद्र की कोई आहट न मिली। धीमे-धीमे पग-पग बढ़ी। अचानक किसी गहने की आवाज हो उठती तो मारे शर्म के मर-सी जाती। धड़कते हृदय से वह मच्छरदानी के पास जा खड़ी हुई। लगा, महेंद्र सो गया है। उसका सारा साज-शृंगार उसे सर्वांग के बंधन-सा लगा। उसकी यह इच्छा होने लगी कि बिजली की गति से भाग जाए और जा कर और कहीं सो रहे।

अपने जानते भरसक चुपचाप संकुचित हो कर आशा बिस्तर पर गई। फिर भी इतनी आवाज जरूर हुई कि महेंद्र अगर सचमुच ही सोया होता, तो जग पड़ता। लेकिन आज उसकी आँखें न खुलीं, क्योंकि दरअसल वह सो नहीं रहा था। वह पलंग के एक किनारे करवट लिए पड़ा था। लिहाजा आशा उसके पीछे लेट गई। पड़ी-पड़ी आशा आँसू बहा रही थी। उधर मुँह करके सोने के बावजूद महेंद्र को इसका साफ पता चल रहा था। अपनी बेरहमी से वह चक्की की तरह कलेजे को पीस कर दुखा रहा था। लेकिन वह क्या कहे, कैसे स्नेह जताए - यह उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था।

लेकिन आशा ने खुद ही उसकी यह मुसीबत भगा दी। वह तड़के ही अपमानित साज-शृंगार लिए उठ कर चली गई। वह भी महेंद्र को अपना मुँह न दिखा सकी।

आशा सोचने लगी - 'लेकिन ऐसा क्यों हुआ है?' मैंने क्या किया? लेकिन असली आफत जहाँ थी, वहाँ उसकी नजर न पड़ी। महेन्द्र विनोदिनी को प्यार कर सकता है, इसकी संभावना तक उसके मन में न आ सकी थी। दुनिया के अनुभव उसे कुछ थे नहीं। उसके सिवा विवाह के कुछ ही दिन बाद से महेन्द्र को जैसा समझ लिया था, वह उसके सिवा भी कुछ हो सकता है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

महेन्द्र आज कुछ पहले ही कॉलेज गया। कॉलेज जाते वक्त आशा सदा खिड़की के पास आ खड़ी होती और महेन्द्र गाड़ी में से एक बार झाँक लेता - यह उसका सदा का नियम था। इसी आदत के मुताबिक यंत्रवत वह खिड़की के सामने आ खड़ी हुई। अभ्यासवश महेन्द्र ने भी एक बार निगाह उठा कर ताका। देखा, आशा खिड़की पर खड़ी है - देखते ही महेन्द्र नजर झुका कर अपनी गोद में रखी किताबें देखने लगा। आँखों में वह नीरव भाषा कहाँ थी, कहाँ थी वह बोलती हुई मुस्कान!

गाड़ी निकल गई। आशा वहीं जमीन पर बैठ गई। यह दुनिया, यह गिरस्ती - सबका स्वाद फीका पड़ गया। अचानक आशा को लगा - 'हाँ, समझी। बिहारी बाबू काशी गए थे, यही सुन कर शायद वे नाराज हैं। इसके सिवा और तो कोई अप्रिय घटना इस बीच नहीं घटी। मगर इसमें मेरा क्या कसूर!'

सोचते-सोचते एक बार अचानक मानो उसके दिल की धड़कन बंद हो गई। उसे संदेह हुआ, शायद महेन्द्र को यह शंका हो गई कि बिहारी के काशी जाने में उसकी भी साँठ-गाँठ थी। राम-राम! ऐसी शंका! शर्म की हद!

महेन्द्र अचानक गाड़ी से झाँक कर आशा का जो मलिन करुण मुखड़ा देख गया, उसे वह दिन भर अपने मन से न मेट सका। कॉलेज के लेक्चरों, छात्रों की कतारों में वह खिड़की, आशा का वह सूखा-रूखा चेहरा, बिखरे बाल, मैली धोती और वह आकुल-व्याकुल दृष्टि बार-बार साफ लकीरों में खिंच-खिंच आने लगी।

कॉलेज का काम खत्म करके वह गोलदिग्धी के किनारे टहलने लगा। शाम हो गई। वह फिर भी तय न कर सका कि आशा से कैसा बर्ताव किया जाए - दयापूर्ण छल या कपटरहित निष्ठुरता, कौन-सा उचित है? विनोदिनी का वह त्याग करे, या न करे यह बात ही मन में न आई। दया और प्रेम - दोनों का दावा वह कैसे करे?

आखिर उसने यह कह कर अपने मन को समझाया कि आज भी आशा के प्रति उसका जो प्रेम है, वह बहुत ही कम स्त्रियों को नसीब होता है। वह स्नेह, वह प्रेम मिलता रहे, तो आशा संतुष्ट क्यों न रहेगी? विनोदिनी और आशा, दोनों को जगह देने की योग्यता महेन्द्र के प्रशस्त हृदय में है। विनोदिनी से उसका संबंध जिस पवित्र प्रेम का है, उससे दांपत्य में किसी तरह की आँच न आएगी।

मन को इस तरह समझा कर उसने एक भार उतार फेंका। 'दोनों में से किसी को छोड़े बिना दो चंद्रमा वाले ग्रह की तरह वह मजे में जीवन के दिन काट लेगा', यह सोच कर उसका जी खिल उठा। यह सोच कर वह तेजी से कदम बढ़ाता हुआ घर की ओर चल पड़ा कि आज जरा पहले ही वह बिस्तर पर जा लेटेगा और स्नेह-जतन से, मीठे वचन से आशा के मन की सारी वेदना धो देगा।

उसके खाने के समय आशा मौजूद न थी - लेकिन सोने तो आएगी ही, यह सोच कर महेन्द्र बिस्तर पर लेट गया। लेकिन उस सन्नाटे में सूनी सेज पर किस स्मृति ने महेन्द्र के मन को छा लिया? 'विषवृष' के लिए विनोदिनी से उस दिन की छीना-झपटी याद आई। साँझ के बाद विनोदिनी 'कपालकुण्डला' पढ़ कर सुनाना शुरू करती - धीरे-धीरे

रात हो आती, घर के सारे लोग सो जाते, सूने कमरे की स्तब्ध निर्जनता विनोदिनी की आवाज आवेश से मानो धीमी हो आती, रूँध-सी जाती; अचानक वह अपने को जब्त करके उठ खड़ी होती, किताब रख देती - महेन्द्र कहता, 'चलो, मैं तुम्हें सीढ़ी तक छोड़ आऊँ।' ये बातें याद आने लगीं और सर्वांग में सिहरन होने लगी। रात क्रमशः ज्यादा होने लगी - महेन्द्र को रह-रह कर आशंका होने लगी, अब आशा आएगी, अब आएगी। लेकिन वह न आई। महेन्द्र ने सोचा, मैं तो अपने कर्तव्य के लिए तैयार था, अब अगर वह नाहक ही नाराज हो कर न आए तो मैं क्या करूँ? और गहरी रात में उसने विनोदिनी के ध्यान को गाढ़ा कर लिया।

जब एक बज गया, तो महेन्द्र से न रहा गया। मसहरी हटा कर वह बाहर निकला। छत पर गया। देखा, चाँदनी रात बड़ी ही सुहानी हो रही है। महेन्द्र की जमाने से रुकी पड़ी आकांक्षा अब अपने आपको न रोक सकी। जब से आशा आई, विनोदिनी की झलक भी न दिखाई दी। चाँदनी से उमगी सूनी रात महेन्द्र को मोह से आच्छन्न करके विनोदिनी की तरफ ठेल कर ले जाने लगी। महेन्द्र नीचे उतरा। विनोदिनी के कमरे के पास गया। देखा, कमरा बंद नहीं है। अंदर गया। सेज बिछी थी, उस पर कोई सोया न था। कमरे में आहट पा कर दक्खिन वाले खुले बरामदे से विनोदिनी ने पूछा - 'कौन है?'

रूँधे हुए गीले स्वर से महेन्द्र बोला - 'मैं हूँ, विनोद।'

और महेन्द्र सीधा बरामदे में पहुँच गया।

गर्मी की रात। बरामदे में चटाई डाल कर विनोदिनी के साथ राजलक्ष्मी सोई थीं। उन्होंने कहा - 'महेन्द्र, इतनी रात को तू यहाँ कैसे?'

अपनी काली घनी भौंहों के नीचे से विनोदिनी ने महेन्द्र पर वज्र-कटाक्ष डाला। महेन्द्र ने कोई जवाब न दिया। तेजी से वहाँ से चला गया।

### 33

दूसरे दिन सुबह से ही घटा घुमड़ी रही। कुछ देर बेहद गर्मी थी, फिर काले-काजल से मेघों में से झुलसा आकाश जुड़ गया। आज महेन्द्र समय से पहले ही कॉलेज चला गया। बदले हुए कपड़े फर्श पर पड़े थे। आशा गिन-गिन कर कपड़े धोबी को देने लगी। हिसाब लिख कर रखने लगी।

महेन्द्र जरा लापरवाह है। इसी से आशा को हिदायत थी कि धोबी को कपड़े देते वक्त जेब जरूर देख लिया करे। आशा ने उसके एक कुरते की जेब में हाथ डाला कि एक चिट्ठी मिली।

वह चिट्ठी अगर जहरीला नाग बन कर उसी क्षण आशा की उँगली को काट खाती, तो अच्छा था, क्योंकि तीखा जहर शरीर में फैल जाता और कुछ ही मिनटों में शायद उसका काम तमाम कर देता; लेकिन जहर मन में फैलता है तो मौत की पीड़ा तो होती है, मौत नहीं होती।

खुली चिट्ठी। निकाल कर देखा तो विनोदिनी की लिखावट। पलक मारते आशा का चेहरा पीला पड़ गया। उस चिट्ठी को उसने बगल के कमरे में ले जा कर पढ़ा।

'कल रात तुमने जो हरकत की, उससे भी जी न भरा? आज फिर तुमने नौकरानी के हाथ छिपा कर मुझे पत्र भेजा। छिः, उसने मन में क्या समझा होगा! दुनिया में मुझे किसी को भी मुँह दिखाने लायक नहीं रहने दोगे तुम?

'मुझसे तुम क्या चाहते हो? प्यार! यह भिखमंगी क्यों आखिर? जन्म से तुम प्यार-ही-प्यार पाते आ रहे हो, फिर भी तुम्हारे लोभ का कोई हिसाब नहीं!

'मेरे प्रेम करने और प्रेम पाने की संसार में कोई जगह नहीं - इसीलिए मैं खेल में प्यार के खेद को मिटाया करती हूँ। जब तुम्हें फुर्सत थी, तुमने भी उस झूठे खेल में हाथ बँटाया था। लेकिन खेल की छुट्टी क्या खत्म नहीं होती? अब गर्द-गुबार झाड़-पोंछ कर वापस जाओ। मेरा तो कोई घर नहीं, मैं अकेली ही खेला करूँगी - तुम्हें नहीं बुलाऊँगी।

'तुमने लिखा है, तुम मुझे प्यार करते हो। खेल-कूद में यह बात मान ली जा सकती है - मगर सच कहना हो तो इस पर यकीन नहीं करती! कभी तुम यह सोचते थे कि आशा को प्यार करते हो। वह भी झूठा है। असल में तुम सिर्फ खुद को प्यार करते हो।

'प्यार की प्यास से मेरी छाती तक सूख गई है और वह प्यास मिटाने का सहारा तुम्हारे हाथ में नहीं, यह मैं अच्छी तरह देख चुकी हूँ। मैं बार-बार कहती हूँ, मुझे छोड़ दो, मेरे पीछे मत पड़ो, बेशर्म हो कर मुझे शर्मिंदा न करो! मेरे खेल का शौक भी पूरा हो चुका, अब पुकारोगे भी तो जवाब नहीं मिलेगा। खत में तुमने मुझे निर्दयी लिखा है - शायद यह सच हो, लेकिन मुझमें थोड़ी दया भी है, इसलिए आज मैंने दया करके तुम्हें त्याग दिया। कहीं तुमने मेरे इस पत्र का जवाब कोई दिया, तो समझूँगी कि यहाँ से भागे बिना तुमसे बचने का कोई उपाय नहीं।'

चिट्ठी का पढ़ना था कि लमहे भर में आशा के चारों तरफ के सहारे टूट गिरे, शरीर की सारी शिराएँ मानो एकबारगी थम गईं, साँस लेने के लिए हवा तक मानो न रही - सूरज ने उसकी आँखों के सामने से जैसे सारी रोशनी समेट ली। आशा ने पहले दीवार थामी, फिर अलमारी, और फिर कुर्सी पकड़ते-पकड़ते जमीन पर गिर पड़ी।

अंत में कलेजा दबा कर उसाँसें भरती हुई बोल पड़ी - 'मौसी!'

स्नेह के इस संभाषण के उमड़ते ही उसकी आँखों से आँसू छलकने लगे। रुलाई पर रुलाई, और फिर रुलाई - आखिर जब रुलाई थमी तो वह सोचने लगी - 'लेकिन इस चिट्ठी का क्या मैं करूँगी? कहीं उन्हें पता चल जाए कि यह चिट्ठी मेरे हाथ लग गई है तो! ऐसे में उनकी शर्मिंदगी की याद करके आशा बेतरह कुंठित होने लगी। सोच कर आखिर यह तय किया कि चिट्ठी को उसी कुरते की जेब में रख कर उसे खूँटी पर लटका देगी - धोबी को न देगी।

इसी विचार से चिट्ठी लिए वह सोने के कमरे में गई। इस बीच मैले कपड़ों की गठरी से टिक कर धोबी सो गया था। वह कुरते की जेब में चिट्ठी डालने की चेष्टा कर रही थी कि आवाज सुनाई दी - 'भई किरकिरी!'

चिट्ठी और कुरते को झट-पट पलंग पर डाल कर वह उस पर बैठ गई। विनोदिनी अंदर आ कर बोली - 'धोबी कपड़े बहुत उलट-पुलट करने लगा है। जिन कपड़ों में निशान नहीं लगाए गए हैं, मैं उन्हें ले जाती हूँ।'

आशा विनोदिनी की ओर देख न सकी। चेहरे के भाव से सब कुछ जाहिर न हो जाए, इसलिए खिड़की की ओर मुँह करके वह आसमान ताकती रही। होंठ से होंठ दबाए रही कि आँखों से आँसू न बह आएँ।

विनोदिनी ठिठक गई। एक बार आशा को गौर से देखा। सोचा, 'ओ, समझी, कल का वाकया मालूम हो गया है। लेकिन सारा गुस्सा मुझी पर! मानो कसूर मेरा ही है।'

उसने आशा से बात करने की कोशिश ही न की। कुछ कपड़े उठा कर जल्दी-जल्दी वहाँ से चली गई।

एक बार मिला कर देखने की इच्छा हुई।

वह खत खोलने लगी कि इतने में लपक कर महेंद्र कमरे में आया। जाने क्या उसे याद आया कि लेक्चर के बीच से ही अचानक उठ कर चला आया।

आशा ने पत्र आँचल में छिपा लिया। आशा को कमरे में देख कर महेंद्र भी सहम गया। उसके बाद व्यग्र दृष्टि से कमरे के इधर-उधर देखने लगा। आशा ताड़ गई कि महेंद्र क्या ढूँढ़ रहा है, लेकिन चिढ़ी को चुपचाप जहाँ थी, वहाँ रख कर वह कैसे भाग खड़ी हो, यह न समझ सकी।

महेंद्र एक-एक करके मैले कपड़े उठा-उठा कर देखने लगा। महेंद्र की उस बेकार कोशिश को देख कर आशा से न रहा गया। उसने कुरते और चिढ़ी को फर्श पर फेंक दिया और दाएँ हाथ से पलंग के डंडे को थाम कर मुँह गाड़ लिया। महेंद्र ने बिजली की तेजी से चिढ़ी उठाई। एक पल को आशा की ओर कुछ न बोलते हुए लेकिन कुछ कहने के अंदाज में उसने देखा मगर कुछ कहा नहीं।

फिर तुरंत आशा को ससीढ़ियों पर उसके तेज कदम की आहट मिली। इधर धोबी ने पुकरा - 'माँ जी, कपड़े देने में और कितनी देर करेंगी? बड़ी देर हो गई, मेरा घर भी तो पास नहीं।'

### 34

राजलक्ष्मी ने आज सुबह से विनोदिनी को बुलाया नहीं। रोज की तरह विनोदिनी भंडार में गई। राजलक्ष्मी ने सिर उठा कर उसकी ओर नहीं देखा।

यह देख कर भी उसने कहा - 'बुआ, तबीयत ठीक नहीं है, क्यों? हो भी कैसे? कल रात भाई साहब ने जो करतूत की! पागल-से आ धामके। मुझे तो फिर नींद ही न आई।'

राजलक्ष्मी मुँह लटकाए रहीं। हाँ-ना कुछ न कहा।

विनोदिनी बोली - 'किसी बात पर चख-चख हो गई होगी आशा से। कुछ भी कहो! बुआ, नाराज मत होना, तुम्हारे बेटे में चाहे हजारों सिफ्त हों, धीरज जरा भी नहीं। इसीलिए मुझसे हरदम झड़प ही होती रहती है।'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'बहू, झूठ बकती जा रही हो तुम, मुझे आज कोई भी बात नहीं सुहाती।'

विनोदिनी बोली - 'मुझे भी कुछ नहीं सुहा रहा है, बुआ। तुम्हारे दिल को ठेस लगेगी, इसी डर से झूठ से मैं तुम्हारे बेटे का गुनाह ढँकना चाहती थी। लेकिन इस हद को पहुँच गया है कि अब ढँका नहीं रहना चाहता।'

राजलक्ष्मी - 'अपने बेटे का गुण-दोष मुझे मालूम है, मगर तुम कैसी मायाविनी हो, यह पता न था।'

विनादिनी न जाने क्या कहने जा रही थी कि अपने को जब्त कर गई।

बोली - 'यह सच है बुआ, कोई किसी को नहीं जानता; अपने मन को ही क्या सब कोई जानते हैं? कभी क्या तुम्हीं ने अपनी बहू से डाह करके इस मायाविनी के जरिये अपने बेटे का मन मोहने की कोशिश नहीं कराई थी? जरा सोच कर देखो!'

राजलक्ष्मी आग-सी दहक उठी। बोली - 'अभागिन, लड़के के लिए तू माँ पर ऐसा आरोप लगा सकती है? जीभ गल कर नहीं गिरेगी तेरी?'

विनोदिनी उसी अडिग भाव से बोली - 'बुआ, हम हैं मायाविनी की जात - मुझमें कौन-सी माया थी मैं ठीक-ठाक नहीं जानती थी, तुम्हें पता था, तुममें भी क्या माया थी - इसका तुम्हें ठीक पता न था, मैं जानती थी। मगर माया जरूर थी, नहीं तो यह घटना न घटती। मैंने भी कुछ जानते और कुछ अजानते फंदा डाला था। और फंदा तुमने भी कुछ तो जान कर बिना जाने डाला था। हमारी जात का धर्म ही ऐसा है - हम मायाविनी हैं।'

क्रोध के मारे राजलक्ष्मी का कंठ जकड़ गया। वह तेजी से कमरे के बाहर निकल गई।

विनोदिनी सूने कमरे में जरा देर स्थिर खड़ी रही। उसकी आँखों में आग जल उठी।

सुबह का काम-काज चुक गया तो राजलक्ष्मी ने महेंद्र को बुलवा दिया। महेंद्र समझ गया, कल रात की घटना के बारे में कहेंगी। इस बीच विनोदिनी से चिट्ठी का उत्तर पा कर मन बेकल हो गया। उसी आघात के प्रतिघातस्वरूप उसका लहराया हृदय विनोदिनी की ओर जोरों से दौड़ रहा था। इस स्थिति में माँ से सवाल-जवाब करना उसके लिए कठिन था। वह खूब समझ रहा था, जहाँ माँ ने विनादिनी के बारे में उसे फटकार बताई कि वह विद्रोही की तरह सच बता देगा और सच कहते ही भीषण गृह-युद्ध शुरू हो जाएगा। लिहाजा इस समय कहीं बाहर जा कर सारी बातों पर ठीक से गौर कर लेना ठीक है। महेंद्र ने नौकर से कहा - 'माँ से जा कर कह दे, आज कॉलेज में मुझे विशेष काम से, जल्दी जाना है; लौट कर मिलूँगा।'

और तुरंत कपड़े पहन कर बिना खाए-पिए वह भाग खड़ा हुआ। विनोदिनी की जिस सख्त चिट्ठी को वह आज सुबह से ही बारंबार पढ़ता और जेब में लिए-लिए फिरता रहा, जल्दी में वह चिट्ठी कुरते में ही छोड़ कर चला गया।

एक झमक बारिश हो गई, फिर घुमड़न-सी हो रही। विनोदिनी का मन आज खीझा हुआ था। उसका मन भी जब ऐसा होता है तो वह काम ज्यादा करती है। इसीलिए आज घर भर में जितने भी कपड़े मिले सबको बटोर कर निशान लगा रही थी। आशा से कपड़े माँगने गई तो उसके चेहरे का भाव देख कर उसका मन और भी बिगड़ गया। संसार में अगर कसूरवार ही ठहरना है तो उसकी सारी जहमतें वही क्यों झेले, कसूर के सुखों से ही क्यों वंचित हो?

झमाझम बारिश शुरू हो गई। विनादिनी कमरे के फर्श पर आ बैठी। सामने कपड़ों का पहाड़ लगा था। नौकरानी एक-एक कपड़ा उसकी ओर बढ़ा रही थी और वह स्याही से उस पर हरफ उगा रही थी।

महेंद्र ने कोई आवाज न दी। दरवाजा खोल कर सीधा कमरे में दाखिल हो गया। नौकरानी घूँघट निकाल कर वहाँ से भाग गई।

विनोदिनी ने अपनी गोद पर का कपड़ा उतार फेंका और बिजली-सी लपक खड़ी हुई। बोली - 'जाओ, मेरे कमरे से चले जाओ!'

महेंद्र बोला - 'क्यों, मैंने क्या किया है?'

विनोदिनी - 'क्या किया है! डरपोक, कायर! कुछ करने की जुरत ही कहाँ है तुममें! न प्यार करना आता है, न कर्तव्य का पता है। बीच में मुझे क्यों लोगों की नजरों में गिरा रहे हो?'

महेंद्र - 'तुम्हें प्यार नहीं किया, यह क्या कहती हो?'

विनोदिनी - 'मैं यही कह रही हूँ - चोरी से, चुप-चुप, झोप-तोप, एक बार इधर तो एक बार उधर - तुम्हारी यह चोर-जैसी हरकत देख कर मुझे नफरत हो गई है। अब अच्छा नहीं लगता। तुम जाओ यहाँ से।'

महेंद्र मुरझा गया। बोला - 'तुम मुझसे नफरत करती हो, विनोद?'

विनोदिनी - 'हाँ, करती हूँ।'

महेंद्र - 'अब भी प्रायश्चित्त करने का समय है। मैं अगर दुविधा न करूँ, सब-कुछ छोड़-छाड़ कर चल दूँ तो तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो?'

यह कह कर महेंद्र ने जोर से उसके दोनों हाथ पकड़ कर उसे अपनी ओर खींच लिया। विनोदिनी बोली - 'छोड़ो, डर लगता है।'

महेंद्र - 'लगने दो। पहले बताओ कि तुम मेरे साथ चलोगी?'

विनोदिनी - 'नहीं! नहीं! हर्गिज नहीं।'

महेंद्र - 'क्यों नहीं चलोगी? तुमने ही मुझे खींच कर सर्वनाश के जबड़े में पहुँचाया। अब आज तुम मुझे छोड़ नहीं सकती। चलना ही पड़ेगा तुम्हें।'

महेंद्र ने बलपूर्वक विनोदिनी को अपनी छाती से लगाया और कस कर पकड़ते हुए कहा - 'मैं तुम्हें ले जा कर ही रहूँगा और चाहे जैसे भी हो, प्यार तुम्हें करना ही पड़ेगा।'

विनोदिनी ने जबरदस्ती अपने को उसके शिंकजे से छुड़ा लिया। महेंद्र ने कहा - 'चारों तरफ आग लगा दी है, अब बुझा भी नहीं सकती, भाग भी नहीं सकती।'

कहते-कहते महेंद्र की आवाज ऊँची हो आई। जोर से बोला - 'आखिर ऐसा खेल तुमने खेला क्यों, विनोद! अब इसे खेल कह कर टालने से छुटकारा नहीं। तुम्हारी और मेरी अब एक ही मौत है।'



राजलक्ष्मी अंदर आई। बोली - 'क्या कर रहा है, महेंद्र?'

महेंद्र की उन्मत्त निगाह पल भर को माँ की ओर फिर गई। उसके बाद उसने फिर विनोदिनी की तरफ देख कर कहा - 'मैं सब-कुछ छोड़-छाड़ कर जा रहा हूँ, बताओ, तुम मेरे साथ चलती हो?'

विनोदिनी ने नाराज राजलक्ष्मी के चेहरे की ओर एक बार देखा और अडिग भाव से महेंद्र का हाथ थाम कर बोली - 'चलूँगी।'

महेंद्र ने कहा - 'तो आज भर इंतजार करो! मैं चलता हूँ। कल से तुम्हारे सिवा मेरा और कोई न होगा।'

कह कर महेंद्र चला गया।

इतने में धोबी आ गया। विनोदिनी से उसने कहा - 'माँ जी, अब तो जाने ही दीजिए। आज फुरसत नहीं है, तो मैं कल आ कर कपड़े ले जाऊँगा।'

नौकरानी आई - 'बहू जी, साईस ने बताया है, घोड़े का दाना खत्म हो गया है।'

विनोदिनी इकट्ठा सात दिन का दाना अस्तबल में भिजवा दिया करती थी और खुद खिड़की पर खड़ी हो कर घोड़ों के खाने पर नजर रखती थी।

नौकर गोपाल ने आ कर खबर दी - बीबीजी, झाड़ूदार से दादा जी (साधुचरण) की झड़प हो गई है। वह कह रहा है, उसके तेल का हिसाब समझ लें तो वह दीवान जी से अपना लेना-देना चुका कर नौकरी छोड़ देगा।'

गृहस्थी के सारे काम-काज पहले की तरह चलते रहे।

## 35

बिहारी अब मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहा था। ऐन इम्तहान के वक्त छोड़ दिया। कोई अचरज से पूछ बैठता, तो कहता- 'पराई सेहत की बात फिर देखी जाएगी, पहले तंदुरुस्ती का खयाल जरूरी है।'

असल में बिहारी के अध्यवसाय की हद न थी, कुछ-न-कुछ किए बिना रहना उसके लिए मुश्किल था - हालाँकि यश की प्यास, दौलत का लोभ और गुजर-बसर के लिए कमाने-धमाने की उसे बिल्कुल जरूरत न थी। कॉलेज की डिग्री हासिल करने के बाद पहले वह इंजीनियरिंग सीखने के लिए शिवपुर में दाखिल हुआ था। उसे जितना सीखने का कौतूहल था और हाथ के जितने भर हुनर की वह जरूरत महसूस करता था - उतना भर हासिल कर लेने के बाद ही वह मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गया। महेंद्र साल भर पहले डिग्री ले कर मेडिकल कॉलेज गया था। कॉलेज के लड़कों में इन दोनों की मैत्री मशहूर थी। मजाक से सब इन्हें जुड़वाँ कहा करते थे। पिछले साल महेंद्र परीक्षा में लुढ़क गया और दोनों दोस्त साथ हो गए। अचानक यह जोड़ी टूट कैसे गई, संगी-साथियों की समझ में न आया। रोज जहाँ महेंद्र से भेंट अवश्यभावी होती मगर पहले जैसी न हो पाती - वहाँ बिहारी हर्गिज न जा सका। सबको विश्वास था, बिहारी खूब अच्छी तरह पास होगा और सम्मान तथा पुरस्कार जरूर पाएगा लेकिन उसने इम्तहान ही न दिया।

बिहारी के घर के पास ही एक झोंपड़े में राजेन्द्र चक्रवर्ती नाम का एक गरीब ब्राह्मण रहता था। छापेखाने में बारह रुपये की नौकरी करके अपनी रोटी चलाता था। बिहारी ने उससे कहा, 'अपने लड़के को तुम मेरे जिम्मे कर दो, मैं उसे लिखाऊँगा-पढ़ाऊँगा।'

बेचारा ब्राह्मण तो मानो जी गया। उसने खुशी-खुशी अपने आठ साल के लड़के बसन्त को बिहारी के हाथों सौंप दिया।

बिहारी उसे अपने तरीके से शिक्षा देने लगा। बोला - 'दस साल की उम्र तक मैं इसे किताब न छूने दूँगा - जबानी पढ़ाऊँगा। उसके साथ खेलने में, उसे ले कर मैदान, म्यूजियम, चिड़ियाघर, शिवपुर का बगीचा घूमने में बिहारी के दिन कटने लगे। जबानी अंग्रेजी सिखाता, कहानियों में इतिहास बताना, बालकों के मनोभाव का अध्ययन और विकास - बिहारी के पूरे दिन का यही काम था - अपने को वह पल भर का भी अवकाश न देता।

उस दिन शाम को घर से निकलने की गुंजाइश न थी। दोपहर को बारिश थम गई थी, शाम को फिर शुरू हो गई। अपने दुमंजिले के बड़े कमरे में बत्ती जला कर बिहारी बसन्त के साथ अपने नए ढंग का खेल खेल रहा था।

'अच्छा, कमरे में लोहे के कितने शहतीर हैं, जल्दी बताओ।'

'उहूँ, गिनना नहीं होगा।'

बसन्त - 'बीस।'

बिहारी - 'हार गए। अठारह हैं।'

बिहारी ने झट खिड़की की झिलमिली खोल कर पूछा - 'कितने पल्ले हैं इसमें?' और, झिलमिली उसने बंद कर दी।

बसन्त ने कहा - 'छः।'

'जीत गए।'

'यह बेंच कितनी लंबी है, इस किताब का वजन क्या होगा'- ऐसे सवालों से वह बसन्त के दिमाग के विकास की चेष्टा कर रहा था कि बैरे ने आ कर कहा - 'बाबूजी, एक औरत....'

उसका कहना खत्म भी न हो पाया था कि विनोदिनी कमरे में आ गई।

बिहारी ने अचरज से कहा - 'यह क्या, भाभी?'

विनोदिनी ने पूछा - 'तुम्हारे यहाँ अपनी सगी कोई स्त्री नहीं?'

बिहारी - 'अपनी-सगी भी कोई नहीं, पराई भी नहीं। बुआ है, गाँव में रहती है।'

विनोदिनी - 'तुम मुझे अपने गाँव वाले घर ले चलो।'

बिहारी - 'किस नाते?'

विनोदिनी - 'नौकरानी के नाते।'

बिहारी - 'बुआ को कैसा लगेगा! उन्होंने नौकरानी की जरूरत तो बताई नहीं है। खैर। पहले यह तो बताओ, अचानक ऐसा इरादा कैसे? बसंत, तुम जा कर सो रहो।'

बसंत चला गया।

विनोदिनी बोली - 'बाहरी घटना से तुम अंदर की बात जरा भी नहीं समझ सकोगे।'

बिहारी - 'न समझूँ तो भी क्या, गलत ही समझ लूँ तो क्या हर्ज है।'

विनोदिनी - 'अच्छी बात है, न हो गलत ही समझना। महेन्द्र मुझे प्यार करता है।'

बिहारी - 'यह खबर कुछ नई तो है नहीं। और न कोई ऐसी ही खबर है कि दोबारा सुनने को जी चाहे।'

विनोदिनी - 'बार-बार सुनाने की इच्छा भी नहीं अपनी। इसलिए तुम्हारे पास आई हूँ, मुझे पनाह दो।'

बिहारी - 'इच्छा नहीं है? यह आफत आखिर ढाई किसने! महेन्द्र जिस रास्ते जा रहा था। उससे उसे डिगाया किसने?'

विनोदिनी - 'मैंने डिगाया है। तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी, यह सारी करतूत मेरी है। मैं बुरी हूँ या जो कुछ भी हूँ जरा मुझ - जैसे हो कर मेरे मन की बात समझने की कोशिश करो। मैंने अपने जी की ज्वाला से महेन्द्र की दुनिया में आग लगाई है। एक बार ऐसा लगा कि मैं महेन्द्र को प्यार करती हूँ, लेकिन गलत है।'

बिहारी - 'अगर प्यार ही हो तो भला कोई ऐसी आग लगा सकती है?'

विनोदिनी - 'भाई साहब, यह सब आपके शास्त्र की बात है। ये बातें सुनने जैसी मति अभी अपनी नहीं हुई। अपनी पोथी पटक कर एक बार अंतर्दामी की तरह मेरे दिल की दुनिया में बैठो। आज मैं अपना भला-बुरा, सब तुमसे कहना चाहती हूँ।'

बिहारी - 'पोथी क्या यों ही खोले बैठा हूँ, भाभी? हृदय को हृदय के कानून से समझने की जिम्मेदारी अंतर्दामी पर ही रहे, हम पोथी के अनुसार न चलें तो अंत में पार नहीं पड़ने का।'

विनोदिनी - 'बेहया हो कर कहती हूँ सुनो, तुम मुझे लौटा सकते हो। महेन्द्र मुझे चाहता है, मगर वह अंधा है, मुझे नहीं समझता। कभी यह लगा था कि तुमने मुझे समझा है - कभी तुमने मुझ पर श्रद्धा की थी - सच-सच बताओ, आज इस बात को छिपाने की कोशिश मत करो!'

बिहारी - 'सच है, मैंने श्रद्धा की थी।'

विनोदिनी - 'तुमने गलती नहीं की थी भाई साहब! लेकिन जब समझ ही लिया, जब श्रद्धा की ही थी, तो फिर वहीं क्यों रुक गए? मुझे प्यार करने में तुम्हें क्या बाधा थी? आज मैं बेहया बन कर तुम्हारे पास आई हूँ और बेहया हो कर ही तुमसे कहती हूँ, तुमने भी मुझे प्यार क्यों नहीं किया? मेरी फूटी तकदीर! या तुम भी आशा की मुहब्बत में गर्क हो गए! न, नाराज नहीं हो सकते तुम! बैठो, आज मैं छिपा कर कुछ नहीं कहना चाहती। आशा को तुम प्यार करते हो, इस बात का जब खुद तुम्हें भी पता न था, मैं जानती थी। लेकिन मैं समझ नहीं पाती कि आशा में तुम लोगों ने देखा क्या है! बुरा या भला - उसके पास है क्या? विधाता ने क्या मर्दों को जरा भी अंतर्दृष्टि नहीं दी है? तुम लोग आखिर क्या देख कर, कितना देख कर दीवाने हो जाते हो।'

बिहारी उठ खड़ा हुआ बोला - 'आज तुम जो कुछ भी कहोगी, आदि से अंत तक मैं सब सुनूँगा, मगर इतनी ही विनती है, जो बात कहने की नहीं है, वह मत कहो।'

विनोदिनी - 'तुम्हें कहाँ दुखता है, जानती हूँ भाई साहब। लेकिन मैंने जिसकी श्रद्धा पाई थी और जिसका प्रेम पाने से मेरी जिन्दगी बन सकती थी, लाज-डर, सबको बाला-ए-ताक धर कर उसके पास दौड़ी आई हूँ - कितनी बड़ी वेदना ले कर आई हूँ, कैसे बताऊँ? मैं बिलकुल सच कहती हूँ, तुम आशा को प्यार करते होते तो उसकी आज यह गत न हुई होती।'

बिहारी फक रह गया। बोला - 'आशा को क्या हुआ? कौन-सी गत की तुमने।'

विनोदिनी - 'अपना घर-बार छोड़ कर महेंद्र मुझे ले कर कल चल देने को तैयार है।'

बिहारी एकाएक चीख पड़ा - 'यह हर्गिज नहीं हो सकता, हर्गिज नहीं।'

विनोदिनी - 'हर्गिज नहीं? महेंद्र को रोक कौन सकता है?'

बिहारी - 'तुम रोक सकती हो।'

विनोदिनी जरा देर चुप रही, उसके बाद बिहारी पर अपनी आँखें रोक कर कहा - 'आखिर किसके लिए रोकूँ? तुम्हारी आशा के लिए? मेरा अपना सुख-दुःख है ही नहीं? तुम्हारी आशा का भला हो, तुम्हारे महेंद्र की दुनिया बनी रहे - यह सोच कर मैं अपने आज का अपना सारा दावा त्याग दूँ। इतनी भली मैं नहीं हूँ - इतना शास्त्र मैंने नहीं पढ़ा। मैं छोड़ दूँगी तो उसके बदले मुझे क्या मिलेगा?'

धीरे-धीरे बिहारी के चेहरे का भाव सख्त हो आया। बोला - 'तुमने बहुत साफ-साफ कहने की कोशिश की है, अब मैं भी एक बात स्पष्ट बताऊँ। आज जो भी हरकत तुमने की है, और जो बेहूदा बातें कह रही हो, इसकी अधिकांश ही उस साहित्य से चोरी की हुई हैं, जो तुमने पढ़ा है। इसका पचहत्तर फीसदी नाटक और उपन्यास है।'

विनोदिनी - 'नाटक! उपन्यास!'

बिहारी - 'हाँ, नाटक, उपन्यास। वह भी वैसे महत्व का नहीं। तुम सोचती हो, यह सारा कुछ तुम्हारा निजी है - बिलकुल गलत। यह सब छापेखाने की प्रति-ध्वनि है। तुम अगर निहायत अबोध, सीधी-सादी बालिका होती, तो भी संसार में प्रेम से वंचित न होती - लेकिन नाटक की नायिका रंगमंच पर ही फबती है, उससे घर का काम नहीं चलता।'

कहाँ है विनोदिनी का वह तीखा तेज, दारुण दर्प! मंत्रबिद्ध नागिन-सी वह स्तब्ध हो कर झुक गई। बड़ी देर के बाद बिहारी की ओर देखे बिना ही शांत और नम्र स्वर में बोली - 'तो मैं क्या करूँ?'

बिहारी बोला - 'अनोखा कुछ न करो। एक सामान्य स्त्री के अच्छे विचार से जो आए, वही करो। अपने घर चली जाओ।'

विनोदिनी ने कहा - 'कैसे जाऊँ?'

बिहारी - 'गाड़ी में तुम्हें औरतों वाले डिब्बे में बिठा कर तुम्हारे घर के स्टेशन तक छोड़ आऊँगा मैं।'

विनोदिनी - 'आज की रात यहीं रहूँ?'

बिहारी - 'नहीं, अपने ऊपर मुझे इतना विश्वास नहीं।'

सुनते ही विनोदिनी कुर्सी से उतर कर जमीन पर लोट गई। बिहारी के दोनों पैरों को जी-जान से अपनी छाती से चिपका कर बोली - 'इतनी कमजोरी तो रखो भाई साहब! बिलकुल पत्थर के देवता - जैसे पवित्रा मत बनो। बुरे को प्यार करके जरा-सा बुरा तो बनो।'

कह कर विनोदिनी ने बिहारी के पाँवों को बार-बार चूमा। विनोदिनी के ऐसे आकस्मिक और अकल्पनीय व्यवहार से जरा देर के लिए तो बिहारी मानो अपने को जब्त न कर सका। उसकी तन-मन की सारी गाँठें ढीली पड़ गई। बिहारी की इस विह्वल दशा का अनुभव करके विनोदिनी ने उसके पैर छोड़ दिए, अपने घुटनों के बल ऊँची हो कर उसने कुर्सी पर बैठे बिहारी की गर्दन को बाँहों से लपेट लिया। बोली - 'मेरे सर्वस्व, जानती हूँ, तुम मेरे सदा के लिए नहीं, लेकिन आज एक पल के लिए तुम मुझे प्यार करो! फिर मैं अपने उसी जंगल में चली जाऊँगी - किसी से कुछ भी न चाहूँगी। मरने तक याद रखने लायक एक कोई चीज दो।'

आँखें मूँद कर विनोदिनी ने अपने हाँठ बिहारी की ओर बढ़ा दिए। जरा देर के लिए दोनों सन्न रह गए, सारा घर सन्नाटा। इसके बाद धीरे-धीरे विनोदिनी की बाँहें हटा कर बिहारी दूसरी कुर्सी पर जा बैठा और रूंधी-सी आवाज साफ करके कहा - 'रात को एक बजे एक पैसेंजर गाड़ी है।'

विनोदिनी जरा देर खामोश रही, फिर बोली - 'उसी गाड़ी से चली चलूँगी।' इतने में नंगे पाँव, खाली बदन अपना गोरा स्वस्थ शरीर लिए बसन्त बिहारी के पास आ खड़ा हुआ और गंभीर हो कर विनोदिनी को देखने लगा।

बिहारी ने पूछा - 'सोने नहीं गया, बसन्त?'

बसन्त ने कोई उत्तर न दिया। उसी तरह गंभीर खड़ा रहा। विनोदिनी ने अपने दोनों हाथ फैला दिए। बसन्त ने पहले तो जरा आगा-पीछा किया, फिर विनोदिनी के पास चला गया। विनोदिनी उसे छाती से लगा कर जोर से रो पड़ी।

असंभव भी संभव हो जाता है, असह्य भी सह्य हो जाता है। ऐसा न होता तो उस दिन की रात महेंद्र के घर में कटती नहीं। विनोदिनी को तैयार रहने का कह कर महेंद्र ने रात ही एक पत्र लिखा था। वह पत्र डाक से सवेरे महेंद्र के यहाँ पहुँचा। आशा उस समय बिस्तर पर ही थी। बैरे ने आवाज दी - 'माँ जी, चिट्ठी।'।

आशा के कलेजे पर लहू ने धक से चोट की। पलक मारने भर की देर में हजारों आशा -आशंकाएँ एक साथ ही उसकी छाती में बज उठीं। झट-पट सिर उठा कर उसने पत्र देखा, महेंद्र के अक्षरों में विनोदिनी का नाम। तुरंत उसका माथा तकिए पर लुढ़क पड़ा। बोली कुछ नहीं। चिट्ठी बैरे को वापस कर दी। बैरे ने पूछा - 'किसे दूँ?'

आशा ने कहा - 'मैं नहीं जानती।'।

रात के आठ बज रहे होंगे। महेंद्र आंधी की तरह लपक कर विनोदिनी के कमरे के सामने हाज़िर हुआ। देखा, कमरे में रोशनी नहीं है। घुप्प अँधेरा। जेब से दियासलाई निकाल कर एक तीली जलाई। कमरा खाली पड़ा था। विनोदिनी नहीं थी, उसका सरो-समान भी नदारद। दक्खिन वाले बरामदे में गया। वह भी सूना पड़ा था। आवाज दी - 'विनोदिनी!' कोई जवाब नहीं।

'नासमझ! नासमझ हूँ मैं। उसी समय साथ ले जाना चाहिए था। माँ ने जरूर उसे इस बुरी तरह डाँटा-फटकारा है कि वह टिक न सकी।'।

ध्यान में यही आया और अटल विश्वास बन गया। अधीर हो कर वह उसी दम माँ के कमरे में गया। रोशनी वहाँ भी न थी, लेकिन राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी थीं - यह अँधेरे में भी दिखा। महेंद्र ने रंजिश में कहा - 'माँ, तुम लोगों ने विनोदिनी से क्या कहा।'।

राजलक्ष्मी बोलीं- 'कुछ नहीं।'।

महेंद्र - 'तो वह कहाँ गई?'।

राजलक्ष्मी- 'मैं क्या जानूँ?'।

महेंद्र ने अविश्वास के स्वर में कहा - 'तुम नहीं जानतीं? खैर उसे तो मैं जहाँ भी होगी, ढूँढ़ ही निकालूँगा।'।

महेंद्र चल पड़ा। राजलक्ष्मी झट-पट उठ खड़ी हुई और उसके पीछे-पीछे चलती हुई कहने लगीं- 'मत जा, मेरी एक बात सुन ले, ठहर।'।

महेंद्र दौड़ कर एक ही साँस में घर से बाहर निकल गया। उलटे पाँवों लौट कर उसने दरबान से पूछा - 'बहूजी कहाँ गई?'।

दरबान ने कहा - 'हमें बता कर नहीं गई। पता नहीं।'।

महेंद्र ने चीख कर कहा - 'पता नहीं।'।

दरबान ने हाथ बाँध कर कहा - 'जी नहीं, नहीं मालूम।'।

महेंद्र ने सोचा, 'माँ ने इन्हें पट्टी पढ़ा दी है।' बोला - 'खैर।'

महानगरी के राजपथ पर गैस की रोशनी के मारे अँधेरे में बर्फ वाला बर्फ और मछली वाला मछली की रट लगा था। भीड़ की हलचल में घुस कर महेंद्र ओझल हो गया।

[>>पीछे>>](#) [>>आगे>>](#)

[शीर्ष पर जाएँ](#)

## आँख की किरकिरी रवींद्रनाथ टैगोर

### 37

रात के अँधेरे में बिहारी कभी अकेले ध्यान नहीं लगाता। अपने लिए अपने को उसने कभी भी आलोच्य नहीं बनाया। वह पढ़ाई-लिखाई, काम-काज, हित-मित्रों में ही मशगूल रहता। अपने बजाय अपने चारों तरफ की दुनिया को प्रमुखता दे कर वह मजे में था। लेकिन अचानक जोर के धक्के से एक दिन उसका सब कुछ विच्छिन्न हो गया। प्रलय के अँधेरे में वेदना की आकाश-छूती चोटी पर उसे अकेले खुद को ले कर खड़ा होना पड़ा। उसी समय अपने निर्जन संग से उसे भूल कर भी अवकाश नहीं देना चाहता।

लेकिन आज अपने उस भीतर वाले को बिहारी किसी भी तरह से दूर न रख सका। कल वह विनोदिनी को उसके घर छोड़ आया, उसके बाद जो भी काम, जिस भी आदमी के साथ जुटा रहा है, उसका गुफा के अंदर का वेदनामय हृदय उसे अपने गहरे एकांत की ओर लगातार खींच रहा था।

थकावट और अवसाद ने आज बिहारी को परास्त कर दिया। रात के ठीक नौ बजे होंगे। घर के सामने दक्खिन वाली छत पर गर्मी के दिन-ढले की हवा उतावली-सी हो उठी थी। वह अँधेरी छत पर एक आराम-कुर्सी पर बैठ गया।

आज शाम को उसने बसन्त को पढ़ाया नहीं - जल्दी ही वापस कर दिया। आज सांत्वना के लिए, संग के लिए, प्रेम-सुधा-सने अपने पिछले जीवन के लिए उसका हृदय मानो माँ द्वारा त्यागे गए शिशु की तरह संसार के अँधेरे में दोनों बाँहें फैला कर न जाने किसे खोज रहा था! जिनके बारे में न सोचने की उसने कसम खाई थी। उसका अंतर्मन उन्हीं की ओर दौड़ रहा था- रोकने की शक्ति ही नहीं रह गई थी।

छुटपन से छूट जाने तक महेंद्र से उसकी मैत्री की जो कहानी रंगों में चित्रित, जल-स्थल, नदी-पर्वत में बँटी मानचित्र-जैसी उसके मन में सिमटी पड़ी थी, बिहारी ने उसे फैला दिया। लेकिन फिर भी यह बिछोह और वेदना अनोखी नेह-किरणों रँगी माधुरी से भरी-पूरी रही। उसके बाद जिस शनि का उदय हुआ, जिसने मित्र के स्नेह, दंपति के प्रेम घर की शांति और पवित्रता को एकबारगी मटियामेट कर दिया, उस विनोदिनी को बिहारी ने बेहद घृणा से अपने मन से निकाल फेंकने की कोशिश की। लेकिन गजब! चोट गोया निहायत हल्की हो आई, उसे छू न सकी। वह अनोखी खूबसूरत पहेली अपनी अगम रहस्यभरी घनी काली आँखों की स्थिर निगाह लिए कृष्ण पक्ष के



अँधेरे में बिहारी के सामने डट कर खड़ी हो गई। गर्मी की रात की उमगी हुई दक्खिनी बयार उसी के गहरे निःश्वास-सी बिहारी को छूने लगी। धीरे-धीरे उन अपलक आँखों की जलती हुई निगाह मलिन हो आने लगी, प्यास से सूखी वह तेज नजर आँसुओं में भीग कर स्निग्ध हो गई और देखते-ही-देखते गहरे भाव रस में डूब गई। अचानक उस मूर्ति ने बिहारी के कदमों के पास लौट कर उसकी दोनों जाँघों को जी-जान से अपनी छाती से पकड़ लिया। उसके बाद एक अनूठी मायालता की तरह उसने पल में बिहारी को लपेट लिया और फैल कर तुरंत खिले सुगंधित फूल- जैसे चुम्बनोन्मुख मुखड़े को बिहारी के होंठों के पास बढ़ा दिया। आँखें मूँद कर अपनी सुधियों की दुनिया से बिहारी उस कल्पमूर्ति को निर्वासित कर देने की चेष्टा करने लगा; लेकिन उस पर आघात करने को उसका हाथ हर्गिज न उठा! एक अधूरा अकुलाया चुंबन उसके मुँह के पास उत्सुक हो रहा - पुलक से उसने उसे आच्छन्न कर दिया।

छत पर के सूने अँधेरे में बिहारी और न रह सका। किसी और तरफ ध्यान बँटाने के खयाल से वह जल्दी-जल्दी चिराग की रोशनी से जगमग कमरे में चला आया।

कोने में तिपाई पर रेशमी कपड़े में ढँकी एक मढ़ी हुई तस्वीर थी। बिहारी ने कपड़ा हटाया, तस्वीर को ले कर रोशनी के पास बैठा और उसे अपनी गोद में रख कर देखने लगा।

तस्वीर महेंद्र और आशा की थी - ब्याह के तुरंत बाद की। उसमें महेंद्र ने अपने लेख में 'महेंद्र भैया' और आशा ने 'आशा' लिख दिया था।

तस्वीर को अपनी गोद में रख कर धिक्कारते हुए बिहारी ने विनोदिनी को मन से दूर हटाना चाहा। लेकिन विनोदिनी की प्रेम-कातर, यौवन-कोमल बाँहें बिहारी की जाँघों को जकड़े रहीं। बिहारी मन-ही-मन बोला - 'प्रेम की इतनी अच्छी दुनिया को तबाह कर दिया! लेकिन विनोदिनी का उमगा आकुल चुंबन-निवेदन उससे चुपचाप कहने लगा- 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। सारी दुनिया में मैंने तुम्हीं को अपनाया है।'

'लेकिन यही क्या इसका उत्तर हुआ! एक उजड़ी हुई दुनिया की करुणा भरी चीख को यह बात ढक सकती है! पिशाचिन!'

पिशाचिन! यह बिहारी की निखालिस झिड़की थी या इसमें जरा स्नेह का सुर भी आ मिला था? जीवन में प्रेम के सारे अधिकारों से वंचित हो कर जब वह निरा भिखारी-सा राह पर जा खड़ा हुआ, तब अनमोँगे अजस्र प्रेम के ऐसे उपहार को वह तहेदिल से ठुकरा सकता है! और इससे बेहतर उसे मिला भी क्या! अब तक तो वह अपने जीवन की बलि दे कर प्रेम की अन्नपूर्णा ने महज उसी के लिए सोने की थाली में पकवान परोस कर भेजा है, तो किस संकोच से वह अभागा अपने को उससे वंचित करे?

तस्वीर को गोद में रखे वह इसी तरह की बातों में डूबा हुआ था कि पास ही आहट हुई। चौंक कर देखा, महेंद्र आया है। वह हड़बड़ी में खड़ा हो गया। तस्वीर गोद से फर्श के कालीन पर लुढ़क पड़ी। बिहारी ने इसका खयाल न किया।

महेंद्र एकबारगी पूछ बैठा - 'विनोदिनी कहाँ है?'

बिहारी ने जरा आगे बढ़ कर उसका हाथ थाम लिया। बोला - 'महेंद्र भैया, बैठ जाओ, अभी बातें करते हैं।' महेंद्र ने कहा - 'मेरे पास बैठने और बात करने का वक्त नहीं है। तुम यह बताओ कि विनोदिनी कहाँ है?'

बिहारी ने कहा - 'तुम जो पूछ रहे हो, एक वाक्य में जवाब नहीं दिया जा सकता। उसके लिए जरा बैठना पड़ेगा।'

महेंद्र ने कहा - 'उपदेश दोगे? वे सारे उपदेश मैं बचपन में ही पढ़ चुका हूँ।'

बिहारी - 'नहीं। उपदेश देने का न तो मुझे अधिकार है, न क्षमता।'

महेंद्र - 'तो धिक्कारोगे? मुझे पता है, मैं पापी हूँ, और तुम जो कहोगे, वह सब हूँ मैं। लेकिन सिर्फ इतना पूछना चाहता हूँ, विनोदिनी कहाँ है?'

बिहारी - 'मालूम है।'

महेंद्र - 'मुझे बताओगे या नहीं?'

बिहारी - 'नहीं बताऊँगा।'

महेंद्र - 'तुम्हें बताना ही पड़ेगा। तुम उसे चुरा लाए हो और छिपा कर रखे हुए हो। वह मेरी है। मुझे लौटा दो।'

बिहारी कुछ क्षण ठगा-सा रहा। फिर दृढ़ता से बोला - 'वह तुम्हारी नहीं है। मैं उसे चुरा कर भी नहीं लाया - वह खुद-ब-खुद मेरे पास आई है।'

महेंद्र चीख उठा - 'सरासर झूठ!'

और महेंद्र ने बगल के कमरे के दरवाजे पर धक्का देते हुए आवाज दी - 'विनोद! विनोद!'

अंदर से रोने की आवाज सुनाई पड़ी। बोला - 'कोई डर नहीं विनोद, मैं महेंद्र हूँ - मैं तुम्हें कोई कैद करके नहीं रख सकता।'

महेंद्र ने जोर से धक्का दिया कि किवाड़ खुल गया। दौड़ कर अंदर गया। कमरे में अँधेरा था। धुँधली छाया-सी उसे लगी। न जाने वह किस डर के मारे काठ हो कर तकिए से लिपट गया। जल्दी से बिहारी कमरे में आया। बिस्तर से बसंत को गोद में उठा कर दिलासा देता हुआ बोला - 'डर मत बसंत, मत डर।'

महेंद्र लपक कर वहाँ से निकला। घर के एक-एक कमरे की खाक छान डाली। उधर से लौट कर देखा, अब भी बसन्त डर से रह-रह कर रो उठता था। बिहारी ने उसके कमरे की रोशनी जलाई। उसे बिछौने पर सुला कर बदन सहलाते हुए उसे सुलाने की चेष्टा करने लगा।

महेंद्र ने आ कर पूछा - 'विनोदिनी को तुमने कहाँ रखा है?'

बिहारी ने कहा - 'महेंद्र भैया, शोर न मचाओ। नाहक ही तुमने इस बच्चे को इतना डरा दिया कि यह बीमार हो जाएगा। मैं कहता हूँ, विनोदिनी के बारे में जानने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं।'

महेंद्र बोला - 'महात्मा जी, धर्म का आदर्श न बनो। मेरी स्त्री की तस्वीर अपनी गोद में रख कर इस रात को किस देवता के ध्यान में किस पुण्य मंत्र का जाप कर रहे थे? पाखंडी!'

कह कर महेंद्र ने तस्वीर को जूते से रौंद कर चूर-चूर कर डाला और फोटो के टुकड़े-टुकड़े करके बिहारी पर फेंक दिया। उसका पागलपन देख कर बसन्त फिर रो पड़ा। गला रूँध आया बिहारी का। अंगुली से दरवाजे का इशारा करते हुए वह बोला - 'जाओ!'

महेंद्र आँधी की तरह वहाँ से निकल गया।

### 38

रेल के औरतों वाले सूने डिब्बे में बैठी विनोदिनी ने खिड़की में से जब जुते हुए खेत और बीच-बीच में छाया से घिरे गाँव देखे, तो मन में सूने शीतल गाँव की जिंदगी ताजा हो आई। उसे लगने लगा, पेड़ों की छाया के बीच अपने-आप बनाए कल्पना के बसेरे में अपनी किताबों से उलझ कर कुछ दिनों के इस नगर-प्रवास के दुःख-दाह और जख्म से उसे शांति मिलेगी।

प्यासी छाती में चैन की वह उम्मीद ढोती हुई विनोदिनी अपने घर पहुँची। मगर हाय, चैन कहाँ! वहाँ तो केवल शून्यता थी, थी गरीबी। बहुत दिनों से बंद पड़े सीले घर के भाप से उसकी साँस अटकने लगी। घर में जो थोड़ी-बहुत चीजें थीं, उन्हें कीड़े चाट गए थे, चूहे कुतर गए थे, गर्द से बुरा हाल था। वह शाम को घर पहुँची - और घर में पसरा था बाँह-भर अँधेरा। सरसों के तेल से किसी तरह रोशनी जलाई- उसके धुएँ और धीमी जोत से घर की दीनता और भी साफ झलक उठी। पहले जिससे उसे पीड़ा नहीं होती थी, वह अब असह्य हो उठी। उसका बागी हृदय अकड़ कर बोल उठा - 'यहाँ तो एक पल भी नहीं कटने का। ताक पर दो-एक पुरानी पत्रिकाएँ और किताबें पड़ी थीं, किन्तु उन्हें छूने को जी न चाहा। बाहर सन्न पड़े-से आम के बगीचे में झींगुर और मच्छरों की तानें अँधेरे में गूँजती रहीं।

विनोदिनी की जो बूढ़ी अभिभाविका वहाँ रहती थी, वह घर में ताला डाल कर अपनी बेटी से मिलने उसकी ससुराल चली गई थी। विनोदिनी अपनी पड़ोसिन के यहाँ गई। वे तो उसे देख कर दंग रह गईं। उफ, रंग तो खासा निखर आया है, बनी-ठनी, मानो मेम साहब हो। इशारे से आपस में जाने क्या कह कर विनोदिनी पर गौर करती हुई एक-दूसरे का मुँह ताकने लगीं।

विनोदिनी पग-पग पर यह महसूस करने लगी कि अपने गाँव से वह सब तरह से बहुत दूर हो गई है। अपने ही घर में निर्वासित-सी। कहीं पल भर आराम की जगह नहीं।

डाक खाने का बूढ़ा डाकिया विनोदिनी का बचपन से परिचित था। दूसरे दिन वह पोखर में डुबकी लगाने जा रही थी कि डाक का थैला लिए उसे जाते देख विनोदिनी अपने आपको न रोक सकी। अँगोछा फेंक जल्दी से बाहर निकल कर पूछा - 'पंचू भैया, मेरी चिट्ठी है?'

बुढ़े ने कहा - 'नहीं।'

विनोदिनी उतावली हो कर बोली - 'हो भी सकती है। देखूँ तो जरा।'

यह कह कर उसने चिट्ठियों को उलट-पलट कर देखा। पाँच-छः ही तो चिट्ठियाँ थीं। मुहल्ले की कोई न थी। उदास-सी जब घाट पर लौटी तो उसकी किसी सखी ने ताना दिया- 'क्यों री बिन्दी, चिट्ठी के लिए इतनी परेशान क्यों?'

दूसरे एक बातूनी ने कहा - 'अच्छी बात है, अच्छी! डाक के जरिये चिट्ठी आए, ऐसा भाग कितनों का होता है? हमारे तो पति, देवर, भाई परदेस में काम करते हैं, मगर डाकिए की मेहरबानी तो कभी नहीं होती।'

बातों-ही-बातों में मजाक साफ चिकोटी गहरी होने लगी। विनोदिनी बिहारी से निहोरा कर आई थी - निहायत ही रोज-रोज लिखते न बने, तो कम-से-कम हफ्ते में दो बार तो दो पंक्तियाँ जरूर लिखे। आज ही बिहारी की चिट्ठी आए, यह उम्मीद नहीं के बराबर ही थी, लेकिन आकांक्षा ऐसी बलवती हो कि वह दूर-संभावना की आशा भी विनोदिनी न छोड़ सकी। उसे लगने लगा, जाने कब से कलकत्ता छूट गया है!

गाँव में महेंद्र को ले कर किस कदर उसकी निंदा हुई थी, दोस्त-दुश्मन की दया से यह उसकी अजानी न रही। शांति कहाँ!

गाँव के लोगों से उसने अपने को अछूता रखने की कोशिश की। लोग-बाग इससे और भी बिगड़ उठे। पापिनी को पास पा कर घृणा और पीड़न के विलास सुख से अपने को वे वंचित नहीं रखना चाहते।

छोटा-सा गाँव - अपने को सबसे छिपाए रखने की कोशिश बेकार है। यहाँ जख्मी हृदय को किसी कोने में दुबका कर अँधेरे में सेवा-जतन की गुंजाइश नहीं - जहाँ-तहाँ से कौतूहल-भरी निगाह जख्म पर आ कर पड़ने लगी। उसका अंतर टोकरी में बंद पड़ी जिंदा मछली-सा तड़पने लगा। यहाँ आज़ादी के साथ पूरी तरह दुःख भोग सकने की भी जगह नहीं।

दूसरे दिन जब चिट्ठी का समय निकल गया तो कमरा बंद करके विनोदिनी पत्र लिखने बैठी -

'भाई साहब, डरो मत, मैं तुम्हें प्रेम-पत्र लिखने नहीं बैठी हूँ। तुम मेरे विचारक हो, तुम्हें प्रणाम करती हूँ। मैंने जो पाप किया, तुमने उसकी बड़ी सख्त सजा दी। तुम्हारा हुक्म होते ही मैंने उस सजा को माथे पर रख लिया है। अफसोस इसी बात का है कि तुम देख नहीं सके कि यह सजा कितनी कड़ी है। देख पाते, कहीं जान पाते, तो तुम्हारे मन में जो दया होती, मैं उससे भी वंचित रही। तुम्हें याद करके, मन-ही-मन तुम्हारे पाँवों के पास माथा टेके मैं उसे भी बर्दाश्त करूँगी। लेकिन प्रभु, कैदी को क्या खाना भी नसीब नहीं होता? व्यंजन न सही, जितना-भर न मिलने से काम नहीं चल सकता, उतना भोजन तो उसका बँधा होता है? मेरे इस निर्वासन का आहार है तुम्हारी दो पंक्तियाँ - वह भी न बदा हो तो वह निर्वासन-दंड नहीं, प्राण-दंड है। सजा देने वाले मेरी इतनी बड़ी परीक्षा न लो। मेरे पापी मन में दंभ की हद न थी - स्वप्न में भी मुझे यह पता न था कि किसी के आगे मुझे इस कदर सिर झुकाना पड़ेगा। जीत तुम्हारी हुई प्रभो, मैं बगावत न करूँगी। मगर मुझ पर रहम करो, मुझे जीने दो। इस सूने जंगल में रहने का थोड़ा-बहुत सहारा मुझे दिया करना। फिर तो तुम्हारे शासन से मुझे कोई भी किसी भी हालत में डिगा न सकेगा। यही दुखड़ा रोना था। और जो बातें जी में हैं, कहने को कलेजा मुँह को आता है। पर वे बातें तुम्हें न बताऊँगी, मैंने शपथ ली है। उस शपथ को मैंने पूरा किया।

- तुम्हारी विनोदिनी।'

विनोदिनी ने पत्र डाक में डाल दिया। मुहल्ले के लोग छिः-छिः करने लगे। कमरा बंद किए रहती है, चिट्ठी लिखा करती है, चिट्ठी के लिए डाकिए को जा कर तंग करती है - दो दिन कलकत्ता रहने से क्या लाज-धरम को इस तरह घोल कर पी जाना चाहिए!

उसके बाद के दिन भी चिट्ठी न मिली। विनोदिनी दिन-भर गुमसुम रही।

बिहारी का उसके पास कुछ भी न था - एक पंक्ति की चिट्ठी तक नहीं। कुछ भी नहीं। वह शून्य में मानो कोई चीज खोजती फिरने लगी। बिहारी की किसी निशानी को अपने कलेजे से लगा कर सूखी आँखों में वह आँसू लाना चाहती थी। आँसुओं में मन की सारी कठिनता को गला कर, विद्रोह की भभकती आग को बुझा कर, वह बिहारी के कठोर आदेश को अंतर के कोमलतम प्रेम-सिंहासन पर बिठाना चाहती थी। लेकिन सूखे के दिनों की दोपहरी के आसमान-जैसा उसका कलेजा सिर्फ जलने लगा।

विनोदिनी ने सुन रखा था, हृदय से जिसे पुकारो, उसे आना ही पड़ता है। इसीलिए हाथ बाँधे आँखें मूँद कर वह बिहारी को पुकारने लगी - 'मेरा जीवन सूना पड़ा है, हृदय सूना है, चारों ओर सुनसान है - इस सूनेपन के बीच तुम एक बार आओ। घड़ी-भर को ही सही - तुम्हें आना पड़ेगा। मैं तुम्हें हर्गिज नहीं छोड़ सकती।' हृदय से इस तरह पुकारने से विनोदिनी को मानो सच्चा बल मिला। उसे लगा, प्रेम की पुकार का यह बल बेकार नहीं जाने का।

साँझ का दीप-विहीन अँधेरा कमरा जब बिहारी के ध्यान से घने तौर पर परिपूर्ण हो उठा, जब दीन-दुनिया, गाँव-समाज, समूचा त्रिभुवन प्रलय में खो गया तो अचानक दरवाजे पर थपकी सुन कर विनोदिनी झट-पट जमीन पर से उठ खड़ी हुई और दृढ़ विश्वास के साथ दौड़ कर दरवाजा खोलती हुई बोली - 'प्रभु, आ गए?' उसे पक्का विश्वास था कि इस घड़ी दूसरा कोई उसके दरवाजे पर नहीं आ सकता।

महेंद्र ने कहा - 'हाँ, आ गया विनोद!'

विनोदिनी बेहद खीझ से बोल उठी- 'चले जाओ, चले जाओ, चले जाओ यहाँ से। अभी चल दो तुरंत।'

महेंद्र को मानो काठ मार गया।

'हाँ री बिन्दी, तेरी ददिया सास अगर कल...' कहते-कहते कोई प्रौढ़ा पड़ोसिन विनोदिनी के दरवाजे पर आ कर सहसा 'हाय राम!' कहती हुई लंबा घूँघट काढ़ कर भाग गई।

### 39

टोले में एक हलचल-सी मच गई। देवी थान में इकट्ठे हो कर बड़े-बूढ़ों ने कहा - 'अब तो बर्दाशत के बाहर है। कलकत्ता के कारनामों को अनसुना भी किया जा सकता था - मगर इसकी यह हिम्मत! लगातार महेंद्र को चिट्ठी लिख-लिख कर उसे बुला कर यहाँ ऐसा खुल कर खेलना, यह बेहयाई! ऐसी पापिन को गाँव में नहीं रहने दिया जा सकता।'

विनोदिनी को विश्वास था कि बिहारी का जवाब आज जरूर आएगा। लेकिन न आया। अपने मन में वह कहने लगी - 'बिहारी का मुझ पर अधिकार कैसा! मैं उसका हुक्म मानने क्यों गई? मैंने उसे यह क्यों समझने दिया कि वह जैसा कहेगा, सिर झुका कर मैं वही मान लूँगी। उससे तो मेरा महज उतने ही भर का नाता है, जितना-भर उसकी प्यारी आशा को बचाने की जरूरत है। मेरा अपना कोई पावना नहीं, दावा नहीं, मामूली दो पंक्तियों की चिट्ठी भी नहीं - मैं इतनी तुच्छ हूँ?' डाह के जहर से विनोदिनी का कलेजा भर गया।

काठ की मूरत-जैसी सख्त बनी विनोदिनी जब कमरे में बैठी थी, उसकी ददिया सास दामाद के यहाँ से लौटीं और आते ही उससे बोलीं - 'अरी मुँहजली, यह सब क्या सुन रही हूँ?'

विनोदिनी ने कहा - 'जो सुन रही हो, सब सच है।'

ददिया सास बोलीं - 'तो फिर इस कलंक का बोझा लिए यहाँ आने की क्या पड़ी थी - आई क्यों यहाँ?'

रूँधे क्रोध से विनोदिनी चुप बैठी रही।

वह बोलीं - 'मैं कहे देती हूँ, यहाँ तुम नहीं रह सकतीं। अपनी खोटी तकदीर, सब तो मर ही गए - वह दुःख सह कर भी मैं जिंदा हूँ - तुमने हमारा सिर झुका दिया। तुम तुरंत यहाँ से चली जाओ।'

इतने में बिना नहाया-खाया महेंद्र रूखे-बिखरे बालों से वहाँ आ पहुँचा। तमाम रात जागता रहा था - आँखें लाल-लाल, चेहरा सूखा पड़ा। उसने संकल्प किया था कि मुँह अँधेरे ही आ कर वह विनोदिनी को साथ ले जाने की फिर से कोशिश करेगा। लेकिन पहले दिन विनोदिनी में अभूतपूर्व घृणा देख उसके मन में तरह-तरह की दुविधा होने लगी। धीरे-धीरे जब वेला चढ़ आई, गाड़ी का समय हो आया, तो स्टेशन के मुसाफिरखाने से निकल कर, मन से सारे तर्क-वितर्क दूर करके वह गाड़ी से सीधा विनोदिनी के यहाँ पहुँचा। हया-शर्म छोड़ कर दुस्साहस का काम करने पर आमादा होने से जो एक स्पर्धापूर्ण बल पैदा हो आता है, उसी बल के आवेश में महेंद्र ने एक उद्भ्रांत आनंद का अनुभव किया - उसका सारा अवसाद और दुविधा जाती रही। गाँव के कौतूहल वाले लोग उस उन्मत्त दृष्टि में उसे कागज के निर्जीव पुतले-से लगे। महेंद्र ने किसी तरफ नहीं देखा, सीधा विनोदिनी के पास जा कर बोला - 'विनोद, इस लोक निंदा के खुले मुँह में तुम्हें अकेला छोड़ जाऊँ, ऐसा कायर मैं नहीं हूँ। जैसे भी हो, तुम्हें यहाँ से ले ही जाना पड़ेगा। बाद में तुम मुझे छोड़ देना चाहो, छोड़ देना! मैं कुछ भी न कहूँगा। तुम्हारा बदन छू कर मैं कसम खाता हूँ, तुम जैसा चाहोगी, वही होगा। दया कर सको, तो जीऊँगा और न कर सको, तो तुम्हारी राह से दूर हट जाऊँगा। दुनिया में अविश्वास के काम मैंने बहुतेरे किए हैं। पर आज तुम मुझ पर अविश्वास न करो। अभी हम कयामत के मुँह पर खड़े हैं, यह धोखे का समय नहीं।'

विनोदिनी ने बड़े ही सहज भाव से दृढ़ हो कर कहा - 'मुझे अपने साथ ले चलो। गाड़ी है?'

महेंद्र ने कहा - 'है।'

विनोदिनी की सास ने बाहर आ कर कहा - 'महेंद्र, तुम मुझे नहीं पहचानते, मगर तुम हम लोगों के बिराने नहीं हो। तुम्हारी माँ राजलक्ष्मी हमारे ही गाँव की लड़की है, गाँव के रिश्ते से मैं उसकी मामी होती हूँ। मैं तुमसे पूछती हूँ,

यह तुम्हारा क्या रवैया है! घर में तुम्हारी स्त्री है, माँ है और तुम ऐसे बेहया पागल बने फिरते हो? भले समाज में तुम मुँह कैसे दिखाओगे?"

महेंद्र निरुत्तर हो गया तो बुढ़िया बोली - 'जाना ही हो तो अभी चल दो, तुरंत। मेरे घर के बरामदे पर खड़े न रहो - पल-भर की भी देर न करो। अब।'

कह कर बुढ़िया भीतर गई और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। बे-नहाई, भूखी, गंदे कपड़े पहने विनोदिनी खाली हाथों गाड़ी पर जा सवार हुई। जब महेंद्र भी चढ़ने लगा तो वह बोली - 'नहीं, स्टेशन बहुत करीब है, तुम पैदल चलो।'

महेंद्र ने कहा - 'फिर तो गाँव के सब लोग मुझे देखेंगे।'

विनोदिनी ने कहा - 'अब भी लाज रह गई है क्या?'

और गाड़ी का दरवाजा बंद करके विनोदिनी ने गाड़ीवान से कहा - 'स्टेशन चलो!'

गाड़ीवान ने पूछा - 'बाबू नहीं चलेंगे?'

महेंद्र जरा आगा-पीछा करने के बाद जाने की हिम्मत न कर सका। गाड़ी चल दी। गाँव की गैल छोड़ कर महेंद्र सिर झुकाए खेतों के रास्ते चला।

गाँव की बहुओं का नहाना-खाना हो चुका था। जिन प्रौढ़ाओं को देर से फुरसत मिली, केवल वही अँगोछा और तेल का कटोरा लिए बौराए आम के महमह बगीचे की राह घाट को जा रही थीं।

## 40

महेंद्र कहाँ चला गया, इस आशंका से राजलक्ष्मी ने खाना-सोना छोड़ दिया। संभव-असंभव सभी जगहों में साधुचरण उसे ढूँढ़ता फिरने लगा - ऐसे में विनोदिनी को ले कर महेंद्र कलकत्ता आया। पटलडाँगा के मकान में उसे रख कर वह अपने घर गया।

माँ के कमरे में जा कर देखा, कमरा लगभग अँधेरा है। लालटेन की ओट दी गई है। राजलक्ष्मी मरीज जैसी बिस्तर पर पड़ी है और पायताने बैठी आशा उनके पाँव सहला रही है। इतने दिनों के बाद घर की बहू को सास के पैरों का अधिकार मिला है।

महेंद्र के आते ही आशा चौंकी और कमरे से बाहर चली गई। महेंद्र ने जोर दे कर सारी दुविधा हटा कर कहा - 'माँ, मुझे यहाँ पढ़ने में सुविधा नहीं होती, इसलिए मैंने कॉलेज के पास एक डेरा ले लिया है। वहीं रहूँगा।'

बिस्तर के एक ओर का इशारा करके राजलक्ष्मी ने कहा - 'जरा बैठ जा।'

महेंद्र सकुचाता हुआ बिस्तर पर बैठ गया। बोलीं - 'जहाँ तेरा जी चाहे, तू रह। मगर मेरी बहू को तकलीफ मत देना!'

महेंद्र चुप रहा।

राजलक्ष्मी बोलीं - 'अपना भाग ही खोटा है, तभी मैंने अपनी अच्छी बहू को नहीं पहचाना।' कहते-कहते राजलक्ष्मी का गला भर आया - 'लेकिन इतने दिनों तक समझता, प्यार करके तूने उसे इस तकलीफ में कैसे डाला?'

राजलक्ष्मी से और न रहा गया। रो पड़ीं।

वहाँ से उठ भागे तो जी जाए महेंद्र। लेकिन तुरंत भागते न बना। माँ के बिस्तर के एक किनारे चुपचाप बैठा रहा।

बड़ी देर के बाद राजलक्ष्मी ने पूछा - 'आज रात तो यहीं रहेगा न?'

महेंद्र ने कहा - 'नहीं।'

राजलक्ष्मी ने पूछा - 'कब जाओगे?'

महेंद्र बोला - 'बस अभी।'

तकलीफ से राजलक्ष्मी उठीं। कहा - 'अभी? बहू से एक बार मिलेगा भी नहीं? अरे बेहया, तेरी बेरहमी से मेरा तो कलेजा फट गया।'

कह कर राजलक्ष्मी टूटी डाल-सी बिस्तर पर लेट गई।

महेंद्र उठ कर बाहर निकला। दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़ कर वह अपने ऊपर के कमरे की ओर चला। वह चाहता नहीं था कि आशा से भेंट हो।

ऊपर पहुँचते ही उसकी नजर पड़ी, कमरे के सामने सायबान वाले बरामदे में आशा जमीन पर ही पड़ी थी। उसने महेंद्र के पैरों की आहत नहीं सुनी थी, अचानक उसे सामने देख कपड़े संभाल कर उठ बैठी। इस समय कहीं एक बार भी महेंद्र ने चुन्नी कह कर पुकारा होता, तो वह महेंद्र के सारे अपराधों को अपने सिर ले कर माफ की गई अपराधिनी की तरह उसके दोनों पैर पकड़ कर जीवन-भर का रोना रो लेती। लेकिन महेंद्र वह नाम ले कर न पुकार सका है।

आशा संकोची बैठी रही। महेंद्र ने भी कुछ न कहा। चुपचाप छत पर टहलने लगा। चाँद अभी तक उगा न था। छत के एक कोने में छोटे-से गमले के अंदर रजनीगंधा के दो डंठलों में दो फूल खिले थे। छत पर के आसमान के वे नखत, वह सतभैया, वह काल-पुरुष, उनके जाने कितनी संध्या के एकांत प्रेमाभिनय के मौन गवाह थे - आज वे सब टुकुर-टुकुर ताकते रहे।

महेंद्र सोचने लगा - इधर के इन कई दिनों की इस विप्लव-कथा को इस आसमान के अँधेरे से पोंछ कर ठीक पहले की तरह अगर खुली छत पर चटाई डाले आशा की बगल में उसी सदा की जगह में सहज ही बैठ पाता! कोई सवाल नहीं, कोई जवाबदेही नहीं; वही विश्वास, वही प्रेम, वही सहज आनंद! लेकिन हाय, यहाँ उतनी-सी जगह को फिर लौटने की गुंजाइश नहीं। छत की चटाई पर आशा के पास की जगह का वह हिस्सा महेंद्र ने खो दिया है। अब तक विनोदिनी का महेंद्र से एक स्वाधीन संबंध था, प्यार करने का पागल सुख था, लेकिन अटूट बंधन नहीं था। अब



वह विनोदिनी को खुद समाज से छीन कर ले आया है, अब उसे कहीं भी रख आने की, कहीं भी लौटा आने की जगह नहीं रही - महेंद्र ही अब उसका एकमात्र अवलंब है। अब इच्छा हो या न हो, विनोदिनी का सारा भार उसे उठाना ही पड़ेगा।

लंबी उसाँस ले कर महेंद्र ने एक बार आशा की ओर देखा। मौन रुलाई से अपनी छाती भरे आशा तब भी उसी तरह बैठी थी - रात के अँधेरे ने माँ के दामन की तरह उसकी लाज और वेदना लपेट रखी थी।

न जाने क्या कहने के लिए महेंद्र अचानक आशा के पास आ कर खड़ा हुआ। सर्वांग की नसों का लहू आशा के कान में सिमटकर चीखने लगा - उसने आँखें मूंद लीं। महेंद्र सोच नहीं पाया कि वह आखिर क्या कहने आया था - कहने को उस पर है भी क्या? लेकिन, बिना कुछ कहे अब लौट भी न सका। पूछा - 'कुंजियों का झब्बा कहाँ है?'

कुंजियों का झब्बा बिस्तर के नीचे था। आशा उठ कर कमरे में चली गई। महेंद्र उसके पीछे-पीछे गया। बिस्तर के नीचे से कुंजियाँ निकाल कर आशा ने बिस्तर पर रख दीं। झब्बे को ले कर महेंद्र अपने कपड़ों की अलमारी में एक-एक कुंजी लगा कर देखने लगा। आशा रह न सकी। बोल पड़ी - 'उस अलमारी की कुंजी मेरे पास न थी।'

कुंजी किसके पास थी, यह बात उसकी जबान से न निकल सकी, लेकिन महेंद्र ने समझा। आशा जल्दी-जल्दी कमरे के बाहर निगल गई; उसे डर लगा, कहीं महेंद्र के पास ही उसकी रुलाई न छूट पड़े। अंधेरी छत की दीवार के एक कोने की तरफ मुँह फेर कर खड़ी-खड़ी उफनती हुई वह रुलाई दबा कर रोने लगी।

लेकिन रोने का ज्यादा समय न था। एकाएक उसे याद आ गया, महेंद्र के खाने का समय हो गया। तेजी से वह नीचे उतर गई।

राजलक्ष्मी ने आशा से पूछा - 'महेंद्र कहाँ है, बहू?'

आशा ने कहा - 'ऊपर।'

राजलक्ष्मी - 'और तुम उतर आई?'

आशा ने सिर झुका कर कहा - 'उनका खाना...'

राजलक्ष्मी - 'खाने का इंतजाम मैं कर रही हूँ - तुम जरा हाथ-मुँह धो लो और अपनी वह ढाका वाली साड़ी पहन कर मेरे पास आओ - मैं तुम्हारे बाल सँवार दूँ।'

सास के लाड़ को टालना भी मुश्किल था, लेकिन साज-शृंगार के इस प्रस्ताव से वह शर्मा गई। मौत की इच्छा करके भीष्म जैसे चुपचाप तीरों की वर्षा झेल गए थे, उसी प्रकार आशा ने भी बड़े धीरज से सास का सारा साज सिंगार स्वीकार कर लिया। बन-सँवर कर धीमे-धीमे वह ऊपर गई। झाँक कर देखा, महेंद्र छत पर नहीं था। कमरे के दरवाजे से देखा, वह कमरे में भी न था - खाना यों ही पड़ा था।

कुंजी नहीं मिली, सो अलमारी तोड़ कर महेंद्र ने कुछ जरूरी कपड़े और काम की किताबें निकाल लीं और चला गया।

अगले दिन एकादशी थी। नासाज और भारी-भारी-सी राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी थीं। बाहर घटाएँ घिरी थीं। आंधी-पानी के आसार। आशा धीरे-धीरे कमरे में गई। धीरे से उनके पैरों के पास बैठ कर बोली - 'तुम्हारे लिए दूध और फल ले आई हूँ माँ, चलो, खा लो!'

करुणा-मूर्ति बहू की सेवा की चेष्टा, जिसकी वह आदी न थी, देख कर राजलक्ष्मी की सूखी आँखें उमड़ आईं। वह उठ बैठी। आशा ने अपनी गोद में खींच कर उसके गीले गाल चूमने लगीं। पूछा - 'महेंद्र कर क्या रहा है, बहू!'

आशा लजा गई। धीमे से कहा - 'वे चले गए।'

राजलक्ष्मी - 'चला गया? मुझे तो पता भी न चला।'

आशा बोली - 'वे कल रात ही चले गए।'

सुनते ही राजलक्ष्मी की कोमलता मानो काफूर हो गई; बहू के प्रति उनके स्नेह-स्पर्श में रस का नाम न रह गया। आशा ने एक मौन लांछन का अनुभव किया और सिर झुकाए चली गई।

## 41

रात को जब उसे पटलडाँगा के डेरे पर छोड़ कर महेंद्र अपने कपड़े और किताबें लाने घर चला गया, तो कलकत्ता के अविश्राम जन-स्रोत की हलचल में अकेली बैठी विनोदिनी अपनी बात सोचने लगी। दुनिया में पनाह की जगह काफी तो उसे कभी भी न थी, इतनी जरूर थी कि अगर एक ओर गरम हो जाए, तो दूसरी तरफ करवट बदल कर सो सके। आज लेकिन निर्भर करने की जगह निहायत सँकरी हो गई थी। जिस नाव पर सवार हो कर वह प्रवाह में बह चली है, उसके दाएँ-बाएँ किसी भी तरफ जरा झुक जाने से पानी में गिर पड़ने की नौबत। लिहाजा बड़ी सावधानी से पतवार पकड़नी थी - जरा-सी चूक, जरा-सा हिलना-डुलना भी मुहाल। ऐसी हालत में भला किस औरत का कलेजा नहीं काँपता। पराए मन को मुट्ठी में रखने के लिए जिस चुहल की जरूरत है, जितनी ओट चाहिए, इस सँकरेपन में उसकी गुंजाइश कहाँ! महेंद्र के एकबारगी आमने-सामने रह कर सारी जिंदगी बितानी पड़ेगी। फर्क इतना ही है कि महेंद्र के किनारे लगने की गुंजाइश है, विनोदिनी के लिए वह भी नहीं।

अपनी इस असहाय अवस्था को वह जितना ही समझने लगी, उतना ही उसे बल मिलने लगा। कोई-न-कोई उपाय करना ही पड़ेगा, ऐसे काम नहीं चलने का।

बिहारी को प्रेम-निवेदित करने के दिन से ही विनोदिनी के धीरज का बाँध टूट गया था। अपने जिस उमगे हुए चुंबन को वह उसके पास लौटा कर ले आई, संसार में और किसी के पास उसे उतार कर नहीं रख सकती। पूजा के चढ़ावे की तरह देवता के लिए उसे रात-दिन ढोने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। उसका मन कभी हथियार डाल देना नहीं जानता, निराशा वह नहीं मानती। उसका मन बार-बार उससे कह रहा था - 'यह पूजा बिहारी को कबूल करनी ही पड़ेगी।'

उसके इस अदम्य प्रेम से उसकी आत्म-रक्षा की आकांक्षा आ कर मिल गई। बिहारी के सिवाय उसके पास और कोई चारा नहीं। महेंद्र को उसने अच्छी तरह समझ लिया था। उस पर टिकना चाहो तो वह भार नहीं सह सकता -

छोड़ने पर ही उसे पाया जा सकता है - पकड़ना चाहो कि भाग खड़ा होना चाहता है। लेकिन औरत के लिए जिस एक निश्चित, विश्वासी सहारे की नितांत आवश्यकता है, वह सहारा बिहारी ही दे सकता है। अब बिहारी को छोड़ने से उसका काम हर्गिज नहीं चल सकता।

यह सोच कर उसने खिड़की खोली और गैस की रोशनी से दमकते शहर की ओर देखने लगी, बिहारी अभी साँझ को इस शहर में ही है, यहाँ से एकाध रास्ते, दो-चार गलियाँ पार करके अभी-अभी उसके दरवाजे पर मजे में पहुँचा जा सकता है। द्वार के बाद ही नल वाला छोटा-सा अँगना, वही सीढ़ी, वही सजा-सजाया कमरा - सन्नाटे में बिहारी आराम-कुर्सी पर अकेला बैठा - शायद सामने खड़ा ब्राह्मण का वह लड़का, गोल-मटोल, गोरा-गोरा सुंदर-सा वह लड़का नजर गड़ाये तस्वीरों वाली किसी किताब के पन्ने पलट रहा हो - एकाएक सारे चित्र को सुधि में ला कर स्नेह से, प्रेम से विनोदिनी का सर्वांग पुलकित हो उठा। जी चाहे तो अभी वहाँ पहुँच जाया जा सकता है। यह सोच कर विनोदिनी इस इच्छा को छाती से लगाए खेलने लगी। पहले की बात होती, तो शायद वह अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए लपक पड़ती, लेकिन अब आगे-पीछे बहुत सोचना पड़ता है। अब तो महज वासना पूरी करने का सवाल नहीं रहा, उद्देश्य की पूर्ति करनी है। विनोदिनी सोचने लगी - 'पहले यह देखूँ कि बिहारी जवाब क्या देता है, उसके बाद तय करूँगी कि किस रास्ते जाना है।' कुछ समझे बिना बिहारी को तंग करने के लिए जाने की हिम्मत न पड़ी।

इसी तरह सोचते-विचारते जब रात के नौ बज गए तो महेंद्र लौट कर आ गया। ये कई दिन उसे भूखे-प्यासे, बदपरहेजी और उत्तेजना में कटे। आज कामयाब हो कर विनोदिनी को वह अपने डेरे में ले आया; इसीलिए थकावट से मानो चूर-चूर हो गया। दुनिया से, अपने मन की हालत से लड़ने लायक बल उसमें नहीं रह गया था। भारों से लदे उसके भावी जीवन की थकावट ने मानो पहले से ही उसे दबोच लिया।

बाहर से दरवाजे के कड़े खटखटाने में महेंद्र को बड़ी शर्म लगने लगी। जिस पागलपन में दुनिया का कोई खयाल ही न किया, वह पागलपन कहाँ! रास्ते के अचीन्हे-अजाने लोगों की नजर के सामने भी उसका सर्वांग सकुचा क्यों रहा है?

अंदर नया नौकर सो गया था। दरवाजा खुलवाने के लिए बड़ा हंगामा करना पड़ा। अपरिचित नए डेरे के अँधेरे में पहुँचाने पर महेंद्र का मन ढीला पड़ ही गया। माँ का लाड़ला महेंद्र जिन विलास-उपकरणों - पंखे, कुर्सी, सोफे - का आदी रहा है, उसका अभाव यहाँ साफ दिख गया। इन कमी-खामियों को मिटाना ही पड़ेगा। डेरे के सारे इंतजाम का भार उसी पर था। महेंद्र ने आज तक कभी अपने या किसी के आराम के फिक्र नहीं की - आज से उसे एक नए और अधूरे संसार का तीली-तीली भार उठाना। सीढ़ी पर एक ढिबरी धुआँ उगलती हुई टिमटिमा रही थी; वहाँ के लिए एक लैंप लाना पड़ेगा। बरामदे से सीढ़ी को जाने वाला रास्ता नल के पानी से चिपचिपाता रहता, मिस्त्री बुला कर सीमेंट से उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। सड़क की तरफ के दो कमरे जूतों की दुकान वालों के जिम्मे थे, उन्होंने अभी तक उन्हें खाली नहीं किया - मकान-मालिक से इसके लिए लड़ेगा। सारा काम खुद ही करना पड़ेगा - लम्हे-भर में यह बात दिमाग में आई और उसकी थकावट के भार पर और भी बोझ लद गया।

सीढ़ी पर कुछ देर खड़े रह कर महेंद्र ने अपने को सँभाल लिया - विनोदिनी के प्रति जो प्रेम था, उसे उभारा। अपने-आपको समझाया कि आज तक सारी दुनिया को भूल कर उसने जो चाहा था, वह मिल गया - दोनों के बीच अब

अड़चन की कोई दीवार नहीं - आज तो महेंद्र की खुशी का दिन है। कोई अड़चन नहीं थी - लेकिन सबसे बड़ी अड़चन यही थी- आज वह आप ही अपनी बाधा था।

रास्ते में महेंद्र को देख कर विनोदिनी ध्यान के आसन से उठी। कमरे में रोशनी जलाई। सिलाई का काम ले कर नजर झुकाए बैठ गई। सिलाई उसकी एक ओट थी। उसकी आड़ में मानो उसका एक आश्रय था।

कमरे में आ कर महेंद्र बोला - 'यहाँ, जरूर तुम्हें बड़ी असुविधा हो रही है, विनोद!'

अपनी सिलाई में लगी-लगी बोली - 'बिल्कुल नहीं।'

महेंद्र बोला - 'दो ही तीन दिनों में मैं सारा सामान ले आऊँगा। कुछ दिन तुम्हें थोड़ी तकलीफ होगी।'

विनोदिनी बोली - 'नहीं, वह न होगा - तुम अब एक भी सामान और न लाओ - जो है, वही मेरी जरूरत से कहीं ज्यादा है।'

महेंद्र ने कहा - 'मैं अभागा भी क्या उससे कहीं ज्यादा मैं हूँ?'

विनोदिनी - 'अपने को उतना ज्यादा लगाना ठीक नहीं, कुछ विनय रहनी चाहिए।'

दीये की जोत में सूने कमरे में सिर झुकाए विनोदिनी की उस आत्म-तल्लीन मूर्ति को देख कर महेंद्र के मन में फिर उसी मोह का संचार हुआ।

घर में होता तो दौड़ कर विनोदिनी के पैरों में गिर पड़ता - मगर यह घर तो था नहीं, इसलिए वैसा न कर सका। आज विनोदिनी बड़ी बेचारी थी, बिल्कुल महेंद्र की मुट्ठी में- आज अपने को संयत न रखे तो बड़ी कायरता होगी।

विनोदिनी ने कहा - 'अपने किताब-कपड़े यहाँ क्यों ले आए?'

महेंद्र ने कहा - 'उन्हें मैं अपने लिए जरूरी सामान मानता हूँ- वे कहीं ज्यादा वाले वर्ग में नहीं हैं...'

विनोदिनी - 'मालूम है, मगर यहाँ क्यों?'

महेंद्र - 'ठीक है, आवश्यक चीजें यहाँ नहीं सोहतीं - विनोद, इन किताबों-विताबों को उठा कर रास्ते पर फेंक देना, मैं चूँ भी न करूँगा - केवल उनके साथ मुझे भी मत उठा फेंकना।'

इतना कह कर महेंद्र थोड़ा खिसक आया और कपड़ों में बँधी किताबों की गाँठ को विनोदिनी के पैरों के पास रख दिया।

उसी गंभीर भाव से सिलाई करती हुई विनोदिनी बोली - 'भाई साहब, तुम यहाँ नहीं रहोगे।'

अपने उठते हुए आग्रह पर चोट पा कर महेंद्र व्याकुल हो उठा। गदगद स्वर में बोला - 'क्यों, तुम मुझे दूर क्यों रखना चाहती हो? तुम्हारे लिए सब-कुछ छोड़ने का यही पुरस्कार है?'

विनोदिनी - 'अपने लिए मैं तुम्हें सब-कुछ न छोड़ने दूँगी।'

महेंद्र कह उठा- 'अब वह तुम्हारे हाथ की बात नहीं - सारी दुनिया मेरी चारों तरफ से खिसक पड़ी है - बस, एक तुम हो - तुम विनोद...'

कहते-कहते विहवल हो कर महेंद्र लौट पड़ा और विनोदिनी के पैरों को पकड़ कर उन्हें बार-बार चूमने लगा।

पाँव छुड़ा कर विनोदिनी उठ खड़ी हुई। बोली - 'याद नहीं, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी?'

सारी शक्ति लगा कर महेंद्र ने अपने को जब्त किया। कहा - 'याद है मैंने शपथ ली थी कि तुम जो चाहोगी वही होगा, मैं कभी कोई एतराज न करूँगा। उस शपथ को मैं रखूँगा। बताओ, मुझे क्या करना है?'

विनोदिनी - 'तुम अपने घर पर रहोगे।'

महेंद्र - 'एक मैं ही क्या तुम्हारी अनिच्छा की वस्तु हूँ, विनोद! अगर यही बात है तो तुम मुझे खींच क्यों लाई? जो तुम्हारे भोग की चीज न थी, उसके शिकार की क्या जरूरत पड़ी थी? सच-सच बताओ, मैंने स्वेच्छा से तुम्हें पकड़ लिया या तुमने जान कर मुझे पकड़ा? मुझसे तुम इस तरह खिलवाड़ करोगी और यह भी मुझे सहना पड़ेगा? फिर भी अपनी शपथ मैं रखूँगा, जिस घर को मैं लात मार कर आया, वहीं जा कर रहूँगा।'

विनोदिनी जमीन पर बैठी फिर से सिलाई में जुट गई।

कुछ देर तक उसके मुँह की ओर एकटक देख कर महेंद्र बोल उठा - 'बेरहम! निर्दयी हो तुम, विनोद! मैं बड़ा ही अभाग हूँ कि मैंने तुम्हें प्यार किया।'

विनोदिनी से सिलाई में कोई गलती हो गई। रोशनी के पास बड़ी मेहनत से वह धागे को खोजने लगी। महेंद्र के जी में आ रहा था कि विनोदिनी के संगदिल को अपनी मुट्ठी में ले कर पीस डाले। उसकी इस मौन निर्दयता और अडिग उपेक्षा को धक्का दे कर बाहु-बल से शिकस्त देने को जी चाह रहा था।

महेंद्र बाहर निकला और फिर-फिर लौट आया। बोला - 'मैं न रहूँगा तो यह तुम्हारी हिफाजत कौन करेगा?'

विनोदिनी - 'उसकी तो तुम फिक्र ही न करो। बुआ ने उस छमिया नौकरानी को जवाब दे दिया है। आज से वह यहीं रहेगी। अंदर से घर बंद करके हम दोनों मजे में यहाँ रह लेंगी।'

भीतर-भीतर उस पर जितना ही गुस्सा आने लगा, विनोदिनी के लिए उसका उतना ही जबरदस्त खिंचाव होने लगा। उस टस से मस न होने वाली मूरत को वज्र की ताकत से छाती से चिपका कर चूर-चूर कर देने की इच्छा होने लगी। अपनी उस प्रबल इच्छा के हाथों से छुटकारा पाने के लिए महेंद्र दौड़ कर कमरे से बाहर चला गया।

रास्ते से जाते हुए महेंद्र प्रतिज्ञा करने लगा, उपेक्षा के बदले में वह विनोदिनी की उपेक्षा ही करेगा। संसार में महेंद्र के सिवाय अब विनोदिनी का और कोई सहारा नहीं, ऐसी हालत में भी इस निडरता और अडिगता से उसे ठुकराना - किसी मर्द के नसीब में ऐसा भी अपमान कभी हुआ है। महेंद्र का गर्व चूर-चूर हो कर भी मटियामेट न हुआ - पीड़ित और दलित होता रहा। वह सोचने लगा - 'ऐसा नाचीज हूँ मैं! मेरे लिए ऐसी स्पर्धा उसके मन में कैसे आई? मेरे सिवाय इस समय उसका और है कौन?'

सोचते-सोचते अचानक याद आ गया - 'बिहारी'। सहसा उसके कलेजे का रक्त-प्रवाह थम गया। बिहारी को ही उसने अपना भरोसा माना है - मैं तो उपलक्ष्य-मात्र हूँ, उसकी सीढ़ी हूँ, पैर रखने की, कदम-कदम पर ठोकर मारने की जगह। इसी साहस पर मेरी ऐसी अवज्ञा।

महेंद्र को शंका हुई कि विनोदिनी से बिहारी की चिट्ठी-पत्री चलती होगी और इसे कोई भरोसा मिला होगा।

सोचा और उसी दम वह बिहारी के घर की ओर चल पड़ा। जब उसके घर पहुँचा, तो रात नहीं के बराबर बाकी रह गई थी। बड़ी मुश्किल से दरवाजा पीटते-पीटते बैरे ने दरवाजा खोल कर बताया - 'बाबूजी घर पर नहीं हैं।'

महेंद्र चौंक उठा। सोचा, 'मैं इधर नासमझ की तरह मारा-मारा फिर रहा हूँ और इस मौके का फायदा उठा कर बिहारी विनोदिनी के पास गया है। इसीलिए उसने इस बेरहमी से मेरा अपमान किया और मैं भी मार कर भगाए गए गदहे की तरह भाग आया।'

महेंद्र ने उस जाने-पहचाने पुराने बैरे से पूछा - 'भज्जो, मालिक तुम्हारे घर से किस वक्त निकले हैं?'

भज्जो ने कहा - 'जी, चार-पाँच दिन हो गए। पछाँह की ओर कहीं घूमने गए हैं।'

महेंद्र की मानो जान में जान आई। जी में आया, 'अब आराम से थोड़ी देर सो लूँ। तमाम रात भटकते रहने की अब हिम्मत नहीं है।'

वह ऊपर गया और बिहारी के कमरे में सोफे पर सो गया।

जिस रात महेंद्र ने बिहारी के घर जा कर ऊधम मचाया, उसके दूसरे ही दिन बिना कुछ तय किए बिहारी न जाने कहाँ चला गया। उसने सोचा, 'यहाँ रहने से जाने कब अपने दोस्त से ऐसा घिनौना संघर्ष हो जाए कि जन्म-भर पछताना पड़े।'

दूसरे दिन महेंद्र जगा तो ग्यारह बज चुके थे। उठते ही उसकी निगाह सामने की तिपाई पर पड़ी। देखा, बिहारी का एक पत्र पड़ा था। ठिकाने के हरफ विनोदिनी के थे। लिफाफा पत्थर के पेपर-वेट से दबा था। महेंद्र ने झपट कर उसे उठा लिया। लिफाफा खोला नहीं गया था। प्रवासी बिहारी के इंतजार में बंद पड़ा था। काँपते हाथों से महेंद्र ने उसे फाड़ डाला और पढ़ने लगा। यही चिट्ठी विनोदिनी ने अपने गाँव से बिहारी को भेजी थी, जिसका उसे कोई जबाव नहीं मिला था।

चिट्ठी का एक-एक अक्षर महेंद्र को काटने लगा। छुटपन से सदा ही बिहारी महेंद्र की ही ओट में पड़ा था। प्रेम-स्नेह के नाते महेंद्र देवता के गले की उतरी माला ही उसे नसीब हुआ करती। आज महेंद्र स्वयं प्रार्थी तथा बिहारी-विमुख था, फिर भी विनोदिनी ने महेंद्र को ठुकरा कर बिहारी को अपनाया। विनोदिनी की चिट्ठियाँ महेंद्र को भी दो-चार मिली थीं, मगर इसके मुकाबले वे निरी नकली हैं, नासमझ को फुसलाने का बहाना!

अपना नया ठिकाना बताने के लिए महेंद्र को गाँव के डाकखाने में भेजने की व्याकुलता महेंद्र को याद आई और अब उसका कारण उसकी समझ में आया। विनोदिनी बिहारी के पत्र का बेसब्री से इंतजार कर रही है।

जैसा कि पहले किया करता था, मालिक की गैरहाजिरी में भज्जो ने महेन्द्र को बाजार से ला कर चाय-नाश्ता दिया। नहाना महेन्द्र भूल गया। तभी जैसे रेत पर राही जल्दी-जल्दी कदम उठा कर चलता है, उसी तरह विनोदिनी की जलाने वाली चिट्ठी पर वह तेजी से नजर दौड़ाने लगा। वह प्रतिज्ञा करने लगा कि विनोदिनी से अब हर्गिज भेंट न करूँगा। फिर मन में आया, 'और दो-एक दिन में जब उसे बिहारी का जवाब न मिलेगा, तो वह बिहारी के यहाँ आएगी और तब सारा हाल जान कर उसे तसल्ली होगी।' यह संभावना महेन्द्र के लिए असह्य हो गई।

आखिर उस पत्र को अपनी जेब में डाल कर वह पटलडाँगा पहुँचा। महेन्द्र की यह गत देख कर विनोदिनी को दया आ गई। वह समझ गई - हो न हो तमाम रात वह रास्ते के ही चक्कर काटता रह गया है। पूछा - 'रात घर नहीं गए?'

महेन्द्र ने कहा - 'नहीं।'

विनोदिनी ने परेशान हो कर पूछा - 'अभी तक खाया-पिया भी नहीं क्या?' कह कर सेवा-परायणा विनोदिनी ने उसके खाने का इंतजाम करना चाहा।

महेन्द्र बोला - 'रहने दो, मैं खा चुका हूँ।'

विनोदिनी - 'कहाँ खाया?'

महेन्द्र - 'बिहारी के यहाँ।'

पल भर के लिए विनोदिनी का चेहरा पीला पड़ गया। जरा देर चुप रह कर उसने अपने को सँभाला और पूछा - 'बिहारी बाबू कुशल से तो हैं न?'

महेन्द्र बोला - 'कुशल से ही है। वह तो पछाँह चला गया।' महेन्द्र ने कुछ इस लहजे से कहा मानो बिहारी आज ही गया है।

विनोदिनी का चेहरा फिर एक बार पीला पड़ गया। फिर अपने को सँभाल कर बोली - 'ऐसा डाँवाडोल आदमी तो मैंने नहीं देखा। उन्हें हम लोगों का सारा हाल मालूम पड़ गया है? खूब नाराज हो गए हैं क्या?'

महेन्द्र - 'नाराज न हुआ होता तो इस शिद्धत की गर्मी में भी कोई भला आदमी पछाँह घूमने जाता है!'

विनोदिनी - 'मेरे बारे में कुछ कहा?'

महेन्द्र - 'कहने को क्या है। यह उसकी चिट्ठी लो!'

चिट्ठी उसके हाथ में दे कर महेन्द्र तीखी नजर से उसके मुँह के भाव पर गौर करने लगा।

विनोदिनी ने झट से चिट्ठी ले कर देखी, खुली थी वह। लिफाफे पर उसी के हरफ में बिहारी का नाम लिखा था। अंदर से चिट्ठी निकाली। वह उसी की लिखी वही चिट्ठी थी। उलट कर देखा, बिहारी का जवाब तो कहीं न मिला।

थोड़ी देर चुप रह कर विनोदिनी ने पूछा - 'यह चिट्ठी तुमने पढ़ी है?'

विनोदिनी के चेहरे के भाव से महेंद्र को डर लगा। वह झूठ बोल गया - 'नहीं।'

विनोदिनी ने चिट्ठी फाड़ डाली। उसके टुकड़े-टुकड़े किए और खिड़की से बाहर फेंक दिए।

महेंद्र बोला - 'मैं घर जा रहा हूँ।'

विनोदिनी ने कोई जवाब न दिया।

महेंद्र - 'तुमने जैसा चाहा है, मैं वैसा ही करूँगा। सात दिन मैं वहीं रहूँगा। कॉलेज आते समय रोज नौकरानी की मार्फत यहाँ का सारा प्रबंध कर जाया करूँगा। तुमसे भेंट करके तुम्हें आजिज न करूँगा।'

विनोदिनी महेंद्र की कोई बात सुन भी पाई या नहीं, कौन जाने, मगर उसने कोई जवाब न दिया। खुली खिड़की से बाहर अँधेरे आसमान को ताकती रही।

अपनी चीजें उठा कर महेंद्र वहाँ से निकल पड़ा।

सूने कमरे में विनोदिनी बड़ी देर तक काठ की मारी-सी बैठी रही और अंत में मानो जी-जान से अपने को सजग करने के लिए छाती का कपड़ा फाड़ कर अपने पर बेरहमी से चोट करने लगी।

आवाज पा कर नौकरानी दौड़ी आई - 'दादी जी, क्या कर रही हैं?'

'तू चली जा यहाँ से'- डपट कर विनोदिनी ने छमिया को कमरे से बाहर निकाल दिया। उसके बाद जोरों से किवाड़ बंद करके दोनों हाथों से मुट्ठी बाँध कर जमीन पर लोट गई - तीर खाए जानवर जैसी रौने लगी। अपने को इस तरह विक्षत और श्रांत बना कर विनोदिनी रात-भर खिड़की के पास नीचे पड़ी रही।

सुबह जैसे ही सूरज की किरणें कमरे में आईं, विनोदिनी को अचानक ऐसा लगा, बिहारी गया नहीं होगा, कहीं उसे चकमा देने के लिए महेंद्र ने यों ही झूठ कह दिया हो। उसने छमिया को बुला कर कहा - 'छम्मी, तू फौरन जरा बिहारी भाई साहब के यहाँ जा उन लोगों का हाल पूछ आ।'

छमिया कोई घंटे-भर बाद लौट कर बोली - 'उनके घर के सारे खिड़की-दरवाजे बंद हैं। दरवाजा पीटने पर अंदर से बैरा निकला। बोला - 'वे घर पर नहीं हैं। वे घूमने के लिए पछाँह गए हैं।'

विनोदिनी के संदेह का कोई कारण ही न रहा।

## 42

'महेंद्र रात में ही उठ कर चला गया,' यह सुन कर राजलक्ष्मी बहू पर बहुत नाराज हुईं। उन्होंने समझा बहू की लानत-मलामत से ही वह चला गया। उन्होंने आशा से पूछा - 'महेंद्र रात चला क्यों गया?'

आशा ने सिर झुका कर कहा - 'मालूम नहीं, माँ!'



राजलक्ष्मी को लगा, यह भी रूठने की बात है। आजिजी से कहा - 'तुम्हें नहीं मालूम तो किसे मालूम होगा? कुछ कहा था उससे?'

आशा ने सिर्फ 'नहीं' कहा।

राजलक्ष्मी को यकीन न आया। ऐसा भी हो सकता है भला। पूछा - 'कल वह गया कब?'

सकुचाकर आशा बोली - 'नहीं जानती।'

राजलक्ष्मी ने जोर दे कर यह भी कह दिया कि आशा के आचरण और स्वभाव की वजह से महेंद्र घर से निकल गया। सिर झुका कर यह फटकार झेलती हुई आशा अपने कमरे में जा कर रोने लगी। अपने मन में सोचने लगी, 'पता नहीं क्यों कभी मेरे स्वामी ने मुझे प्यार किया था और यह भी नहीं जानती कि उसका वह प्यार मैं फिर कैसे पा सकूँगी। जो प्यार करता है, उसे कैसे खुश करना चाहिए, हृदय आप ही यह बता देता है, लेकिन जो प्यार नहीं करता, उसके हृदय को कैसे पाया जा सकता है, आशा यह क्या जाने। जो आदमी किसी और को प्यार करता है, उससे सुहाग पाने-जैसी शर्मनाक कोशिश वह कैसे करे?'

शाम को परिवार के ज्योतिषी जी और उनकी बहन आई। बेटे की ग्रहशांति के लिए राजलक्ष्मी ने उन्हें बुलवाया था। बहू की जन्म-कुंडली और हाथ देखने का राजलक्ष्मी ने उनसे अनुरोध किया, और इसके लिए आशा को वहाँ बुलवाया गया। दूसरों के आगे अपनी बदनसीबी की चर्चा के संकोच से कुंठित हो कर आशा किस तरह से अपना हाथ निकाल कर बैठी कि इतने में अपने कमरे के पास वाले अँधेरे बरामदे में राजलक्ष्मी को जूतों की हल्की-सी आहट सुनाई दी - कोई जैसे दबे पाँव जा रहा हो। राजलक्ष्मी ने पूछा - 'कौन?'

पहले तो कोई जवाब न मिला। फिर आवाज दी- 'कौन है?' इस पर महेंद्र चुपचाप कमरे में आया।

आशा खुश तो क्या होती, महेंद्र की लज्जा देख कर लज्जा से उसका हृदय भर गया। अब महेंद्र को अपने घर में ही चोर की तरह आना पड़ा है। ज्योतिषी जी और उनकी बहन के रहने से उसे और भी शर्म आई। दुनिया-भर के सामने अपने स्वामी के लिए लाज ही आशा को दुःख से बड़ी हो उठी थी। और अब राजलक्ष्मी ने धीमे से कहा - 'बहू, पार्वती से कह दो, महेंद्र का खाना लगा दो,' तो आशा बोली - 'न, मैं ही ले आती हूँ।'

घर की दास-दासियों से भी वह महेंद्र को ढँके रखना चाहती।

इधर ज्योतिषी जी और उनकी बहन को देख कर महेंद्र मन-ही-मन बड़ा नाराज हुआ। उसकी माँ और स्त्री जंतर-मंतर से उसे वश में लाने के लिए इन अशिक्षित मूर्खों के साथ बेहयाई से साजिश कर रही हैं, यह महेंद्र को सहन नहीं हुआ। इस पर जब ज्योतिषीजी की बहन ने जरूरत से ज्यादा शहद-सने स्वर में पूछा - 'कुशल तो है, बेटे!' तो उससे वहाँ बैठा न गया। उनके कुशल-प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही बोला - 'माँ, मैं जरा ऊपर चलता हूँ।'

माँ ने समझा, महेंद्र शायद एकांत में बहू से बात करना चाहता है। बेहद खुश हो कर खुद रसोई में गई। जा कर आशा से कहा - 'जाओ, जल्दी से ऊपर जाओ, महेंद्र को शायद कुछ काम है।'

आशा धड़कते हृदय और सकुचाते कदमों से ऊपर गई। सास के कहने से उसने यह समझा कि महेंद्र ने शायद उसे बुलाया है। लेकिन अचानक ही उससे कमरे में जाते न बना, वह पहले अँधेरे दरवाजे की आड़ से महेंद्र को देखने लगी।

महेंद्र बड़े ही सूने मन से फर्श के बिस्तर पर तकिए के सहारे लेटा-लेटा छत के शहतीर गिन रहा था। वही महेंद्र तो था। सारा कुछ वही मगर कितना परिवर्तन!

आशा अँधेरे में खड़ी-खड़ी जितना ही महेंद्र को देखने लगी, उतना ही उसके मन में होने लगा कि महेंद्र अभी-अभी उसी विनोदिनी के यहाँ से आया है, उसके अंगों में उसी विनोदिनी का स्पर्श है, आँखों में उसी की मूरत, कानों में उसी विनोदिनी की आवाज, मन में उसी विनोदिनी की वासना घुली-मिली है। आशा इस महेंद्र को अपनी पवित्र भक्ति कैसे दे, कैसे एक मन से कहे कि आओ, मेरे हृदय में विराजो।

विनोदिनी का महेंद्र मानो आशा के लिए पराया पुरुष हो। इतने में छत के लोहे-लकड़ से महेंद्र की अनमनी नजर सामने की दीवार की तरफ उतरी। उसकी नजर का अनुसरण करते हुए आशा ने देखा, दीवार पर महेंद्र की तस्वीर के पास ही आशा का एक फोटो लटक रहा है। उसके जी में आया, दामन से उसे ढँक दे। अभ्यासवश क्यों वह आज तक उसकी नजर में न आया, क्यों अब तक उसने उतार नहीं फेंका, यही सोच कर वह अपने को धिक्कारने लगी। उसे लगा, महेंद्र मन-ही-मन हँस रहा है। अंत में आजिज आए महेंद्र की नजर दीवार से नीचे उतर आई। अपनी मूर्खता मिटाने के लिए आशा आजकल साँझ को काम-काज और सास की सेवा से फुरसत पाते ही काफी रात तक लिखा-पढ़ी करती थी। उसके पढ़ने-लिखने की कापी-किताबें कमरे में एक तरफ रखी हुई थीं। महेंद्र ने उनमें से एक कापी उठा ली और देखने लगा। आशा की ख्वाहिश होने लगी कि चीख कर उसे छीन लाए। अपने कच्चे हरफ पर महेंद्र की व्यंग्य दृष्टि की कल्पना करके वह एक पल-भर भी और न खड़ी रह सकी। तेजी से नीचे उतर गई - आहट छिपाने की भी चेष्टा न रही।

महेंद्र का खाना तैयार था। राजलक्ष्मी सोच रही थी, 'महेंद्र बहू से हँसी-दिल्लगी कर रहा होगा,' लिहाजा भोजन ले जा कर बीच ही में रुकावट डालने को जी नहीं चाह रहा था। आशा को उतरते देख खाने की जगह पर थाली रख कर उन्होंने महेंद्र को खबर दी। महेंद्र खाने जाने को उठा ही था कि आशा दौड़ कर कमरे में गई और दीवार से अपनी तस्वीर उतार कर छत की दीवार के बाहर फेंक दी और अपनी कापी-किताबें उठा ले गई।

खा-पी कर महेंद्र कमरे में आ बैठा। राजलक्ष्मी ने लेकिन बहू को आस-पास कहीं नहीं पाया। अंत में रसोई में जा कर देखा, आशा उनके लिए दूध उबाल रही थी। कोई जरूरत न थी इसकी, क्योंकि जो नौकरानी रोज दूध उबाला करती थी, वह पास ही थी और आशा के इस निरर्थक उत्साह पर ऐतराज कर रही थी। पानी डाल कर जितना दूध वह रोज गायब करती थी, आज वह हाथ से जाता रहा, इससे वह अकुला रही थी।

राजलक्ष्मी बोलीं- 'अरे, यहाँ क्यों बहू, ऊपर जाओ!' आशा ने ऊपर जा कर सास के कमरे में पनाह ली। बहू के इस व्यवहार से राजलक्ष्मी नाराज हुई। सोचा, 'उस मायाविनी के फंदे से निकल कर महेंद्र घड़ी-भर के लिए घर भी आया, तो नाराज हो कर, रूठ कर बहू फिर उसे घर से निकालने को तैयार! और विनोदिनी के फंदे में जो महेंद्र पड़ा वह ही तो आशा के ही चलते। मर्द तो गलत राह पर चलने के लिए पाँव बढ़ाए ही रहता है। औरत का कर्तव्य है, छल-बल कौशल से उसे सही रास्ते पर रखे।'

राजलक्ष्मी ने फटकार बताई - 'यह तुम्हारा क्या रवैया है, बहू! खुश-किस्मती से स्वामी कहीं घर आ गए तो मुँह लटकाए तुम इस-उस कोने में क्यों छिपी फिरती हो?'

खुद को कसूरवार समझ अंकुश खाए हुए किसी तरह आशा ऊपर गई और मन को आगा-पीछा करने का जरा भी मौका न दे कर वह एक साँस में कमरे के अंदर चली गई। दस बज चुके थे। उस समय महेंद्र बिस्तर के पास खड़ा बेमतलब बड़ी देर से चिंतित-सा मच्छरदानी झाड़ रहा था। उसके मन में विनोदिनी के लिए एक तीखा अभियान हो गया था। वह मन में सोच रहा था कि विनोदिनी ने आखिर मुझे ऐसा खरीदा हुआ गुलाम समझ रखा है कि मुझे आशा के पास भेजते हुए उसके जी में जरा भी आशंका न हुई। कहीं मैं आज से आशा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करूँ तो वह किसके सहारे इस दुनिया में खड़ी होगी? उसने सोचा वह विनोदिनी से अपनी उपेक्षा का बदला जरूर लेगा।

आशा ने जैसे ही कमरे में कदम रखा, महेंद्र का अनमना हो कर मच्छरदानी झाड़ना बंद हो गया। एक समस्या हुई कि आशा से वह बोल-चाल कैसे शुरू करे।

बनावटी हँसी हँस कर अचानक जो बात उसकी जबान पर आ गई, महेंद्र वही बोला। बोला, 'मैं देख रहा हूँ, तुमने भी मेरी तरह पढ़ने में जी लगाया है। यहाँ कापी-किताबें पड़ी देखी थीं, कहाँ गई?'

बात बेसिर-पैर की लगी। इतना ही नहीं, उसने आशा को चोट की। गँवार आशा शिक्षित होने की चेष्टा कर रही है, वह बड़ी ही गोपन बात थी उसकी। और उसका वह संकल्प अगर किसी के हँसी-मजाक के अभ्यास से भी गोपन रखने का विषय था तो वह खास तौर से महेंद्र। और उसी महेंद्र ने जब बोल-चाल के आरंभ में ही हँस कर वही बात चलाई, तो बेरहम बातों की मार खाए कोमल बच्चे की देह-सा उसका मन संकुचित और पीड़ित होने लगा। वह कुछ बोली नहीं, मुँह फेर कर तिपाई का किनारा पकड़े खड़ी रही।

मुँह से बात निकलते ही महेंद्र ने समझ लिया था कि बात संगत और समय के अनुकूल नहीं हुई। लेकिन ऐसी स्थिति में उपयुक्त बात क्या हो सकती है, वह सोच ही न सका। बीच में एक इतना बड़ा विद्रोह हो गया, उसके बाद पहले की तरह कोई सहज बात जँचती नहीं। महेंद्र ने सोचा, 'मसहरी के अंदर दाखिल हो जाऊँ, तो वहाँ के एकांत से बात करना शायद सहज हो।' यह सोच कर अपनी धोती के छोर से वह फिर मसहरी झाड़ने लगा। नया अभिनेता रंगमंच पर जाने से पहले जैसे अपना पार्ट मन-ही-मन दुहराया करता है, महेंद्र वैसे ही मसहरी के सामने खड़ा-खड़ा अपने वक्तव्य और कर्तव्य की सोचता रहा। इतने में हल्की-सी आहट हुई। महेंद्र ने मुड़ कर देखा, लेकिन आशा नहीं थी।

## 43

अगले दिन महेंद्र ने माँ से कहा - 'माँ, पढ़ने-लिखने के लिए मुझे कोई एकांत कमरा चाहिए। मैं चाची वाले कमरे में रहूँगा।'

माँ खुश हो गई, 'तब तो महेंद्र अब घर में ही रहा करेगा। लगता है, बहू से सुलह हो गई। भला अपनी ऐसी अच्छी बहू की सदा उपेक्षा कर सकता है। ऐसी लक्ष्मी को छोड़ कर उस मायाविनी डायन के पीछे वह कब तक भूला रह

सकता है?"

माँ ने झट कहा - 'हर्ज क्या है, रहो!'

उन्होंने तुरंत कुंजी निकाली, ताला खोला और झाड़-पोंछ की धूम मचा दी- 'बहू, अरी ओ बहू, कहाँ गई?' बड़ी कठिनाई से घर के एक कोने में दुबकी हुई बहू को बरामद किया गया - 'एक धुली चादर ले आओ! इस कमरे में मेज नहीं है, लगानी पड़ेगी। इस रोशनी से काम नहीं चलेगा, ऊपर से अपना वाला लैंप भिजवा दो।' इस तरह दोनों ने मिल कर उस घर के राजाधिराज के लिए अन्नपूर्णा के कमरे में राज-सिंहासन तैयार कर दिया। महेंद्र ने सेवा में लगी हुई माँ-बहू की तरफ ताका तक नहीं, वहीं किताब लिए जरा भी समय बर्बाद न करके गंभीर हो कर पढ़ने बैठ गया।

शाम को भोजन के बाद वह फिर बैठा। सोना ऊपर के कमरे में होगा या वहीं, कोई न समझ सका। बड़े जतन से राजलक्ष्मी ने आशा को मूरत की तरह सजा कर कहा - 'बहू, महेंद्र से पूछ तो आओ, उसका बिस्तर क्या ऊपर लगेगा?' इस प्रस्ताव पर आशा का पाँव हर्गिज न हिला, वह सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रही। नाराज हो कर राजलक्ष्मी खरी-खोटी सुनाने लगीं। बड़े कष्ट से आशा दरवाजे तक गई, पर उससे आगे न बढ़ सकी। दूर से बहू का वह रवैया देख कर राजलक्ष्मी नाराज हो कर इशारे से निर्देश करने लगीं। मरी-सी हो कर आशा कमरे में गई। आहत पा कर किताबों से सिर न उठा कर ही महेंद्र ने कहा - 'मुझे अभी देर है - फिर तड़के से ही उठ कर पढ़ना है - मैं यहीं सोऊँगा।' शर्म की हद हो गई! आशा महेंद्र को ऊपर सुलाने के लिए थोड़े ही गिड़गिड़ाने आई थी।

वह निकली। निकलते ही खीझ कर राजलक्ष्मी ने पूछा - 'क्यों, क्या हुआ?'

आशा बोली - 'अभी पढ़ रहे हैं। वे यहीं सोएँगे।'

कह कर वह अपने अपमानित शयन-कक्ष में चली गई। कहीं उसे चैन नहीं - मानो सब कुछ दोपहर की धरती-सा तप उठा है।

कुछ रात बीती, तो उसके कमरे के दरवाजे पर थपकी पड़ी - 'बहू, बहू, दरवाजा खोलो!'

आशा ने झट-पट दरवाजा खोल दिया। दमे की मरीज राजलक्ष्मी सीढ़ियाँ चढ़ कर तकलीफ से साँस ले रही थीं। कमरे में जा कर वह बिस्तर पर बैठ गई और वाक्-शक्ति लौटते ही बोलीं - 'तुम्हारी अकल की बलिहारी! ऊपर कमरा बंद किए पड़ी हो! यह क्या राग-रोष का समय है! इस मुसीबत के बाद भी तुम्हारे भेजे में बुद्धि नहीं आई! जाओ नीचे जाओ!'

आशा ने धीमे से कहा - 'उन्होंने कहा है, एकांत में रहेंगे।'

राजलक्ष्मी - 'कह दिया और हो गया। गुस्से में जाने क्या कह गया, उसी पर तुम तुनक बैठोगी। ऐसी तुनक-मिजाज होने से काम नहीं चलेगा। जाओ, जल्दी जाओ।'

दुःख के दिनों में सास को बहू से लाज नहीं। जो भी तरकीब उन्हें आती है, उसी से महेंद्र को किसी तरह बाँधना पड़ेगा। आवेग से बातें करते हुए राजलक्ष्मी का फिर से दम फूलने लगा। अपने को थोड़ा-बहुत सँभाल कर उठीं।

आशा भी आजिज न हो कर पकड़ कर उन्हें नीचे लिवा ले गई। उनके सोने के कमरे में आशा ने उन्हें बिठा दिया और पीठ की तरफ तकिए लगाने लगी। राजलक्ष्मी बोलीं - 'रहने दो बहू, किसी को भेज दो। तुम जाओ!'

अबकी आशा जरा भी न हिचकी। सास के कमरे से निकल कर सीधे महेंद्र के कमरे में गई। महेंद्र के सामने मेज पर किताब खुली पड़ी थी - वह मेज पर दोनों पैर रख कर कुर्सी पर माथा टेके ध्यान से न जाने क्या सोच रहा था। उसके पीछे पैरों की आहट हुई। चौंक कर उसने पीछे की ओर देखा। मानो किसी के ध्यान में लीन था - एकाएक धोखा हुआ कि वह आ गई। आशा को देख कर महेंद्र सँभला। खुली किताब को उसने अपनी गोद में खींच लिया।

मन-ही-मन महेंद्र को अचरज हुआ। इन दिनों ऐसे बेखटके तो आशा उसके सामने नहीं आती - अचानक भेंट हो जाती है तो वह वहाँ से चल देती है। आज इतनी रात को वह इस सहज भाव से उसके कमरे में आ गई, ताज्जुब है! किताब से आँखें हटाए बिना ही महेंद्र ने समझा, आज आशा के लौट जाने का लक्षण नहीं। वह महेंद्र के सामने आ कर स्थिर भाव से खड़ी हुई। इस पर महेंद्र से मान करते न बना। सिर उठा कर उसने देखा। आशा ने साफ शब्दों में कहा - 'माँ का दम उखड़ आया है। चल कर एक बार देख लो तो अच्छा हो!'

महेंद्र - 'वे हैं कहाँ?'

आशा - 'अपने सोने के कमरे में हैं। नींद नहीं आ रही है।'

महेंद्र - 'अच्छा, चलो, उन्हें देख आऊँ।'

बहुत दिनों के बाद आशा से इतनी-सी बात करके महेंद्र जैसे हल्का हुआ। किसी दुर्भेद्य किले की दीवार-सी नीरवता मानो उन दोनों के बीच स्याह छाया डाले खड़ी थी - महेंद्र की ओर से उसे तोड़ने का कोई हथियार न था, ऐसे समय आशा ने अपने हाथों किले में एक छोटा-सा दरवाजा खोल दिया। आशा सास के कमरे के दरवाजे पर खड़ी रही। महेंद्र गया। उसे असमय में अपने कमरे में आया देख कर राजलक्ष्मी को डर लगा। सोचा, 'कहीं फिर दोनों में कहा-सुनी हो गई और वह चल देने की कहने आया हो।' पूछा - 'अब तक सोया नहीं, महेंद्र?'

महेंद्र ने कहा - 'क्या दमा उखड़ आया है, माँ?'

जमाने के बाद यह सवाल सुन कर उनके मन में मान हो आया। समझीं, 'जब बहू ने जा कर बताया, तो यह माँ का हाल पूछने आया है।' इस आवेश से उनका कलेजा और भी काँपने लगा। किसी तरह बोलीं - 'तू सो जा कर, यह कुछ नहीं।'

महेंद्र - 'नहीं, नहीं एक बार जाँच देखना अच्छा है। यह बीमारी टालने की नहीं।'

महेंद्र को पता था, माँ को हृदय की बीमारी है। इस वजह से तथा उनके चेहरे का लक्षण देख कर उसे घबराहट हुई।

माँ ने कहा - 'जाँचने की जरूरत नहीं। मेरी यह बीमारी नहीं छूटेगी।'

महेंद्र ने कहा - 'खैर, आज की रात के लिए सोने की दवा ला देता हूँ। सवेरे अच्छी तरह से देखा जाएगा।'

राजलक्ष्मी - 'दवा ढेर खा चुकी, दवा से कुछ होता-जाता नहीं। बहुत रात हो गई, तुम सो जाओ।'

महेंद्र - 'तुम्हें जरा चैन तो मिले।'

इस पर राजलक्ष्मी ने दरवाजे पर खड़ी बहू को संबोधित करके कहा - 'बहू, तुम रात में महेंद्र को तंग करने के लिए यहाँ क्यों ले आईं!'

कहते-कहते उनकी साँस की तकलीफ और भी बढ़ गई। तब आशा कमरे में आई। उसने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में महेंद्र से कहा - 'तुम सोओ जा कर। मैं माँ के पास रहूँगी।'

महेंद्र ने आशा को अलग बुला कर कहा - 'मैंने एक दवा लाने भेजा है। दो खुराक दवा होगी। एक से अगर नींद न आए तो घंटे बाद दूसरी खुराक देना। रात में साँस और बढ़े तो मुझे खबर देना।'

कह कर महेंद्र अपने कमरे में चला गया। आशा आज जिस रूप में उसके सामने प्रकट हुई, उसके लिए वह रूप नया था। इस आशा में संकोच नहीं, दीनता नहीं - यह आशा अपने अधिकार में खड़ी हुई थी। अपनी स्त्री की महेंद्र ने अपेक्षा की थी, मगर घर की बहू के लिए संभ्रम हुआ।

आशा ने जवाब न दिया। पीछे बैठ कर पंखा झलने लगी। राजलक्ष्मी ने कहा - 'तुम सोओ जा कर, बहू।'

आशा धीमे से बोली - 'मुझे यहीं रहने को कह गए हैं।'

आशा समझती थी कि यह जान कर माँ खुश होंगी कि महेंद्र उसे माँ की सेवा के लिए छोड़ गया है।

## 44

राजलक्ष्मी ने जब साफ समझ लिया कि आशा महेंद्र के मन को बाँध नहीं पा रही है, तो उनके जी में आया, कम-से-कम मेरी बीमारी के नाते ही महेंद्र को यहाँ रहना पड़े, तो भी अच्छा है। उन्हें डर लगा, कहीं वे सचमुच ठीक न हो जाएँ। इसलिए आशा से छिपा कर दवा फेंकने लगीं।

अनमना महेंद्र खास कुछ खयाल नहीं करता था। लेकिन आशा यह देख रही थी कि राजलक्ष्मी की बीमारी दबने के बजाय कुछ बढ़ ही रही है। वह सोचती, 'महेंद्र खूब सोच-विचार कर दवा नहीं दे रहा है - उसका मन इतना ही खराब हो गया है कि माँ की तकलीफ भी उसे सचेतन नहीं कर पाती।' उसकी इस दुर्गति पर आशा अपने मन में उसे धिक्कारे बिना न रह सकी। एक तरफ से बिगड़ने पर कोई क्या हर तरफ से बर्बाद हो जाता है। एक दिन शाम को बीमारी की तकलीफ में राजलक्ष्मी को बिहारी की याद आ गई। जाने वह कब से नहीं आया। आशा से पूछा - 'जानती हो बहू, बिहारी आजकल कहाँ है?' उसका महेंद्र से कुछ झगड़ा है, क्यों? यह उसने बड़ा बेजा किया, बहू! उस-जैसा महेंद्र का भला चाहने वाला और कोई दोस्त नहीं।'

कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू जमा हो आए। एक-एक करके आशा को बहुतेरी बातें याद आईं। अंधी और भोली आशा को समय पर चेताने के लिए जाने कितनी बार, कितनी कोशिश बिहारी ने की और उन्हीं कोशिशों के चलते वह आशा का अप्रिय हो उठा।

फिर बड़ी देर तक चुपचाप चिंतित रह कर राजलक्ष्मी बोल उठीं - 'बहू, बिहारी होता तो हमारे इस आड़े वक्त में बड़ा काम आता। वह हमें बचाता, बात यहाँ तक न बढ़ पाती।'

आशा चुपचाप सोचती रही। उसाँस ले कर राजलक्ष्मी ने कहा - 'उसे अगर मेरी बीमारी का पता चल जाए, तो वह हर्गिज नहीं रुक सकता।'

आशा समझ गई, राजलक्ष्मी चाहती हैं कि बिहारी को यह खबर मिले। बिहारी के न होने से वह असहाय-सी हो गई हैं।

कमरे की बत्ती गुल करके चाँदनी में महेंद्र खिड़की के पास चुप खड़ा था। पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा था। घर में कोई आराम नहीं। जो नितांत अपने हैं, उनसे जब सहज नाता टूट जाता है तो उन्हें बिराने की तरह आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता और फिर प्रियजन के समान सहज ही अपनाया भी नहीं जा सकता।

पीछे आहत मिली। महेंद्र ने समझा, आशा आई है। मानो आहत उसे मिली ही नहीं, इस भाव से वह स्थिर रहा। आशा बहाना ताड़ गई, फिर भी वह कमरे से बाहर नहीं गई। पीछे खड़ी-खड़ी बोली - 'एक बात है, वही कह कर मैं चली जाऊँगी।'

महेंद्र ने पलट कर कहा - 'जाना ही क्यों पड़ेगा - जरा देर बैठ ही जाओ।'

इस भलमनसाहत पर उसने ध्यान दिया। स्थिर खड़ी-खड़ी बोली - 'बिहारी भाई साहब को माँ की बीमारी की खबर देना लाजिमी है।'

बिहारी का नाम सुनते ही महेंद्र के गहरे जखम पर चोट लगी। अपने को सँभाल कर वह बोला - 'लाजिमी क्यों है, मेरे इलाज का भरोसा नहीं हो रहा है, क्यों?'

आशा ने मन में यह शिकायत भरी-सी थी कि महेंद्र माँ के इलाज में उतना ध्यान नहीं दे रहा है, तो उसके मुँह से निकल पड़ा - 'कहाँ, उनकी बीमारी तो जरा भी नहीं सुधरी, बल्कि दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है।'

इस मामूली बात में जो आँच थी, महेंद्र अपने अहंकार से आहत हो विस्मित व्यंग्य के साथ बोला - 'देखता हूँ, तुमसे डाक्टरी सीखनी पड़ेगी।'

इस व्यंग्य से आशा को उसकी जमी हुई वेदना पर अप्रत्याशित चोट लगी। तिस पर कमरा अँधेरा था, जो सदा ही चुप रह जाने वाली आशा आज बे-खटके तेजी के साथ बोल उठी - 'डाक्टरी न सही, माँ की सेवा सीख सकते हो।'

आशा से ऐसा जवाब पा कर महेंद्र के अचरज की सीमा न रही। ऐसे तीखे वाक्य सुनने का वह आदी न था। वह कठोर हो उठा। बोला - 'तुम्हारे बिहारी भाई साहब को यहाँ आने की मनाही क्यों की है - तुम तो जानती हो - शायद फिर याद आ गई है!'

आशा तेजी से बाहर चली गई। शाम की आँधी मानो उसे ढकेल कर ले गई। शर्म अपने लिए न थी। जो आदमी सिर से पैर तक अपराध में डूबा हो, वह जुबान पर ऐसे झूठे अपवाद भी ला सकता है! इतनी बड़ी बेहयाई को लाज के पहाड़ से भी नहीं ढँका जा सकता।

आशा के चले जाने के बाद ही महेंद्र अपनी पूरी हार का अनुभव कर सका। महेंद्र को मालूम भी न था कि आशा कभी भी किसी भी अवस्था में महेंद्र को इस तरह धिक्कार सकती है। उसे लगा, जहाँ उसका सिंहासन था, वहीं वह धूल में लोट रहा है। इतने दिनों के बाद अब उसे यह शंका होने लगी, 'आशा की वेदना कहीं घृणा में न बदल जाए।'

और उधर बिहारी की चर्चा आते ही विनोदिनी की चिंता ने उसे बेताब कर दिया। पश्चिम से बिहारी लौटा या नहीं, कौन जाने? हो सकता है, इस बीच विनोदिनी उसका पता ले आई हो, विनोदिनी से बिहारी की भेंट भी असंभव नहीं। महेंद्र से अब प्रतिज्ञा का पालन न हो सका।

रात को राजलक्ष्मी की तकलीफ बढ़ गई। उससे न रहा गया। उन्होंने महेंद्र को बुलावा भेजा। बड़ी तकलीफ से बोली फूटी- 'महेंद्र, बिहारी को देखने को मेरा बड़ा जी चाहता है - बहुत दिनों से वह नहीं आया है।'

आशा सास को पंखा झल रही थी। मुँह नीचा किये बैठी रही। महेंद्र ने कहा - 'वह यहाँ नहीं है। जाने कहाँ पछाँह गया है।'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मेरी अंतरात्मा कह रही है, वह यहाँ है, सिर्फ तुझसे रूठ कर नहीं आ रहा है। मेरे सिर की कसम रही, कल तू एक बार उसके यहाँ जाना।'

महेंद्र ने कहा - 'अच्छा, जाऊँगा।'

आज सब बिहारी के लिए परेशान हैं।

## 45

दूसरे दिन तड़के ही महेंद्र बिहारी के यहाँ पहुँच गया। देखा, दरवाजे पर कई बैलगाड़ियों पर नौकर-चाकर सामान लाद रहे हैं। महेंद्र ने भज्जो से पूछा - 'माजरा क्या है?' भज्जो ने कहा - 'बाबू ने बाली में गंगा के किनारे एक बगीचा लिया है। यह सब वहीं जा रहा है।' महेंद्र ने पूछा - 'बाबू घर पर हैं क्या?' भज्जो ने कहा - 'वे सिर्फ दो दिन कलकत्ता रुक कर कल बगीचे चले गए।'

सुनते ही महेंद्र का मन आशंका से भर गया। उसकी गैरहाजिरी में बिहारी से विनोदिनी की भेंट हुई है, इस पर उसे कोई संदेह न रहा। उसने कल्पना की आँखों से देखा, विनोदिनी के डेरे के बाहर भी बैलगाड़ियाँ लद रही हैं। उसे यह निश्चित-सा लगा कि इसलिए मुझ नासमझ को विनोदिनी ने डेरे से दूर ही रखा है।

पल की भी देर न करके महेंद्र गाड़ी पर सवार हुआ और कोचवान से हाँकने को कहा। बीच-बीच में कोचवान को इसके लिए गालियाँ सुनाई कि घोड़े तेज नहीं चल रहे हैं। गली के अंदर डेरे के दरवाजे पर पहुँच कर देखा, यात्रा की कोई तैयारी नहीं है। डर लगा, वहीं यह काम पहले ही न हो चुका हो। तेजी से किवाड़ के कड़े खटखटाए। अंदर से जैसे ही बूढ़े नौकर ने दरवाजा खोला, महेंद्र ने पूछा - 'सब ठीक तो है?'

उसने कहा - 'जी हाँ, ठीक ही है।'



ऊपर जा कर महेंद्र ने देखा, विनोदिनी नहाने गई है। उसके सूने सोने के कमरे में जा कर महेंद्र विनोदिनी के रात के बिस्तर पर लोट गया, दोनों हाथों से खींच कर चादर को छाती के पास ले आया और पहुँच कर उस पर मुँह रखते हुए बोला - 'बेरहम, निर्दयी!'

हृदय के उच्छ्वास को इस तरह निकल कर वह सेज से उठ कर विनोदिनी का इंतजार करने लगा। कमरे में चहलकदमी करते हुए देखा, फर्श के बिछौने पर एक अखबार खुला पड़ा है। समय काटने के खयाल से कुछ अनमना-सा हो कर अखबार उठा कर देखा। जहाँ पर उसकी नजर पड़ी, वहीं पर बिहारी का नाम था। उसका मन बात-की-बात में अखबार देखते-देखते वहीं पर टूट पड़ा। किसी ने संपादक के नाम पत्र लिखा था, 'मामूली तनखा पाने वाले गरीब किरानियों के बीमार होने पर निःशुल्क चिकित्सा और सेवा के लिए बिहारी ने बाली में एक बगीचा खरीदा है, वहाँ एक साथ पाँच आदमियों के लिए प्रबंध हो चुका है, आदि-आदि।'

यह खबर विनोदिनी ने पढ़ी, पढ़ कर उसके मन में क्या हुआ होगा! बेशक उसका मन उधर ही भाग-भाग कर रहा होगा। न केवल इसीलिए बल्कि महेंद्र का जी इस वजह से और भी छटपटाने लगा कि बिहारी के इस संकल्प से उसके प्रति विनोदिनी की भक्ति और भी बढ़ जाएगी। बिहारी को महेंद्र ने अपने मन में 'हम्बग' और उसके इस काम को 'सनक' कहा।

विनोदिनी के पैरों की आहट सुन कर महेंद्र ने अखबार मोड़ दिया। नहा कर विनोदिनी कमरे में जो आई, महेंद्र उसके चेहरे की तरफ देख कर हैरत में आ गया। उसमें जाने कैसा एक अनोखा बदलाव आ गया था। मानो पिछले कई दिन तक वह धूनी जला कर तप कर रही थी। शरीर उसका दुबला हो गया था और उस दुबलेपन को भेद कर उसके पीले चेहरे से एक दमक निकल रही थी।

बिहारी के पत्र की उम्मीद उसने छोड़ दी है। अपने ऊपर बिहारी की बेहद हिकारत की कल्पना करके वह आठों पहर चुपचाप जल रही थी। बिहारी मानो उसी का तिरस्कार करके पछाँह चला गया है - उस तक पहुँच पाने की कोई तरकीब उसे नहीं सूझी। काम-काजी विनोदिनी काम की कमी से इस छोटे-से घर में घुल रही थी - उसकी सारी तत्परता खुद उसी को घायल करती हुई चोट करती थी। उसके समूचे भावी जीवन को इस प्रेमहीन, कर्महीन, आनंदहीन घर में इस सँकरी गली में सदा के लिए कैद समझ कर उसकी बागी प्रकृति हाथ न आने वाले अदृष्ट के खिलाफ मानो आसमान से सिर मारने की बेकार कोशिश कर रही थी। नादान महेंद्र ने विनोदिनी की मुक्ति के सारे रास्तों को चारों तरफ से बंद करके जीवन को इतना सँकरा बना दिया है, उस महेंद्र के प्रति उसकी घृणा और विद्वेष की सीमा न रही। वह समझ गई थी कि उस महेन्द्र को अब वह ठुकराकर हर्गिज दूर नहीं जा सकती। इस संकरे डेरे में महेन्द्र रोज उसके पास सट कर बैठा करेगा, अलक्षित आकर्षण से प्रतिदिन तिल-तिल वह उसकी ओर खिंचती रहेगी - इस अंधे कुएँ में, इस समाज-भ्रष्ट जीवन के कीच की सेज पर घृणा और आसक्ति के बीच रोज-रोज जो लड़ाई होती रहेगी, वह बड़ी ही वीभत्स है। उसने खुद अपने हाथों, अपने से चाहकर महेन्द्र के मन के अतल से एक लपलपाती जीभ वाली लोलुपता के जिस क्लेद-सने सरीसृप को खोद निकाला है, उसकी पूँछ के बंधन से वह अपने को कैसे बचाएगी? एक तो उसका दुखा हुआ दिल, तिस पर यह छोटा रूँधता-सा डेरा और उसमें महेन्द्र की वासना की लहरों के थपेड़े - इसकी कल्पना से ही विनोदिनी का मन-प्राण पीड़ित हो उठा। जीवन में इसका अन्त कहाँ? इनमें से वह बाहर कब निकल पायगी?

विनोदिनी का वह दुबला-पीला चेहरा देख कर महेंद्र के मन में ईर्ष्या जल उठी। उसमें ऐसी कोई शक्ति नहीं कि वह बिहारी की चिंता में लगी इस तपस्विनी को जबरदस्ती उखाड़ सके? गिद्ध जैसे मेमने को झपट्टा मार कर देखते-ही-देखते अपने अगम अभ्रभेदी पहाड़ के बसेरे में ले भागता है, क्या वैसी ही कोई मेघों से घिरी दुनिया की निगाहों से परे जगह नहीं, जहाँ महेंद्र अकेला अपने इस सुंदर शिकार को कलेजे के पास छिपा कर रख सके?

विरह की जलन स्त्रियों के सौंदर्य को सुकुमार कर देती है, ऐसा महेंद्र ने संस्कृत काव्यों में पढ़ा था। आज विनोदिनी को देख कर वह जितना ही अनुभव करने लगा, उतना ही सुख-सने दुःख के आलोड़न से उसका हृदय बड़ा व्यथित होने लगा।

विनोदिनी जरा देर स्थिर रही। फिर पूछा - 'तुम चाय पी कर आए हो?'

महेंद्र ने कहा - 'समझ लो, पी कर ही आया हूँ, मगर इस वजह से अपने हाथ से प्याला देने की कंजूसी मत करो - प्याला मुझे दो।'

शायद जान कर ही विनोदिनी ने निहायत निर्दयता से महेंद्र से इस उच्छ्वास को चोट पहुँचाई। कहा - 'बिहारी भाई साहब इन दिनों कहाँ हैं, मालूम है?'

महेंद्र का चेहरा फक हो गया। बोला - 'कलकत्ता में तो वह नहीं हैं इन दिनों।'

विनोदिनी - 'पता क्या है उनका?'

महेंद्र - 'यह तो वह किसी को बताना नहीं चाहता।'

विनोदिनी - 'खोज नहीं की जा सकती पूछ-ताछ करके?'

महेंद्र - 'मुझे ऐसी जरूरत नजर नहीं आती।'

विनोदिनी - 'जरूरत ही क्या सब-कुछ है, बचपन से आज तक की मैत्री क्या कुछ भी नहीं?'

महेंद्र - 'बिहारी मेरा छुटपन का साथी है, तुम्हारी दोस्ती महज दो दिन की है, फिर भी ताकीद तुम्हारी ही ज्यादा है।'

विनोदिनी - 'इसी से तुम्हें शर्म आनी चाहिए। दोस्ती कैसे करनी चाहिए, यह तुम अपने वैसे दोस्त से भी न सीख सके?'

महेंद्र - 'मुझे इसका कतई मलाल नहीं, मगर धोखे से औरत का दिल कैसे लिया जाता है, यह विद्या उससे सीखता तो आज काम आती।'

विनोदिनी - 'केवल चाहने से वह विद्या नहीं सीखी जा सकती, उसकी क्षमता होनी चाहिए।'

महेंद्र - 'गुरुदेव का पता मालूम हो, तो मुझे बताओ, इस उम्र में उनसे दीक्षा ले आऊँ, फिर क्षमता की कसौटी होगी।'

विनोदिनी - 'मित्र का पता ढूँढ़ निकालने की जुरत न हो तो प्रेम की बात जुबान पर मत लाओ! बिहारी भाई साहब से तुमने ऐसा बर्ताव किया है कि तुम पर कौन यकीन करेगा?'

महेंद्र - 'मुझ पर पूरा यकीन न होता तो मेरा इतना अपमान न कर पाती - मेरे प्रेम पर अगर इतनी निश्चिंतता न होती, तो शायद मुझे इतनी तकलीफ न होती। बिहारी पालतू न बनने की कला जानता है, वह कला अगर इस बदनसीब को बता देता तो वह एक दोस्त का फर्ज अदा करता।'

'आखिर बिहारी आदमी है, इसी से पालतू नहीं बनता' - यह कह कर विनोदिनी खुले बालों को पीठ पर बिखेर कर खिड़की पर जिस तरह खड़ी थी, खड़ी रही। महेंद्र अचानक खड़ा हुआ। मुट्ठी कस ली और नाराजगी से गरज कर बोला - 'आखिर बार-बार मेरा अपमान करने का साहस क्यों करती हो तुम? इस इतने अपमान का कोई बदला नहीं मिलता, वह तुम्हारी क्षमता के कारण या मेरे गुण से? इतना बड़ा पुरुष मैं नहीं कि चोट करना जानता ही नहीं।'

इतना कह कर वह विनोदिनी की तरफ देखता हुआ जरा देर स्तब्ध रहा, फिर बोला - 'विनोद, चलो यहाँ से चलें - कहीं और। चाहे पछाँह, चाहे किसी पहाड़ पर, जहाँ तुम्हारा जी चाहे - चलो! यहाँ जीना मुहाल है। मैं मरा जा रहा हूँ।'

विनोदिनी बोली - 'चलो, अभी चलें पछाँह।'

महेंद्र - 'पछाँह?'

विनोदिनी - 'किसी खास जगह नहीं। कहीं भी दो दिन रहते-घूमते फिरेंगे।'

महेंद्र - 'ठीक है, आज ही रात को चलो!'

विनोदिनी राजी हो कर महेंद्र के लिए खाना बनाने गई। महेंद्र ने समझ लिया, बिहारी वाली खबर विनोदिनी की नजरों से नहीं गुजरी। अखबार में जी लगाने-जैसी स्थिति अभी उसके मन की नहीं है। कहीं अचानक उसे वह खबर न मालूम हो जाए, इसी उधेड़-बुन में महेंद्र पूरे दिन चौकन्ना रहा।

## 46

बिहारी की खोज-खबर ले कर महेंद्र लौटेगा, इस आशा से घर में उसकी रसोई बनी थी। काफी देर हो गई तो दुखी राजलक्ष्मी बेचैन हो उठीं। रात-भर नींद न आई थी, इससे वह काफी थकी थीं, फिर महेंद्र के लिए यह बेताबी उन्हें और कष्ट दे रही थी। यह देख कर आशा ने पूछ-ताछ कर यह पता किया कि महेंद्र की गाड़ी वापिस आ चुकी है। कोचवान से मालूम हुआ, महेंद्र बिहारी के यहाँ से होता हुआ पटलडाँगा के डेरे पर गया है। राजलक्ष्मी ने सुना और दीवार की तरफ करवट बदल कर लेटी रहीं। आशा उनके सिरहाने चित्र-लिखी-सी बैठी पंखा झलती रही और दिन समय पर आशा को खाने के लिए जाने का वह आदेश किया करती थीं - आज कुछ न कहा। कल जब उनकी तबीयत ज्यादा खराब थी, यह देख कर भी महेंद्र विनोदिनी के मोह में चला गया, तो राजलक्ष्मी के लिए दुनिया में कुछ भी करने का मन बुझ गया।

कोई दो बजे आशा बोली - 'माँ, दवा पीने का वक्त हो गया।'

राजलक्ष्मी ने कोई जवाब न दिया, चुप रहीं, आशा दवा लाने जाने लगी, तो बोलीं - दवा की जरूरत नहीं बहू, तुम जाओ!"

आशा ने माँ के रुठने का मर्म समझा और उसकी समझ ने उसके हृदय के आंदोलन को दूना कर दिया। आशा से न रहा गया। अपनी रुलाई रोकते-रोकते वह फफक पड़ी। राजलक्ष्मी धीरे-धीरे करवट बदल कर आशा की तरफ हो गई और स्नेह से उसका हाथ सहलाने लगीं। कहा - 'बहू, तुम्हारी उम्र ही क्या है, सुख का मुँह देखने का तुम्हें बहुत समय है। मेरे लिए तुम परेशान मत होओ बिटिया, मैं काफी जी चुकी, अब क्या होगा जी कर?'

आशा की रुलाई और उमड़ आई। उसने आँचल से मुँह दबा लिया। रोगी के घर इस तरह निरानंद दिन मंद गति से कट गया। रुठे रहने के बावजूद दोनों नारियों को अंदर-ही-अंदर आशा थी कि महेंद्र अभी आएगा। खटका होते ही दोनों के शरीर में एक चौंक-सी जगती थी, इसे दोनों समझ रही थीं। धीरे-धीरे सूर्यास्त की आभा धुँधली पड़ गई - कलकत्ता के अंतःपुर में उस गोधूली की आभा में न तो खिलावट है, और न अँधेरे का आवरण ही होता है - वह विषाद को गहरा बनाती है और निराशा के आँसू सुखा डालती है। कर्म और भरोसे के बल को वह छीन लेती है, लेकिन विश्राम और वैराग्य की शांति नहीं लाती। रोग से दुखी घर की उस सूनी और कुरूप साँझ में आशा पाँव दबाए गई और दीया जला कर कमरे में ले आई। राजलक्ष्मी ने कहा, 'बहू, रोशनी नहीं सुहाती, दीए को कमरे से बाहर रख दो।'

आशा दीये को बाहर रख आई। घना हो कर अँधेरा जब अनंत रात को छोटे-से कमरे में ले आया, तो आशा ने धीमे से राजलक्ष्मी से पूछा - 'माँ, उन्हें खबर भिजवाऊँ क्या?'

राजलक्ष्मी ने सख्त हो कर कहा - 'नहीं-नहीं, तुम्हें मेरी कसम, महेंद्र को खबर मत देना!'

आशा स्तब्ध रह गई। रोने की उसमें शक्ति न थी। कमरे के बाहर से बैरे ने आवाज दी- 'माँजी, बाबू के यहाँ से चिट्ठी आई है।'

यह सुना और तुरंत राजलक्ष्मी के मन में आया, 'हो न हो, महेंद्र की अचानक तबीयत खराब हो गई है। इसीलिए वह आ न सका और चिट्ठी भेजी है।' चिंतित और परेशान हो कर उन्होंने कहा, 'देखो तो बहू, महेंद्र ने क्या लिखा है?'

काँपते हुए हाथों से आशा ने बाहर जा कर रोशनी में चिट्ठी खोल कर पढ़ी। उसने लिखा था, इधर कुछ दिनों से तबीयत उचाट है, इसलिए वह घूमने के लिए पछाँह जा रहा है। माँ की बीमारी के लिए खास कोई चिंता की बात नहीं। उन्हें बराबर देखने के लिए नवीन डॉक्टर से कह दिया है। रात को उन्हें नींद न आए या सिर-दर्द हो तो क्या करना होगा, यह भी उसने लिखा था। साथ ही दवाखाने से मँगा कर उसने हल्के और ताकतवर पथ्य के दो डिब्बे भी भेज दिए थे। फिलहाल गिरीडीह के पते पर माँ का हाल लिखने के लिए चिट्ठी में 'पुनश्च' में अनुरोध किया था। चिट्ठी पढ़ कर आशा स्तम्भित हो गई - एक जबरदस्त धिक्कार ने उसके दुःख को छिपा लिया। यह कठोर समाचार वह माँ को किस तरह सुनाए?

आशा के इस विलंब से राजलक्ष्मी बहुत ही उतावली हो उठीं। बोलीं- 'बहू, मुझे बताओ, महेंद्र ने क्या लिखा है?'

आशा ने आखिर अंदर बैठ कर शुरू से आखिर तक चिट्ठी पढ़ सुनाई। राजलक्ष्मी ने कहा - 'अपनी तबीयत के बारे में उसने क्या लिखा है, जरा वह जगह फिर से पढ़ो तो...'

आशा ने फिर से पढ़ा - 'इधर कुछ दिनों से तबीयत उचाट-सी चल रही थी, इसीलिए मैं...'

राजलक्ष्मी - 'बस, बस, रहने दो। उचाट न हो तबीयत, क्या हो! बुढ़ी माँ मरती भी नहीं और बीमार हो कर उसे तंग करती है। तुम मेरी बीमारी को कहने उससे क्यों गई?' कह कर वह बिस्तर पर लेट गई।

बाहर जूतों की चरमराहट हुई। बैरे ने कहा - 'डॉक्टर आए हैं।'

खाँस कर डॉक्टर साहब अंदर आए। घूँघट निकाल कर आशा पलंग की आड़ में हो गई। डॉक्टर ने पूछा - 'आपको शिकायत क्या है, यह तो कहें।'

राजलक्ष्मी झुँझला कर बोलीं- 'शिकायत क्यों होगी? किसी को मरने भी न देंगे। आपकी दवा से ही क्या मैं अमर हो जाऊँगी?'

डॉक्टर ने दिलासा देते हुए कहा - 'अमर चाहे न कर पाऊँ, तकलीफ घटे, इसकी कोशिश तो...

'राजलक्ष्मी कह उठीं - 'तकलीफ की दवा तभी होती थी, जब विधवाएँ जल मरती थीं। अब तो बाँध कर मारना ठहरा। आप जाएँ डॉक्टर साहब, मुझे तंग न करें - मैं अकेली रहना चाहती हूँ।'

डॉक्टर ने डर कर कहा - 'जरा आपकी नब्ज...'

राजलक्ष्मी ने खीझ कर कहा - 'मैं कह रही हूँ, आप जाइए... मेरी नब्ज सही है - यह खतरा नहीं कि यह जल्दी छूटेगी।'

लाचार हो कर डॉक्टर कमरे से बाहर चला गया। उसने आशा को बुलाया। उससे बीमारी का सारा ब्यौरा पूछा। सब-कुछ सुन कर गंभीर-सा हो कर वह फिर कमरे में गया। बोला - 'महेंद्र मुझ पर आपके इलाज का भार सौंप गया है। अगर आप इलाज न कराएँगी, तो उसे दुःख होगा।'

महेंद्र को दुःख होगा, यह बात राजलक्ष्मी को मजाक जैसी लगी। उन्होंने कहा - 'महेंद्र की इतनी फिक्र न करें आप। दुनिया में हर किसी को दुःख भोगना पड़ता है। आप जाएँ, मुझे सोने दें।'

डॉक्टर ने समझा, बीमार को ज्यादा तंग करना ठीक नहीं। वह बाहर निकला और जो कुछ करना था, आशा को बता दिया।

आशा जब कमरे में लौटी, तो राजलक्ष्मी बोलीं - 'तुम जरा आराम कर लो जा कर, बिटिया! तमाम दिन मरीज के पास बैठी हो! हारू की माँ से कह दो, बगल के कमरे में बैठेगी।'

आशा राजलक्ष्मी को समझती थी। यह उनके स्नेह का आग्रह नहीं, आदेश था - इसे मान लेने के सिवा चारा नहीं। उसने हारू की माँ को भेज दिया था और अपने कमरे में नीचे लेट गई।

दिन-भर उसने खाया-पिया नहीं। तकलीफ भी थी। उसका तन-मन चूर-चूर हो गया था। उस दिन पड़ोस में दिन में ब्याह के बाजे बजते रहे। अभी फिर शहनाई पर धुन छिड़ी। उस रागिनी से चोट खा कर रात का अँधेरा काँप कर आशा पर बार-बार आघात करने लगा। उसके अपने विवाह के दिन की छोटी-से-छोटी घटना भी सजीव हो उठी और सबने मिल कर रात के आसमान को स्वप्न की छवि से पूर्ण कर दिया। उस दिन की रोशनी, चहल-पहल, भीड़, उस दिन का माला-चन्दन, नए वस्त्र और यज्ञ के धुँएँ की खुशबू; नववधू के शंकित, लज्जित, आनन्दित हृदय का निगूढ़ कंपन - सब कुछ ने स्मृति का रूप लेकर चारों ओर से जितना ही उसे घेर लिया, उतनी ही हृदय की पीड़ा जीवन्त होकर जोर डालने लगी। घोर अकाल के दिनों में भूखा बच्चा जैसे भोजन के लिए माँ को मारने लगता है, वैसे ही सुख की स्मृतियाँ अपने खाद्य के लिए रोती हुई आशा की छाती में थपेड़े लगाने लगी। इस स्थिति ने आशा को चैन से न लेटने दिया। वह दोनों हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करने लगी कि दुनिया में उसकी एक-मात्र देवी उसकी मौसी की पावन स्निग्ध मूर्ति उसके हृदय में जाग पड़ी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि तपस्विनी को वह फिर से संसार के झमेलों में नहीं खींचेगी। कमरे में रोशनी जला कर वह कागज लिए लगातार आँसू पोंछती हुई लिखने बैठ गई -

'पूजनीय मौसी,

तुम्हारे सिवाय आज मेरा कोई नहीं। एक बार आओ और अपनी इस दुखिया को अपनी गोद में उठा लो, वरना मैं जिऊँगी कैसे! क्या लिखूँ, नहीं जानती। चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

तुम्हारी प्यारी

चुन्नी'

## 47

अन्नपूर्णा काशी से आई। धीरे-धीरे राजलक्ष्मी के कमरे में जा कर उन्हें प्रणाम करके उनके चरणों की धूल माथे ली। बीच में इस बिलगाव के बावजूद अन्नपूर्णा को देख कर राजलक्ष्मी ने मानो कोई खोई निधि पाई। उन्हें लगा, वे मन के अनजान ही अन्नपूर्णा को चाह रही थीं। इतने दिनों के बाद आज पल-भर में ही यह बात स्पष्ट हो उठी कि उनको इतनी वेदना महज इसलिए थी कि अन्नपूर्णा न थीं। एक पल में उसके दुखी चित्ता ने अपने चिरंतन स्थान पर अधिकार कर लिया। महेंद्र की पैदाइश से भी पहले जब इन दिनों जिठानी-देवरानी ने वधू के रूप में इस परिवार के सारे सुख-दुःखों को अपना लिया था - पूजा-त्योहारों पर, शोक-मृत्यु में दोनों ने गृहस्थी के रथ पर साथ-साथ यात्रा की थी - उन दिनों के गहरे सखीत्व ने राजलक्ष्मी के हृदय को आज पल-भर में आच्छन्न कर लिया। जिसके साथ सुदूर अतीत में उन्होंने जीवन का आरंभ किया था - तरह-तरह की रुकावटों के बाद बचपन की सहचरी गाढ़े दुःख के दिनों के उनकी बगल में खड़ी हुई। यह एक घटना उनके मौजूदा सुख-दुःखों, प्रिय घटनाओं में स्मरणीय हो गई। जिसके लिए राजलक्ष्मी ने इसे भी बेरहमी से चोट पहुँचाई थी, वह आज कहाँ है!

अन्नपूर्णा बीमार राजलक्ष्मी के पास बैठ कर उनका दायाँ हाथ अपने हाथ में लेती हुई बोलीं- 'दीदी!'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मँझली!'

उनसे और बोलते न बना। आँखों में आँसू बहने लगे। यह दृश्य देख कर आशा से न रहा गया। वह बगल के कमरे में जा कर जमीन पर बैठ कर रोने लगीं। राजलक्ष्मी या आशा से अन्नपूर्णा महेंद्र के बारे में कुछ पूछने का साहस न कर सकीं। साधुचरण को बुला कर पूछा - 'मामा, महेंद्र कहाँ है?'

मामा ने महेंद्र और विनोदिनी का सारा किस्सा कह सुनाया। अन्नपूर्णा ने पूछा - 'बिहारी कहाँ है?'

साधुचरण ने कहा - 'काफी दिनों से वे इधर आए नहीं। उनका हाल ठीक-ठीक नहीं बता सकता।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'एक बार बिहारी के यहाँ जा कर खोज-खबर तो ले आइए!'

साधुचरण ने उसके यहाँ से लौट कर बताया- 'वे घर पर नहीं हैं, अपने बाली वाले बगीचे में गए हैं।'

अन्नपूर्णा ने डॉक्टर नवीन को बुला कर मरीज की हालत के बारे में पूछा। डॉक्टर ने बताया, 'दिल की कमजोरी के साथ ही उदरी हो आई है, कब अचानक चल बसें, कहना मुश्किल है।'

शाम को राजलक्ष्मी की तकलीफ बढ़ने लगी। अन्नपूर्णा ने पूछा - 'दीदी, नवीन डॉक्टर को बुलवा भेजूँ?'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'नहीं बहन, नवीन डॉक्टर के करने से कुछ न होगा।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'तो फिर किसे बुलवाना चाहती हो तुम?'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'एक बार बिहारी को बुलवा सको, तो अच्छा हो।'

अन्नपूर्णा के दिल में चोट लगी। उस दिन काशी में उन्होंने बिहारी को दरवाजे पर से ही अँधेरे में अपमानित करके लौटा दिया था। वह तकलीफ वे आज भी न भुला सकी थीं। बिहारी अब शायद ही आए। उन्हें यह उम्मीद न थी कि इस जीवन में उन्हें अपने किए का प्रायश्चित्त करने का कभी मौका मिलेगा।

अन्नपूर्णा एक बार छत पर महेंद्र के कमरे में गई। घर-भर में यही कमरा आनंद-निकेतन था। आज उस कमरे में कोई श्री नहीं रह गई थी - बिछौने बेतरतीब पड़े थे। साज-सामान बिखरे हुए थे, छत के गमलों में कोई पानी नहीं डालता था, पौधे सूख गए थे।

आशा ने देखा, मौसी छत पर गई हैं। वह भी धीरे-धीरे उनके पीछे-पीछे गई। अन्नपूर्णा ने उसे खींच कर छाती से लगाया और उसका माथा चूमा। आशा ने झुक कर दोनों हाथों से उनके पाँव पकड़ लिए। बार-बार उनके पाँवों से अपना माथा लगाया। बोली - 'मौसी, मुझे आशीर्वाद दो, बल दो। आदमी इतना कष्ट भी सह सकता है, मैंने यह कभी सोचा तक न था। मौसी, इस तरह कब तक चलेगा?'

अन्नपूर्णा वहीं जमीन पर बैठ गई। आशा उनके पैरों पर सिर रख कर लोट गई। अन्नपूर्णा ने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और चुपचाप देवता को याद करने लगीं।

जमाने के बाद अन्नपूर्णा के स्नेह-सने मौन आशीर्वाद ने आशा के मन में बैठ कर शांति का संचार किया। उसे लगा, उसकी मनोकामना पूरी हो गई है। देवता उस-जैसी नादान की उपेक्षा कर सकते हैं, मगर मौसी की प्रार्थना

नहीं ठुकरा सकते।

मन में दिलासा और बल पा कर आशा बड़ी देर के बाद एक लंबा निःश्वास छोड़ कर उठ बैठी। बोली - 'मौसी, बिहारी भाई साहब को आने के लिए चिट्ठी लिख दो!'

अन्नपूर्णा बोली - 'उँहूँ, चिट्ठी नहीं लिखूँगी।'

आशा - 'तो उन्हें खबर कैसे होगी?'

अन्नपूर्णा बोली - 'मैं कल खुद उससे मिलने जाऊँगी।'

## 48

जिन दिनों बिहारी पश्चिम में भटकता फिर रहा था, उसके मन में आया, 'जब तक कोई काम ले कर न बैठूँ चैन न मिलेगा।' यही सोच कर उसने कलकत्ता के गरीब किरानियों के मुफ्त इलाज और सेवा-जतन का भार उठाया। गर्मी के दिनों में डाबर की मछलियाँ जिस तरह कम पानी और कीचड़ में किसी प्रकार जिंदा रह लेती हैं, तंग गलियों के सँकरे कमरों में परिवार का बोझ उठाने वाले बेचारे किरानियों की जिन्दगी वैसी ही है - उन दुबले, पीले पड़े, चिंता से पिसने वाले भद्रवर्ग के लोगों के प्रति बिहारी को बहुत पहले ही दया हो आई थी - इसलिए उसने उन्हें बगीचे की छाँह और गंगा-तट की खुली हवा दान देने का संकल्प किया।

बाली में उसने बगीचा खरीदा और चीनी कारीगरों से छोटे झोपड़े बनवाने शुरू किए। लेकिन मन को राहत न मिली। काम में लगने का दिन ज्यों-ज्यों करीब आने लगा, उसका मन अपने निश्चय से डिगने लगा। बार-बार उसका मन यही कहने लगा - 'इस काम में कोई सुख नहीं, रस नहीं, सौंदर्य नहीं - यह महज एक नीरस भार है।' काम की कल्पना ने इसके पहले कभी भी बिहारी को इतना परेशान नहीं किया।

कभी ऐसा भी था कि बिहारी को खास कोई जरूरत ही न थी, जो कुछ भी सामने आ जाता, उसी में वह सहज ही अपने को लगा सकता था। अब उसके मन में न जाने कौन-सी भूख जगी है, उसे बुझा लेने के पहले और किसी भी चीज में उसकी आसक्ति नहीं होती। जैसी शुरू से आदत रही है, इस-उस में हाथ डाल कर देखता और दूसरे ही क्षण उसे छोड़ कर छुटकारा पाना चाहता!

बिहारी के अंदर जो जवानी निश्चय सोई पड़ी थी, जिसके विषय में उसने कभी सोचा तक नहीं, वह जवानी विनोदिनी की जादू की छड़ी छूकर जाग उठी है। अभी-अभी पैदा हुए गरुड़ की तरह अपनी खुराक के लिए वह सारी दुनिया को झिंझोड़ती फिर रही है। इस भूखे जीव से बिहारी को पहले पहचान न थी - इसके चलते वह परेशान हो उठा है, अब कलकत्ता के इन दीन-दुर्बल अल्पायु किरानियों को लेकर वह क्या करेगा?

सामने आषाढ़ की गंगा। रह-रहकर उस पार नीले मेघों की पनी पाँत भी से झुके पेड़-पौधों पर घिर आती-नदी का पाट कहीं तो इस्पात की तलवार-सा चमकता, श्याम रंग लेता, कहीं आग-जैसा झकमका उठता। वर्षारंभ के इस समारोह पर बिहारी की ज्यों ही निगाह पड़ती, त्यों ही उसके हृदय का दरवाजा खोलकर आकाश की इस नीली



आभा में न जाने कौन एकाकिनी बाहर निकल पड़ती, वर्षा का आकाश चीरकर छिटकी पड़ती सारी किरणों को बीनकर न जाने कौन केवल उसी के मुँह पर अपलक आँखों की दमकती हुई कातरता बिखरेती।

बिहारी का जो पिछला जीवन सुख और सन्तोष से कट गया, उसे वह अब भारी नुकसान समझता। ऐसी मेघघिरी साँझ जाने कितनी आई, पूर्णिमा की कितनी रातें - वे सब हाथों में अमृत का पात्र लिए बिहारी के सूने हृदय के द्वार से चुपचाप लौट गई - उन दुर्लभ शुभ घड़ियों में कितने गीत घुटे रहे, कितने उत्सव न हो पाए, इसकी कोई हद नहीं। बिहारी के मन में जो पुरानी सुधियाँ थीं, उन्हें विनोदिनी ने उद्यत चुंबन की रक्तिम आभा से ऐसा फीका और तुच्छ कर दिया था। जीवन के ज्यादातर दिन महेंद्र की छाया में कटे! उनकी सार्थकता क्या थी? प्रेम की वेदना में सारे जल-थल-आकाश के केन्द्र-कुहर से ऐसी ताप में इस तरह बाँसुरी बजती है, यह तो अचेतन बिहारी कभी सोच भी न पाया था। विनोदिनी ने बिहारी को बाँहों में लपेट कर अचानक एक पल में जिस अनोखे सौंदर्य-लोक में पहुँचा दिया, उसे वह कैसे भूले! उसकी निगाह, उसकी चाहना आज सब ओर फैल गई है, उसकी अकुलाई साँसें बिहारी के रक्त-प्रवाह को पल-पल पर लहराए दे रही हैं और उसके परस की कोमल आँच बिहारी को घेरकर उसके पुलकित हृदय को फूल की तरह खिलाए हुए है।

लेकिन फिर भी उस विनोदिनी से बिहारी आज इस तरह दूर क्यों है? इसलिए कि विनोदिनी ने जिस सौंदर्य-रस से बिहारी का अभिषेक किया उस सौंदर्य के अनुकूल संसार में विनोदिनी से किसी संबंध की वह कल्पना नहीं कर सकता। कमल को तोड़ो तो कीच भी उठ आती है। क्या बताकर, कौन-सी ऐसी जगह में उसे बिठाए कि सुन्दर वीभत्स न हो। फिर कहीं महेन्द्र से छीना-झपटी होने लगे, तो माजरा इतना घिनौना हो उठेगा, जिसकी सम्भावना को बिहारी मन के कोने में भी जगह देने को तैयार नहीं। इसीलिए एकान्त गंगा-तट पर विश्व-संगीत के बीच अपनी मानसी प्रतिमा को बिठाकर वह अपने हृदय को धूप-सा जला रहा है। चिढ़ी भेजकर वह इसलिए विनोदिनी की खोज-खबर भी नहीं लेना चाहता कि कहीं कोई ऐसी खबर न मिल जाए, जिससे उसके सुख के सपनों का जाल बिखर जाय!

अपने बगीचे के दक्खिन में फले जामुन-तले बिहारी मेघ-घिरे प्रभात में चुपचाप पड़ा था, सामने से कोठी की डोंगी आ-जा रही थीं। अलसाया-सा वह उसी को देख रहा था। वेला धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। नौकर ने आ कर पूछा, 'भोजन का प्रबंध करे या नहीं?' बिहारी ने कहा - 'अभी रहने दो।'

इतने में उसने चौंक कर देखा, सामने अन्नपूर्णा खड़ी है। बदहवास-सा वह उठ पड़ा, दोनों हाथों से उनके पाँव पकड़ कर जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम किया। अन्नपूर्णा ने बड़े स्नेह से अपने दाएँ हाथ से उसके बदन और माथे को छुआ। भर आए से स्वर में पूछा - 'तू इतना दुबला क्यों हो गया है, बिहारी?'

बिहारी ने कहा - 'ताकि तुम्हारा स्नेह पा सकूँ।'

सुन कर अन्नपूर्णा की आँखें बरस पड़ीं। बिहारी ने व्यस्त हो कर पूछा - 'तुमने अभी भोजन नहीं किया है, चाची?'

अन्नपूर्णा बोली - 'अभी मेरे खाने का समय नहीं हुआ।'

बिहारी बोला - 'चलो-चलो, मैं रसोई की जुगत किए देता हूँ। एक युग के बाद तुम्हारे हाथ की रसोई पत्तल का प्रसाद पा कर जी जाऊँगा मैं।'

महेंद्र और आशा के बारे में बिहारी ने कोई चर्चा नहीं की। इसका दरवाजा तो एक दिन खुद अन्नपूर्णा ने ही अपने हाथों बंद कर दिया था। मान में भर कर उसने उसी निष्ठुर निषेध का पालन किया।

खा चुकने के बाद अन्नपूर्णा ने कहा - 'घाट पर नाव तैयार है बिहारी, चल, कलकत्ता चल!'

बिहारी बोला - 'कलकत्ता से मेरा क्या लेना-देना।'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'दीदी बहुत बीमार है, वे तुम्हें देखना चाहती हैं एक बार।'

सुन कर बिहारी चौंक उठा। पूछा - 'और महेंद्र भैया?'

अन्नपूर्णा - 'वह कलकत्ता में नहीं है, बाहर गया है।'

सुनते ही बिहारी का चेहरा सफेद पड़ गया। वह चुप रहा।

अन्नपूर्णा ने पूछा - 'तुझे क्या मालूम नहीं है सारा किस्सा?'

बिहारी बोला - 'कुछ तो मालूम है, अंत तक नहीं।'

इस पर अन्नपूर्णा ने विनोदिनी को ले कर महेंद्र के भाग जाने का किस्सा बताया। बिहारी की निगाह में जल-थल-आकाश का रंग ही बदल गया, उसकी कल्पना के खजाने का सारा रस सुनते ही कड़वा हो गया - 'तो क्या वह मायाविनी उस दिन शाम को मेरे साथ खेल खेल गई? उसका प्रेम-निवेदन महज मक्कारी था! वह अपना गाँव छोड़ कर बेहया की तरह महेंद्र के साथ भाग गई! विश्वास है उसको, और धिक् हूँ मैं कि मैंने एक पल के लिए भी उसका विश्वास किया। हाय री मेघ-घिरी साँझ, हाय री बारिश-खुली पूनो की रात, तुम्हारे जादू के करिश्मे कहाँ गए!'

## 49

बिहारी सोच रहा था, दुखिया आशा की ओर वह देखेगा कैसे! डयोढ़ी के अंदर कदम रखते ही स्वामीहीन घर की घनीभूत पीड़ा उसे दबोच बैठी। घर के नौकर-दरबानों की ओर ताकते हुए बौराए हुए महेंद्र के भाग जाने की शर्म ने उसके सिर को गाड़ दिया। पुराने और जाने-पहचाने नौकरों से उसने पहले की तरह मुलायमियत से कुशल-क्षेम न पूछी। हवेली में जाने को मानो उसके कदम नहीं उठ रहे थे। दुनिया के सामने खुले-आम महेंद्र बेबस आशा को जिस गहरे अपमान में छोड़ गया है, जो अपमान औरत के सबसे बड़े परदे को उघाड़ कर उसे सारी दुनिया की कौतूहल-भरी कृपा-दृष्टि के बीच खड़ा कर देता है, उसी अपमान के आवरणहीन स्वरूप में बिहारी सकुचाई और दुखित आशा को कौन-से प्राण ले कर देखेगा!

लेकिन इन चिंताओं और संकोच का मौका ही न रहा। हवेली में पहुँचते ही आशा दौड़ी-दौड़ी आई और बिहारी से बोली - 'भाई साहब, जरा जल्दी आओ, माँ को देखो जल्दी!'

बिहारी से आशा की खुल कर बातचीत ही पहली थी। दुर्दिन का मामूली झटका सारी रुकावटों को उड़ा ले जाता है - जो दूर-दूर रहते हैं, बाढ़ उन सबको अचानक एक सँकरी जगह में इकट्ठा कर देती है।

आशा की इस संकोचहीन अकुलाहट से बिहारी को चोट लगी। इस छोटे-से वाकए से ही वह समझ सका कि महेंद्र अपनी गिरस्ती की कैसी मिट्टी पलीद कर गया है।

बिहारी राजलक्ष्मी के कमरे में गया। अचानक साँस की तकलीफ हो जाने से राजलक्ष्मी फीकी पड़ गई थीं - लेकिन वह तकलीफ ज्यादा देर नहीं रही, इसलिए सँभल गई।

बिहारी ने राजलक्ष्मी को प्रणाम किया। चरणों की धूल ली। राजलक्ष्मी ने उसे पास बैठने का इशारा किया और धीरे-धीरे कहा - 'कैसा है बिहारी? जाने कितने दिनों से तुझे नहीं देखा!'

बिहारी ने कहा - 'तुमने अपनी बीमारी की खबर क्यों नहीं भिजवाई? फिर क्या मैं जरा भी देर कर पाता।'

राजलक्ष्मी ने धीमे से कहा - 'यह क्या मुझे मालूम नहीं, बेटे! तुझे कोख में नहीं रखा मैंने, लेकिन तुझसे बढ़ कर मेरा अपना क्या दुनिया में है कोई?'

कहते-कहते राजलक्ष्मी की आँखों से आँसू बहने लगे। बिहारी झट-पट उठा। ताखों पर दवा-दारू की शीशियों को देखने के बहाने उसने अपने-आपको जब्त किया। उसके बाद आ कर उसने राजलक्ष्मी की नब्ज देखनी चाही। राजलक्ष्मी बोलीं - 'मेरी नब्ज को छोड़ - मैं पूछती हूँ, तू इतना दुबला क्यों हो गया है?'

अपने दुबले हाथों से राजलक्ष्मी ने बिहारी की गर्दन की हड्डी छू कर देखी।

बिहारी ने कहा - 'जब तक तुम्हारे हाथ की रसोई नसीब नहीं होती, यह हड्डी ढँकने की नहीं। तुम जल्दी ठीक हो जाओ माँ, मैं इतने में रसोई का इंतजाम कर रखता हूँ।'

राजलक्ष्मी फीकी हँसी हँस कर बोलीं - 'हाँ, जल्दी-जल्दी इंतजाम कर, बेटे। तेरी देख-रेख के लिए कोई भी नहीं है। अरी ओ मँझली, तुम लोग अब बिहारी की शादी करा दो, देखो न, इसकी शक्ल कैसी हो गई है।'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'तुम चंगी हो लो, दीदी - यह तो तुम्हारी ही जिम्मेदारी है।'

राजलक्ष्मी बोलीं - 'मुझे अब यह मौका न मिलेगा। बहन, बिहारी का भार तुम्हीं लोगों पर रहा, इसे तुम लोग सुखी रखना। मैं इसका ऋण नहीं चुका सकी, लेकिन भगवान भला करे इसका।' यह कह कर उन्होंने बिहारी के माथे पर अपना दायाँ हाथ फेर दिया।

आशा से कमरे में न रहा गया। वह रोने के लिए बाहर चली गई। अन्नपूर्णा ने भरी हुई आँखों से बिहारी को स्नेह-भरी दृष्टि से देखा।

राजलक्ष्मी को अचानक न जाने क्या याद आ गया। बोलीं - 'बहू, अरी ओ बहू!' आशा के अंदर आते ही बोलीं - 'बिहारी के खाने का इंतजाम किया या नहीं?'

बिहारी बोला - 'तुम्हारे इस पेटू को सबने पहचान लिया है, माँ। ड्योढ़ी पर आते ही नजर पड़ी, अंडे वाली मछलियाँ लिए वैष्णवी जल्दी-जल्दी अंदर जा रही है, मैं समझ गया, अभी इस घर से मेरी ख्याति मिटी नहीं है।'

और बिहारी ने हँस कर आशा की ओर देखा।

आशा आज शर्माई नहीं। स्नेह से हँसते हुए उसने यह दिल्लगी कबूल की। इस घर के लिए बिहारी क्या है, पहले आशा यह पूरी तरह न जानती थी - बहुत बार एक बे-मतलब का मेहमान समझ कर उसने उसकी उपेक्षा की है, बहुत बार उसकी यह बेरुखी उसके व्यवहार में साफ झलक पड़ी है। उसी अफसोस से धिक्कार से उसकी श्रद्धा और करुणा की तरफ तेजी से उमड़ पड़ी है।

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मँझली बहू, यह महाराज के बस की बात नहीं, रसोई की निगरानी तुम्हें करनी पड़ेगी। काफी कड़वा न हो तो अपने इस 'बाँगाल' लड़के को खाना नहीं रुचता।'

बिहारी बोला - 'माँ, तुम्हारी माँ विक्रमपुर की लड़की थीं और तुम नदिया जिले के एक भले घर के लड़के को बाँगाल 1 कहती हो! मुझे यह बर्दाश्त नहीं।'

इस पर काफी दिल्लगी रही। बहुत दिनों के बाद महेन्द्र के घर की मायूसी का भार मानो हल्का हो गया।

इतनी बातें होती रहीं, मगर किसी भी तरफ से किसी ने भी महेन्द्र का नाम न लिया। पहले बिहारी से महेन्द्र की चर्चा ही राजलक्ष्मी की एकमात्र बात हुआ करती थी। महेन्द्र ने अपनी माँ का इसके लिए बहुत बार मजाक भी उड़ाया है। आज उसी राजलक्ष्मी की जबान पर भूल कर भी महेन्द्र का नाम न आते देख कर बिहारी दंग रह गया।

राजलक्ष्मी को झपकी लग गई। बाहर जा कर बिहारी ने अन्नपूर्णा से कहा - 'माँ की बीमारी तो सहज नहीं लगती।'

अन्नपूर्णा बोली - 'यह तो साफ ही देख रही हूँ।' कह कर अन्नपूर्णा खिड़की के पास बैठ गई।

बड़ी देर चुप रह कर बोली - 'महेन्द्र को तू खोज नहीं लाएगा, बेटे! अब तो देर करना वाजिब नहीं जँचता।'

बिहारी कुछ देर चुप रहा, फिर बोला - 'जो हुकम करोगी, वह करूँगा। उसका पता मालूम है किसी को?'

अन्नपूर्णा - 'पता ठीक-ठीक किसी को मालूम नहीं, ढूँढ़ना पड़ेगा। और एक बात तुमसे कहूँ - आशा का खयाल करो। अगर विनोदिनी के चंगुल से महेन्द्र को तू न निकाल सका, तो वह जिंदा न रहेगी।'

मन-ही-मन तीखी हँसी हँस कर बिहारी ने सोचा, 'मैं दूसरे का उद्धार करूँ - भगवान, मेरा उद्धार कौन करे!' बोला - 'विनोदिनी के जादू से महेन्द्र को सदा के लिए बचा सकूँ, मैं ऐसा कौन-सा मंत्र जानता हूँ, चाची!'

1. पूर्वी बंगाल के लोगों को बंगाल में मजाक में 'बाँगाल' कहते हैं।

इतने में मैली-सी धोती पहने आधा घूँघट निकाले आशा अपनी मौसी के पाँवों के पास आ बैठी। उसने समझा था, दोनों में राजलक्ष्मी की बीमारी के बारे में बातें हो रही हैं इसीलिए चली आई। पतिव्रता आशा के चेहरे पर गुम-सुम दुःख की मौन महिमा देख कर बिहारी के मन में एक अपूर्व भक्ति का संचार हुआ। शोक में गर्म आँसू से सिंच कर

इस तरुणा ने पिछले युग की देवियों-जैसी एक अटूट मर्यादा पाई है - अब वह मामूली नारी नहीं, दारुण दुःख से वह मानो पुराणों की साध्वी स्त्रियों की उम्र पा गई है।

राजलक्ष्मी की दवा और पथ्य के बारे में आशा से बातें करके बिहारी ने उसे वहाँ से जब विदा किया, तो एक उसाँस भर कर उसने अन्नपूर्णा से कहा - 'महेन्द्र को मैं उस चंगुल से निकलूँगा।'

बिहारी महेन्द्र के बैंक में गया। वहाँ उसे पता चला महेन्द्र इन दिनों उनकी इलाहाबाद शाखा से लेन-देन करता है।

## 50

स्टेशन जा कर विनोदिनी औरतों वाले इयोढ़े दर्जे के डिब्बे में जा बैठी। महेन्द्र ने कहा, 'अरे, कर क्या रही हो, मैं तुम्हारा दूसरे दर्जे का टिकट ले रहा हूँ।' वह बोली, 'बेजा क्या है, यहाँ आराम से ही रहूँगी।' महेन्द्र ताज्जुब में पड़ गया। विनोदिनी स्वभाव से ही शौकीन थी। गरीबी का कोई भी लक्षण उसे न सुहाता था। अपनी गरीबी को वह अपने लिए अपमानजनक ही मानती थी। महेन्द्र ने इतना समझ लिया था कि कभी उसके घर की खुशहाली, विलास की सामग्रियों और औरों की अपेक्षा उनके धनी होने के गौरव ने ही विनोदिनी के मन को आकर्षित किया था। इस धन-दौलत की, इस सारे आराम और गौरव की वह सहज ही मालकिन हो सकती थी, इस कल्पना ने उसे बड़ा उत्तेजित कर दिया था। आज जब उसको महेन्द्र पर प्रभुत्व पाने का मौका मिला है, अनचाहे भी वह उसकी धन-दौलत को अपने काम में ला सकती है, तो वह क्यों ऐसी असह्य उपेक्षा से यों तन कर तकलीफदेह शर्मनाक दीनता अपना रही है? वह महेन्द्र पर कम-से-कम निर्भर रहना चाह रही थी। जिस उन्मत महेन्द्र ने उस जिंदगी-भर के लिए उसके स्वाभाविक आश्रय से अलग कर दिया है, उससे वह ऐसा कुछ भी नहीं लेना चाहती थी, जो उसके इस सर्वनाश की कीमत-सी गिनी जाय। जब तक वह महेन्द्र के यहाँ थी, उसमें वैधव्य की कोई खास कठोरता न थी, लेकिन अब उसने सब तरह के भोग-विलास से अपने को समेट लिया है। अब वह एक जून खाती, मोटा कपड़ा पहनती - और उसकी वह मचलती हुई हँसी-दिल्लगी न जाने कहाँ चली गई! अब वह ऐसी गुम, ऐसी ढँकी-सी, ऐसी दूर ओर भयंकर हो उठी है कि महेन्द्र उससे एक भी बात जोर देकर कहने का साहस नहीं कर सकता। अधीर होकर, क्रोधित होकर और ताज्जुब में पड़कर महेन्द्र बार-बार यही सोचने लगा कि इतनी कोशिशों के बाद इसने मुझे एक दुर्लभ फल की तरह इतनी ऊँची टहनी से तोड़ लिया है तो फिर वह मुझे सूँघे बिना मिट्टी में क्यों फेंके दे सही है!

महेन्द्र ने पूछा - "कहाँ का टिकट लूँ, कहो!"

महेन्द्र ने पूछा - 'पछाँह की तरफ जहाँ भी चाहे, चलो! सुबह जहाँ गाड़ी रुकेगी उतर पड़ेंगे।'

महेन्द्र को ऐसी यात्रा में कोई आकर्षण नहीं। आराम न मिले तो तकलीफ होती है। बड़े शहर में रहने की इच्छित जगह न मिले तो मुश्किल। इधर मन में यह डर लगा रहा कि विनोदिनी चुपचाप कहीं उतर न पड़े।

इस तरह विनोदिनी शनि ग्रह की तरह घूमने और महेन्द्र को घुमाने लगी। कहीं भी चैन न लेने दिया। विनोदिनी बड़ी जल्दी दूसरे को अपना बना सकती है। कुछ ही देर में हमसफरों से मिताई कर लेती। जहाँ जाना होता वहाँ की सारी बातों का अता-पता लगा लेती, रात्रिशाला में ठहरती और जहाँ जो कुछ देखने जैसा होता, उन बंधुओं की

मदद से देखती। अपनी आवश्यकता से महेंद्र विनोदिनी के आगे रोज-रोज अपने को बेकार समझने लगा। टिकट लेने के सिवाय कोई काम नहीं। शुरू-शुरू के कुछ दिनों तक वह विनोदिनी के साथ-साथ चक्कर काटा करता था, लेकिन धीरे-धीरे वह असह्य हो गया। खा-पी कर वह सो जाने की फिक्र में होता, विनोदिनी तमाम दिन घूमा करती। माता के लाड़ में पला महेंद्र यों भी चल सकता है, कोई सोचता भी न था।

एक दिन इलाहाबाद स्टेशन पर दोनों गाड़ी का इंतजार कर रहे थे। किसी वजह से गाड़ी आने में देर हो रही थी। इस बीच और जो गाड़ियाँ आ-जा रही थीं, विनोदिनी उनके मुसाफिरों को गौर से देख रही थी। शायद उसे यह उम्मीद थी कि पछाँह में घूमते हुए चारों तरफ देखते-देखते अचानक किसी से भेंट हो जाएगी। कम-से-कम रूँधी गली के सुनसान घर में बेकार की तरह बैठ कर अपने को घोंट मारने की अपेक्षा खोज-बीन में, इस खुली राह की चहल-पहल में शांति थी।

अचानक उधर काँच के एक बक्स पर नजर पड़ते ही विनोदिनी चौंक उठी। उसमें उन लोगों की चिट्ठियाँ रखी जाती हैं, जिनका पता नहीं चलता। उसी बक्स के पत्रों में से एक में उसने बिहारी का नाम देखा। बिहारी नाम कुछ असाधारण नहीं। यह समझने की कोई वजह न थी कि यह बिहारी विनोदिनी का ही वांछित बिहारी है - तो भी बिहारी का पूरा नाम देखकर उसके सिवा किसी और बिहारी को संदेह न हुआ। उसने ठिकाना याद कर लिया। महेंद्र एक बेंच पर बड़ा खुश बैठा था। विनोदिनी उसके पास जा कर बोली - 'कुछ दिनों यहीं रहूँगी।'

विनोदिनी अपने इशारे पर महेंद्र को नचा रही थी और फिर भी उसके भूखे-प्यासे मन को खुराक तक न देती थी, इससे उसके पौरुष गर्व को ठेस लग रही थी और उसका मन दिन-प्रतिदिन बागी होता जा रहा था। इलाहाबाद रुक कर कुछ दिन सुस्ताने का मौका मिले तो मानो वह भी जाए - लेकिन इच्छा के अनुकूल होने के बावजूद उसका मन विनोदिनी के खयाल पर राजी होने को सहसा तैयार न हुआ। उसने नाराज हो कर कहा - 'जब निकल ही पड़ा तो जा कर ही रहूँगा, अब लौट नहीं सकता।'

विनोदिनी बोली - 'मैं नहीं जाऊँगी।'

महेंद्र बोला - 'तो तुम अकेली रहो, मैं चलता हूँ।'

विनोदिनी बोली - 'यही सही।' और बेझिझक उसने इशारे से कुली को बुलाया और स्टेशन से चल पड़ी।

पुरुष के कर्तव्य-अधिकार से परिपूर्ण महेंद्र स्याह-सूरत लिए बैठा रह गया। जब तक विनोदिनी आँखों से ओझल न हो गई, वह देखता रहा। बाहर आ कर देखा, विनोदिनी एक बग्घी पर बैठी है। उसने चुपचाप सामान रखवाया और कोच-बक्स पर बैठ गया। अपने अभिमान की मिट्टी पलीद होने के बाद उसमें विनोदिनी के सामने बैठने का मुँह न रहा।

लेकिन गाड़ी चली, तो चली। घंटा-भर बीत गया, शहर छोड़ कर वह खेतों की तरफ जा निकली। गाड़ीवान से पूछने में महेंद्र को संकोच हुआ। शायद गाड़ीवान यह सोचेगा कि असल में अंदर की औरत ही मालकिन है, इस बेकार आदमी से उसने यह भी सलाह नहीं की है कि कहाँ जाना है। वह कड़वा घूँट पी कर चुपचाप कोच-बक्स पर बैठा रहा।

गाड़ी यमुना के निर्जन तट पर सुंदर ढंग से लगाए एक बगीचे के सामने आ कर रुकी। महेन्द्र हैरत में पड़ गया।  
'किसका है यह बगीचा? इसका पता विनोदिनी को कैसे मालूम हुआ?'

फाटक बंद था। चीख-पुकार के बाद बूढ़ा रखवाला बाहर निकला। उसने कहा - 'बगीचे के मालिक धनी हैं, बहुत दूर नहीं रहते। उनकी इजाजत ले आएँ तो यहाँ ठहरने दूँगा।'

विनोदिनी ने एक बार महेन्द्र की तरफ देखा। बगीचे के सुंदर घर को देख कर महेन्द्र लुभा गया था - बहुत दिनों के बाद कुछ दिनों के लिए रुकने की उम्मीद से वह खुश हो गया। विनोदिनी से कहा - 'चलो, उस धनी के पास चलें। तुम बाहर गाड़ी पर रहना, मैं अंदर जा कर किराया तय कर लूँगा।'

विनोदिनी बोली - 'मैं अब चक्कर नहीं काट सकती। तुम जाओ, मैं तब तक यहीं सुस्ताती हूँ। डरने की कोई बात नहीं।'

महेन्द्र गाड़ी ले कर चला गया। विनोदिनी ने उस बूढ़े ब्राह्मण को बुला कर उसके बाल-बच्चों के बारे में पूछा; वे कौन हैं, कहाँ काम करते हैं, बच्चियों की शादी कहाँ हुई है। उसकी स्त्री के देहांत हो जाने की बात सुन कर करुण स्वर में बोली - 'ओह, तब तो तुम्हें काफी तकलीफ है। इस उम्र में दुनिया में निरे अकेले पड़ गए हो, कोई देखने वाला नहीं!'

और बातों-बातों में विनोदिनी ने पूछा - 'यहाँ बिहारी बाबू न थे?'

बूढ़े ने कहा - 'जी हाँ, थे कुछ दिन। माँजी क्या आपको पहचानती हैं?' विनोदिनी बोली - 'वे हमारे अपने ही हैं।'

बूढ़े से बिहारी का जो हुलिया मिला, उसे विनोदिनी को कोई शुभहा न रहा। घर बुला कर उसने सब कुछ पूछ-ताछ लिया कि बिहारी किस कमरे में सोता था, कहाँ बैठता था। उसके चले जाने के बाद से घर बंद पड़ा था, इससे लगा कि उसमें बिहारी की गंध है। लेकिन यह पता न चल सका कि बिहारी गया कहाँ - शायद ही वह फिर लौटे।

महेन्द्र ने किराया चुका कर मालिक से वहाँ रहने की इजाजत ले ली।

## 51

हिमालय की चोटी यमुना को जो बर्फगली अक्षय जल-धारा देती है, उस यमुना में युगों-युगों से कवियों ने जो कवित्व का स्रोत ढाला है, वह भी अक्षय है। उसकी कल-कल में कितने ही अनोखे छन्द गूँजते हैं और उसकी लहरों की लोल लीला में न जाने कितने युगों के पुलकाकुल भावों का आवेग उफन-उफन आता है।

साँझ को महेन्द्र जब उस यमुना के तट पर जा बैठा, तो प्रेम के आवेश ने उसकी नजरों में, साँसों में, नस-नस में, हड्डियों के बीच गाड़े मोह रस का संचार कर दिया आसमान में डूबने सूरज की किरणों किरणों की सुनहरी वीणा वेदना की मूर्च्छना से झरती जोत के संगीत से झंकृत हो उठी!

बारिश जैसा हो रहा था। नदी अपने उद्दाम यौवन में। महेन्द्र के पास निर्दिष्ट कुछ नहीं था। उसे वैष्णव कवियों का वर्षाभिसार याद आया। नायिका बाहर निकली है; यमुना के किनारे वह अकेली खड़ी है। उस पार कैसे जाए? अरे

ओ, पार करो, पार कर दो।' महेंद्र की छाती के अंदर यही पुकार पहुँचने लगी - 'पार करो'।

नदी से उस पार बड़ी दूर पर वह अभिसारिका खड़ी थी - फिर भी महेंद्र उसे साफ देख पाया। उसका कोई काल नहीं, उम्र नहीं, वह चिरंतन गोपबाला है, मगर महेंद्र ने उसे फिर भी पहचान लिया - पहचाना कि वह विनोदिनी है। सारा विरह, सारी वेदना यौवन का सारा भार लिए वह उस युग के अभिसार के लिए चली थी और आज के युग के किनारे आ निकली है। आज के इस सूने यमुना-तट के ऊपर आकाश में वही स्वर सुनाई पड़ रहा है। 'अरे ओ, पार करो, पार कर दो!'

महेंद्र मतवाला हो गया। विनोदिनी उसे ठुकरा देगी, चाँदनी रात के इस स्वर्ग-खंड को वह लक्ष्मी बन कर पूरा न करेगी, वह सोच भी नहीं सका। वह तुरंत उठ कर विनोदिनी को ढूँढ़ने चल दिया।

सोने के कमरे में गया। कमरा फूलों की खुशबू से महमहा रहा था। खुली खिड़कियों से छन कर चाँदनी सफेद बिछौने पर आ पड़ी थी। बगीचे के फूलों से सजी वह बसंत की बिखरी लता-जैसी चाँदनी में बिस्तर पर लेटी हुई थी।

महेंद्र का मोह दुगुना हो गया। उसने रुँधे गले से कहा - 'विनोद, मैं यमुना के तट पर तुम्हारी राह देख रहा था और तुम यहाँ इंतजार कर रही हो, यह संदेशा मुझे चाँद ने दिया। इसी से मैं यहाँ आ गया।'

यह कह कर महेंद्र बिस्तर पर बैठने ही जा रहा था कि विनोदिनी उठ बैठी और दायाँ हाथ बढ़ा कर बोली - 'जाओ; इस बिस्तर पर मत बैठो।' पाल वाली नाव मानो चौर में अटक गई - महेंद्र कहा न माने, इसीलिए विनोदिनी बिस्तर से उतर कर खड़ी हो गई।

महेंद्र ने पूछा - 'तो तुम्हारा यह शृंगार किसके लिए है? किसका इंतजा कर रही हो?'

विनोदिनी ने अपनी छाती को दबा कर कहा - 'मैं जिसके लिए सजी-सँवरी, वह मेरे अंतस्तल में है।'

महेंद्र ने पूछा - 'आखिर कौन? बिहारी।'

विनोदिनी बोली - 'उसका नाम तुम अपनी जबान पर मत लाओ!'

महेंद्र - 'उसी के लिए तुम पछाँह का दौरा कर रही हो?'

विनोदिनी - 'हाँ, उसी के लिए।'

महेंद्र - 'उसका पता मालूम है?'

विनोदिनी - 'मालूम नहीं, मगर जैसे भी हो, मालूम करूँगी।'

महेंद्र - 'तुम्हें यह हर्गिज न मालूम होने दूँगा।'

विनोदिनी - 'न सही, मगर मेरे हृदय से उसे निकाल नहीं पाओगे।'



यह कह कर विनोदिनी ने आँखें बंद करके अपने हृदय में एक बार बिहारी का अनुभव कर लिया।

फूलों से सजी विरह-विधुरा विनोदिनी से एक साथ ही खिंच कर और ठुकराया जा कर महेंद्र अचानक भयंकर हो उठा; वह मुड़ी कस कर बोला - 'छुरी से चीर कर मैं उसे तुम्हारे कलेजे से निकाल बाहर करूँगा।'

विनोदिनी ने दृढ़ता से कहा - 'तुम्हारे प्रेम से तुम्हारी यह छुरी मेरे हृदय में आसानी से घुस सकेगी।'

महेंद्र - 'तुम मुझसे डरती क्यों नहीं? यहाँ तुम्हें बचाने वाला कौन है?'

विनोदिनी - 'बचाने वाले तुम हो! तुम्हीं मुझे अपने से बचाओगे।'

महेंद्र - 'इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास अब भी है!'

विनोदिनी - 'यह न होता तो मैं खुदकुशी कर लेती, तुम्हारे साथ परदेस न आती।'

महेंद्र - 'क्यों न कर ली खुदकुशी? उस विश्वास की फाँस मेरे गले में डाल कर मुझे देश-देशांतर में घसीट कर क्यों मार रही हो? सोच देखो, तुम मर जाती तो कितना कल्याण होता!'

विनोदिनी - 'जानती हूँ, मगर जब तक बिहारी की उम्मीद है, मर न पाऊँगी।'

महेंद्र - 'जब तक तुम नहीं मरती, तब तक मेरी आशा भी नहीं मरने की, मैं भी छुटकारा नहीं पाने का। आज से मैं हृदय से भगवान से तुम्हारी मृत्यु की कामना करता हूँ। तुम मेरी भी न बनो, बिहारी की भी नहीं! जाओ, मुझे मुक्ति दो। मेरी माँ रो रही है, स्त्री रो रही है, उनके आँसू दूर से ही मुझे जला रहे हैं। जब तक तुम मर नहीं जाती, मेरी और दुनिया-भर की आशा से परे नहीं हो जाती, तब तक मुझे उनके आँसू पोंछने का अवसर नहीं मिलेगा।'

इतना कह कर महेंद्र बड़ी तेजी से बाहर निकल गया। अकेली पड़ी विनोदिनी अपने चारों तरफ माया का जाल बुन रही थी, उसे वह फाड़ गया। विनोदिनी खड़ी-खड़ी चुपचाप बाहर देखती रही - आकाश-भरी चाँदनी को खाली करके उसका सारा संचित अमृत कहीं चला गया? वह कारियों वाला बगीचा, उसके बाद रेती-भरा किनारा, उसके बाद नदी का काला-काला पानी, उसके बाद सारा पार का धुंधलापन - सब मानो एक सादे कागज पर पेंसिल का बना चित्र हो - नीरस, बेमानी।

उसने महेंद्र को किस बुरी तरह अपनी ओर खींचा है खौफनाक तूफान की तरह कैसे उसे जड़ समेत उखाड़ लिया है- यह अनुभव करके आज उसका हृदय मानो और भी बेचैन हो गया। उसमें यह सारी शक्ति तो है, फिर भी बिहारी पूर्णिमा की रात में उमड़े हुए समुद्र की तरह उसके सामने आ कर पछाड़ क्यों नहीं खाता? क्यों बे-मतलब प्यार की कचोट रोज उसके ध्यान में आ कर रोती है?

उसे लगा सब बेकार और निरर्थक है। इतनी व्यर्थता के बावजूद जो जहाँ है, वहीं खड़ा है - दुनिया में किसी बात का कोई कार्यक्रम नहीं। सूरज तो कल भी उगेगा और दुनिया अपने छोटे-से काम को भी न भूलेगी। और बिहारी जैसे दूर रहा है, वैसे ही दूर रहेगा और उस ब्राह्मण के बच्चे को किताब का नया पाठ पढ़ाता रहेगा।

उसकी आँखों से आँसू फूट कर झरने लगे। अपनी इच्छा और शक्ति लिए वह किस पत्थर को ढकेल रही है? उसका हृदय लहू से नहा उठा, लेकिन उसकी तकदीर सुई की नोक के बराबर भी न खिसकी।

## 52

रात में महेंद्र सोया नहीं - थकावट के मारे सुबह-सुबह उसे नींद आई। सुबह आठ-नौ बजे के करीब जग कर वह झट उठ बैठा। पिछली रात की कोई अधूरी पीड़ा नींद के भीतर-ही-भीतर घूमती रही थी। सचेतन होते ही महेंद्र उसकी तकलीफ महसूस करने लगा। कुछ ही देर में रात की सारी घटना मन में जाग पड़ी। सुबह की उस धूप में, पूरी नींद न आ पाने की थकावट से सारी दुनिया और जिंदगी बड़ी सूखी-सी लगी। घर छोड़ने की ग्लानि, धर्म छोड़ने का परिताप और इस उद्भ्रांत जीवन की ये जिल्लतें आखिर वह किसके लिए झेल रहा है! मोह के आवेश से रहित सुबह की इस धूप में महेंद्र को लगा, वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता। उसने रास्ते की ओर झाँका - सारी दुनिया परेशान-सी काम के पीछे भाग रही है और आत्म-गौरव को कीचड़ में डुबो कर एक बेरुखी औरत के पैरों से लिपटे रहने की जो नादानी है, वह महेंद्र की निगाहों में स्पष्ट हो उठी। आवेग के किसी बड़े झोंके के बाद हृदय में अवसाद आता है, ऐसे वक्त थका-हारा हृदय अनुभूति के विषय को कुछ समय के लिए दूर हटाना चाहता है। भावों का ऐसा भाटा पड़ने के समय नीचे की सारी छिपी हुई गन्दगी ऊपर आ जाती है-मोह लाने वाली वस्तु से विरक्त हो आती है। महेन्द्र क्यों अपने को इस तरह अपमानित कर रहा है, इसे वह आज न समझ सका। उसने सोचा, 'मैं हर तरह से विनोदिनी से बेहतर हूँ, फिर भी सब प्रकार की हीनता और झिड़कियाँ बर्दास्त करता हुआ घिनौने भिखमंगे-सा उसके पीछे मारा-मारा फिर रहा हूँ-ऐसा अजीब पागलपन किस शैतान ने मेरे दिमाग में भर दिया है।' आज विनोदिनी महेन्द्र के लिए महज एक औरत रह गई, और कुछ नहीं; उसके लिए चारों तरफ फैली धरती की सुषमा से, काव्यों से, कहानियों से लावण्य की जो एक ज्योति खिंच आई थी, उसकी माया-मरीचिका के गायब होते ही वह एक मामूली नारी-मात्र हो रही-उसका कोई अनोखापन न रहा।

फिर तो धिक्कार के इस मार-चक्र से अपने को छुड़ा कर घर जाने के लिए महेंद्र ललक उठा, बिहारी को निर्भर करने योग्य अडिग मिताई बड़ी बेशकीमती लगने लगी। महेंद्र मन-ही-मन कह उठा - 'जो वास्तव, गंभीर और स्थायी होता है, उसमें अनायास, बाधा-विहीन-सा अपने को पूरी तरह खोया जा सकता है, इसीलिए उसके गौरव को हम नहीं समझते। जो महज धोखा है, जिसकी तृप्ति में भी सुख का नाम नहीं, चूँकि वह हमें अपने पीछे घुड़दौड़-सी कराता है, इसलिए हम उसे अपनी चरम कामना का धन समझते हैं।'

महेंद्र ने तय किया - 'मैं आज ही अपने घर जाऊँगा। विनोदिनी जहाँ भी रहना चाहेगी, वहीं उसका इंतजाम करके मैं मुक्त हो जाऊँगा' - यह जोर से उच्चारण करते ही उसके मन में एक आनंद का उदय हुआ। लगातार दुविधा का जो भार वह ढोता चला आ रहा था, हल्का हो गया। अब तक होता ऐसा रहा कि अभी-अभी जो बात उसे रुचती न थी, दूसरे ही क्षण उसे मानने को मजबूर होना पड़ता था, हाँ-ना कहते न बनता; उसकी अंतरात्मा उसे जो आदेश देती, सदा बलपूर्वक उसे दबा कर वह दूसरी ही राह पर चला करता। अभी जैसे ही उसने जोर से कहा - 'मैं मुक्त हो जाऊँगा' - वैसे ही शरण पा कर उसके झकझोरे हुए हृदय ने उसे बधाई दी।

महेंद्र बिस्तर से उठा, मुँह-हाथ धोया और विनोदिनी से मिलने गया। देखा, कमरा अंदर से बंद है। दरवाजे पर धक्का दे कर पूछा - 'सो रही हो?'

विनोदिनी बोली - 'नहीं, अभी जाओ!'

महेंद्र ने कहा - 'तुमसे जरूरी बात करनी है। ज्यादा देर न रुकूँगा।'

विनोदिनी बोली - 'बात अब मैं नहीं सुनना चाहती, तुम जाओ, मुझे तंग मत करो- अकेली रहने दो।'

और दिन होता, तो इससे महेंद्र का आवेग और बढ़ ही जाता। लेकिन आज उसे बेहद घृणा हुई। सोचा, इस मामूली औरत के आगे अपने-आपको मैंने ऐसा गया-बीता बना छोड़ा है कि अब उसमें मुझे बुरी तरह दुत्कार कर दूर कर देने की हिम्मत हो गई है? यह अधिकार इसका स्वाभाविक नहीं। मैंने ही यह अधिकार दे कर इसके मिजाज को सातवें आसमान पर पहुँचा दिया है।

विनोदिनी की इस झिड़की से महेंद्र ने अपने में अपनी श्रेष्ठता के अनुभव की कोशिश की। उसके मन ने कहा - 'मैं विजयी होऊँगा - इसके बंधन तोड़ कर चला जाऊँगा।' भोजन करके महेंद्र रुपया निकालने बैंक गया। रुपया निकाला और आशा तथा माँ के लिए कुछ नई चीजें खरीदने के खयाल से वह बाजार की दुकानों में घूमने लगा।

विनोदिनी के दरवाजे पर एक बार फिर धक्का पड़ा। पहले तो आजिजी से उसने कोई जवाब ही न दिया; लेकिन जब बार-बार धक्का पड़ने लगा तो आग-बबूला हो कर दरवाजा खोलते हुए उसने कहा - 'नाहक क्यों बार-बार मुझे तंग करने आते हो तुम?'

बात पूरी करने के पहले ही उसकी नजर पड़ी - बिहारी खड़ा था। कमरे में महेंद्र है या नहीं, यह देखने के लिए बिहारी ने एक बार भीतर की तरफ झाँका। देखा, कमरे में सूखे फूल और टूटी मालाएँ बिखरी पड़ी थीं। उसका मन जबर्दस्त ढंग से विमुख हो उठा। यह नहीं कि बिहारी जब दूर था, तो उसके मन में विनोदिनी के रहन-सहन के बारे में संदेह का कोई चित्र आया ही नहीं, लेकिन कल्पना की लीला ने उस चित्र को ढककर भी एक दमकती हुई मोहिनी छवि खड़ी कर रखी थी। बिहारी जिस समय इस बगीचे में कदम रख रहा था, उस समय उसका दिल धड़कने लगा था - कल्पना की प्रतिमा को कहीं चोट न पहुँचे इस आशंका से उसका हृदय संकुचित हो रहा था। और विनोदिनी के सोने के कमरे के द्वार पर खड़े होते ही वही चोट लगी।

दूर रहते हुए बिहारी ने सोचा था कि अपने प्रेम के अभिषेक से मैं विनोदिनी के जीवन की सारी कालिमा को धो दूँगा। लेकिन पास आ कर देखा, यह आसान नहीं। मन में करुणा की वेदना कहाँ उपजी? बल्कि एकाएक घृणा ने जग कर उसे अभिभूत कर दिया। बिहारी ने उसे बड़ा मलिन देखा।

वह तुरंत मुड़ कर खड़ा हो गया और उसने 'महेंद्र -महेंद्र' कह कर पुकारा। इस अपमान से विनोदिनी ने नम्र स्वर में कहा - 'महेंद्र नहीं है, शहर गया है।'

बिहारी लौटने लगा। विनोदिनी बोली - 'भाई साहब, मैं पैर पड़ती हूँ, जरा देर बैठना पड़ेगा।'

बिहारी ने सोच रखा था, वह कोई आरजू-मिन्नत नहीं सुनेगा। तय कर लिया था कि नफरत के इस नजारे से तुरंत अपने को अलग कर लेगा। लेकिन विनोदिनी की करुण विनती से उसके कदम क्षण-भर के लिए उठ न सके।

विनोदिनी बोली - 'आज अगर तुम मुझे इस तरह ठुकरा कर चल दिए, तो तुम्हारी कसम खा कर कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी।'

बिहारी पलट कर खड़ा हो गया, बोला - 'तुम अपने जीवन से मुझे जकड़ने की कोशिश क्यों करती हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मैं तो कभी तुम्हारी राह में नहीं आया, तुम्हारे सुख-दुःख में कभी दखल नहीं दिया।'

विनोदिनी बोली - 'तुमने मुझ पर कितना अधिकार कर रखा है, एक बार तुमसे कहा था मैंने - तुमने विश्वास नहीं किया। तो भी तुम्हारी बेरुखी में भी फिर वही कहती हूँ। बिना बोले जताने का शर्म से बताने का मौका तो तुमने मुझे दिया नहीं। तुमने मुझे पैरों से झटक दिया है, मैं फिर भी तुम्हारे पाँव पकड़ कर कहती हूँ - मैं तुम्हें...'

बिहारी ने टोकते हुए कहा - 'बस-बस, रहने दो, यह बात जबान पर मत लाओ। एतबार की गुंजाइश नहीं रही।'

विनोदिनी - 'इतर लोग इस पर विश्वास न करें, पर तुम करोगे। इसीलिए मैं तुम्हें जरा देर बैठने को कह रही हूँ।'

बिहारी - 'मेरे विश्वास करने, न करने से क्या आता-जाता है। तुम्हारी जिंदगी तो जैसी चल रही है, चलती रहेगी।'

विनोदिनी - 'इससे तुम्हारा कुछ आता-जाता नहीं, मैं जानती हूँ। अपना नसीब ही ऐसा है कि तुमसे मुझे सदा दूर ही रहना होगा। बस मैं केवल इतना हक नहीं छोड़ना चाहती कि मैं चाहे जहाँ रहूँ, मुझे जरा माधुर्य के साथ याद करना। मुझे मालूम है, मुझ पर तुम्हें थोड़ी-सी श्रद्धा हुई थी, मैं उसी को अपना अवलंब बनाए रहूँगी। इसीलिए मेरी पूरी बात तुम्हें सुननी होगी। मैं हाथ जोड़ती हूँ, जरा देर बैठो!'

'अच्छा चलो!' कह कर बिहारी उस कमरे से और कहीं जाने को तैयार हुआ।

विनोदिनी बोली - 'भाई साहब, जो सोच रहे हो, वह बात नहीं है। इस कमरे को कलंक की छाया नहीं छू सकी है। कभी यहाँ सोए थे - इसे मैंने तुम्हारे ही लिए उत्सर्ग करके रखा है। सूखे पड़े ये फूल तुम्हारी ही पूजा के हैं। तुम्हें यहीं बैठना होगा।'

सुन कर बिहारी के मन में पुलक का संचार हुआ। वह कमरे में गया। विनोदिनी ने दोनों हाथों से उसे खाट का इशारा किया। बिहारी खाट पर बैठा। विनोदिनी उसके पैरों के पास जमीन पर बैठी। विनोदिनी ने बिहारी को व्यस्त होते देख कर कहा - 'तुम बैठो, भाई साहब! सिर की कसम तुम्हें, उठना मत। मैं तुम्हारे पैरों के पास भी बैठने लायक नहीं - दया करके ही तुमने मुझे यह जगह दी है। दूर रहूँ, तो भी इतना अधिकार मैं रखूँगी।'

यह कह कर विनोदिनी जरा देर चुप रही। उसके बाद अचानक चौंक कर बोली - 'तुम्हारा खाना?'

बिहारी बोला - 'स्टेशन से खा कर आया हूँ।'

विनोदिनी - 'मैंने गाँव से तुम्हें जो पत्र दिया था, उसे खोल कर पढ़ा और कोई जवाब न दे कर उसे महेंद्र की मार्फत लौटा क्यों दिया?'

बिहारी - 'कहाँ, वह चिट्ठी तो मुझे नहीं मिली।'

विनोदिनी - 'इस बार कलकत्ता में महेंद्र से तुम्हारी भेंट हुई थी।'

बिहारी - 'तुम्हें गाँव पहुँचा कर लौटा, उसके दूसरे दिन भेंट हुई थी। उसके बाद मैं पछाँह की ओर सैर को निकल पड़ा, उससे फिर भेंट नहीं हुई।'

विनोदिनी - 'उससे पहले और एक दिन मेरी चिट्ठी पढ़ कर बिना उत्तर के वापिस कर दी?'

बिहारी - 'नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ।'

विनोदिनी बुत-सी बैठी रही। उसके बाद लंबी साँस छोड़ कर बोली - 'सब समझ गई। अब अपनी बात बताऊँ - मगर यकीन करो तो अपनी खुशकिस्मती समझूँ और न कर सको तो तुमको दोष न दूँगी। मुझ पर यकीन करना मुश्किल है।'

बिहारी का हृदय पसीज गया। भक्ति से झुकी विनोदिनी की पूजा का वह किसी भी तरह अपमान न कर सका। बोला - 'भाभी, तुम्हें कुछ कहना न पड़ेगा। बिना कुछ सुने ही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकता। तुम अब एक भी शब्द न कहना!'

सुन कर विनोदिनी की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने बिहारी के चरणों की धूल ली। बोली - 'सब न सुनोगे, तो मैं जी न सकूँगी। थोड़ा धीरज रख कर सुनना होगा - तुमने मुझे जो आदेश दिया था, मैंने उसी को सिर माथे उठा लिया था। तुमने मुझे पत्र तक न लिखा, तो भी अपने गाँव में मैं लोगों की निंदा सहकर जिंदगी बिता देती, तुम्हारे स्नेह के बदले तुम्हारे शासन को ही स्वीकार करती - लेकिन विधाता उसमें भी वाम हुए। जिस पाप को मैंने जगाया, उसने मुझे निर्वासन में भी न टिकने दिया। महेंद्र वहाँ पहुँचा, मेरे घर पर जा कर उसने सबके सामने मेरी मिट्टी पलीद की। गाँव में मेरे लिए जगह न रह गई। मैंने दुबारा तुम्हें बेहद तलाशा कि तुम्हारा आदेश लूँ, पर तुमको न पा सकी। मेरी खुली चिट्ठी तुम्हारे यहाँ से ला कर मुझे देते हुए महेंद्र ने धोखा दिया। मैंने समझा, तुमने मुझे एकबारगी त्याग दिया। इसके बाद मैं बिलकुल नष्ट हो सकती थी - मगर पता नहीं तुममें क्या है, तुम दूर रह कर भी बचा सकते हो। मैंने दिल में तुम्हें जगह दी है, इसी से पवित्र रह सकी। कभी तुमने मुझे ठुकराकर अपना जो परिचय दिया था, तुम्हारा वही कठिन परिचय सख्त सोने की तरह, ठोस मणि की तरह मेरे मन में है, उसने मुझे मूल्यवान बनाया है। देवता, तुम्हारे पैर छू कर कहती हूँ, वह मूल्य नष्ट नहीं हुआ है।'

बिहारी चुप रहा। विनोदिनी भी और कुछ न बोली। तीसरे पहर की धूप पल-पल पर फीकी पड़ने लगी। ऐसे समय महेंद्र दरवाजे पर आया और बिहारी को देख कर चौंक पड़ा। विनोदिनी के प्रति उसमें जो उदासीनता आ रही थी, ईर्ष्या से वह जाने-जाने को हो गई। विनोदिनी को बिहारी के पाँवों के पास बैठी देख कर ठुकराए हुए महेंद्र को चोट पहुँची।

व्यंग्य के स्वर में महेंद्र ने कहा - 'तो अब रंगमंच से महेंद्र का प्रस्थान हुआ, बिहारी का प्रवेश! दृश्य बेहतरीन है। तालियाँ बजाने को जी चाहता है। लेकिन उम्मीद है, यही अंतिम अंक है। इसके बाद अब कुछ भी अच्छा न लगेगा।'

विनोदिनी का चेहरा तमतमा उठा। महेंद्र की शरण जब उसे लेनी पड़ी है, तो इस अपमान का क्या जवाब दे, व्याकुल हो कर उसने केवल बिहारी की ओर देखा।

बिहारी खाट से उठा। बोला - 'महेंद्र, कायर की तरह विनोदिनी का यों अपमान न करो - तुम्हारी भलमनसाहत अगर तुम्हें नहीं रोकती, तो रोकने का अधिकार मुझको है।'

महेंद्र ने हँस कर कहा - 'इस बीच अधिकार भी हो गया? आज तुम्हारा नया नामकरण है - विनोदिनी!'

अपमान करने का हौसला बढ़ता ही जा रहा है, यह देख कर बिहारी ने महेंद्र का हाथ दबाया। कहा - 'महेंद्र, मैं विनोदिनी से ब्याह करूँगा, सुन लो! लिहाजा संयत हो कर बात करो।'

महेंद्र अचरज के मारे चुप हो गया और विनोदिनी चौंक उठी। उसकी छाती के अंदर का लहू खलबला उठा।

बिहारी ने कहा - 'और एक खबर देनी है तुम्हें। तुम्हारी माँ मृत्युसेज पर हैं। बचने की कोई उम्मीद नहीं। मैं आज रात को ही गाड़ी से जाऊँगा - विनोदिनी भी मेरे साथ जाएगी।'

विनोदिनी ने चौंक कर पूछा - 'बुआ बीमार हैं?'

बिहारी बोला - 'हाँ, सख्त। कब क्या हो जाए कुछ कहा नहीं जा सकता।'

यह सुन कर महेंद्र ने और कुछ न कहा! चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।

विनोदिनी ने बिहारी से पूछा - 'अभी-अभी तुमने जो कहा, तुम्हारी जुबान पर यह बात कैसे आई? मजाक तो नहीं?'

बिहारी बोला - 'नहीं, मैंने ठीक ही कहा है। मैं तुमसे ब्याह करूँगा।'

विनोदिनी - 'किसलिए? उद्धार करने के लिए।'

बिहारी - 'नहीं, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, इसलिए।'

विनोदिनी - 'यही मेरा पुरस्कार है। इतना-भर स्वीकार किया, मेरे लिए यही बहुत है, इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं चाहती। ज्यादा मिले भी तो रहने का नहीं।'

बिहारी - 'क्यों?'

विनोदिनी - 'वह सोचते हुए भी शर्म आती है। मैं विधवा हूँ, बदनाम हूँ- सारे समाज के सामने तुम्हारी फजीहत करूँ, यह हर्गिज नहीं होगा। छिः, यह बात जबान पर न लाओ।'

बिहारी - 'तुम मुझे छोड़ दोगी?'

विनोदिनी - 'छोड़ने का अधिकार मुझे नहीं। चुपचाप तुम बहुतों की बहुत भलाई किया करते हो - अपने वैसे ही किसी व्रत का कोई-सा भार मुझे देना, उसी को ढोती हुई मैं अपने-आपको तुम्हारी दासी समझा करूँगी। लेकिन

विधवा से तुम ब्याह करोगे, छिः! तुम्हारी उदारता से सब-कुछ मुमकिन है, लेकिन मैं यह काम करूँ, समाज में तुम्हें नीचा करूँ तो जिंदगी में यह सिर कभी उठा न सकूँगी।'

बिहारी - 'मगर मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।'

विनोदिनी - 'उसी प्यार के अधिकार से आज मैं एक ढिठाई करूँगी।'

इतना कह कर विनोदिनी झुकी। उसने पैर की उँगली को चूम लिया। पैरों के पास बैठ कर बोली - 'तुम्हें अगले जन्म में पा सकूँ, इसके लिए मैं तपस्या करूँगी। इस जन्म में अब कोई उम्मीद नहीं। मैंने बहुत दुःख उठाया - काफी सबक मिला। यह सबक अगर भूल बैठती, तो मैं तुम्हें नीचा दिखा कर और भी नीची बनती। लेकिन तुम ऊँचे हो, तभी आज मैं फिर से सिर उठा सकी हूँ- अपने इस आश्रय को मैं धूल में नहीं मिला सकती।'

बिहारी गंभीर हो रहा।

विनोदिनी ने हाथ जोड़ कर कहा - 'गलती मत करो - मुझसे विवाह करके तुम सुखी न होगे, अपना गौरव गँवा लोगे - मैं भी अपना गर्व खो बैठूँगी। तुम सदा निर्लिप्त रहो, प्रसन्न रहो। आज भी तुम वही हो - मैं दूर से ही तुम्हारा काम करूँगी। तुम खुश रहो, सदा सुखी रहो।'

## 53

महेंद्र माँ के कमरे में जा रहा था कि आशा दौड़ी-दौड़ी आई। कहा - 'अभी वहाँ मत जाओ!'

महेंद्र ने पूछा - 'क्यों?'

आशा बोली - 'डॉक्टर ने बताया है, माँ, चाहे दुःख का हो चाहे सुख का - अचानक कोई धक्का लगने से आफत हो सकती है।'

महेंद्र बोला - 'मैं दबे पाँवों उनके सिरहाने की तरफ जा कर एक बार देख आऊँ जरा। उन्हें पता न चलेगा।'

आशा - 'नहीं, अभी आप माँ से नहीं मिल सकते।'

महेंद्र - 'तो तुम करना क्या चाहती हो?'

आशा - 'पहले बिहारी बाबू उन्हें देख आएँ, वे जैसा कहेंगे, वही करूँगी।'

इतने में बिहारी आ गया। आशा ने उसे बुलवाया था।

बिहारी को देख कर आशा को थोड़ा भरोसा हुआ। बोली - 'तुम्हारे जाने के बाद से माँ और भी अकुला उठी हैं, भाई साहब। पहले दिन जब तुम न दिखाई पड़े तब उन्होंने पूछा - 'बिहारी कहाँ गया?' मैंने कहा - 'वे एक जरूरी काम से बाहर गए हैं। बृहस्पति तक लौट आएँगे।' उसके बाद से वे रह-रह कर चौंक-चौंक पड़ती हैं। मुँह से कुछ नहीं कहतीं लेकिन अंदर-ही-अंदर मानो किसी की राह देख रही हैं। कल तुम्हारा तार मिला। मैंने उन्हें बताया, तुम आ रहे हो।

उन्होंने आज तुम्हारे लिए खास तौर से खाने का इंतजाम करवाने को कहा है। तुम्हें जो-जो चीजें अच्छी लगती हैं, सब मँगवाई हैं, सामने बरामदे पर रसोई का प्रबंध कराया है, अंदर से वह खुद बनाती रहेंगी। डॉक्टर ने लाख मना किया, एक न सुनी। अभी-अभी जरा देर पहले मुझे बुला कर कहा, 'बहू, रसोई तुम अपने हाथों बनाना, आज बिहारी को मैं अपने सामने बैठा कर खि लाऊँगी'।

सुनते ही बिहारी की आँखें छलछला उठीं। पूछा - 'माँ हैं कैसी?'

आशा ने कहा - 'तुम खुद चल कर देखो, मुझे तो लगता है, बीमारी और बढ़ गई है।'

बिहारी अंदर गया। महेंद्र खड़ा अचरज में पड़ गया। आशा ने मजे में गृहस्थी सम्हाल ली है - कितनी आसानी से महेंद्र को अंदर जाने से रोक दिया। न संकोच किया, न रूठी।

महेंद्र आज कितना सकुचा गया है! वह अपराधी है - चुपचाप खड़ा रहा, बाहर। माँ के कमरे में न घुस सका।

फिर भी यह अजीब बात - बिहारी से वह कैसे बे-खटके बोली। सलाह-परामर्श सब उसी से। वही आज इस घर का सबसे बड़ा शुभचिंतक है, एकमात्र रक्षक है। उसको कहीं रोक नहीं, उसी के निर्देश पर सब-कुछ चलता है। कुछ दिनों के लिए महेंद्र जो स्थान छोड़ कर चला गया था, लौट कर देखा, वह स्थान अब ठीक वैसा ही नहीं है।

बिहारी के अंदर जाते ही राजलक्ष्मी ने पूछा - 'तू आ गया, बेटे?'

बिहारी बोला - 'हाँ माँ, लौट आया।'

राजलक्ष्मी ने पूछा - 'काम हो गया तेरा?'

खुश हो कर बिहारी बोला - 'हाँ माँ, हो गया। अब मुझे कोई चिंता नहीं रही।'

और उसने एक बार बाहर की तरफ देखा।

राजलक्ष्मी - 'बहू आज तेरे लिए खुद खाना पकाए गी - मैं यहाँ से उसे बताती जाऊँगी। डॉक्टर ने मना किया है - मगर अब काहे की मनाही, बेटे! मैं क्या इन आँखों से एक बार तुम लोगों का खाना भी न देख पाऊँगी!'

बिहारी ने कहा - 'डॉक्टर के मना करने की बात तो समझ में नहीं आती - तुम न बताओगी तो चलेगा कैसे? छुटपन से तुम्हारे हाथ की ही रसोई हमें भाई है - महेंद्र भैया का जी तो पश्चिम की दाल-रोटी से ऊब गया है - तुम्हारे हाथ की बनाई मछली मिलेगी, तो वह जी जाएगा। आज हम दोनों भाई जैसे बचपन में करते थे, होड़ लगा कर खाएँगे। तुम्हारी बहू जुटा सके, तब जानो।'

राजलक्ष्मी समझ तो गई थी कि बिहारी के साथ महेंद्र आया है, फिर भी उनकी धड़कन बढ़ गई।

बिहारी ने कहा - 'पछाँह जा कर महेंद्र की सेहत बहुत-कुछ सुधर गई है। आज सफर से आया है, इसलिए थका-माँदा लगता है। नहाने से ठीक हो जाएगा।'



राजलक्ष्मी ने फिर भी महेंद्र के बारे में कुछ न कहा। इस पर बिहारी ने कहा - 'माँ, महेंद्र बाहर ही खड़ा है। जब तक तुम नहीं बुलाओगी वह नहीं आएगा।'

राजलक्ष्मी कुछ बोली नहीं, सिर्फ दरवाजे की तरफ नजर उठाई। उनका उधर देखना था कि बिहारी ने कहा - 'महेंद्र भैया, आ जाओ!'

महेंद्र धीरे-धीरे अंदर आया। कलेजे की धड़कन कहीं एकाएक थम जाए, इस डर से राजलक्ष्मी तुरंत महेंद्र की ओर न देख सकीं। आँखें अधमूंदी रहीं। बिस्तर की तरफ ताक कर महेंद्र चौंक उठा। उसे मानो किसी ने पीटा हो।

माँ के पैरों के पास सिर रख कर उनका पैर पकड़े पड़ा रहा। कलेजे की धड़कन से राजलक्ष्मी का सर्वांग काँपता रहा। कुछ देर बाद अन्नपूर्णा ने धीमे से कहा - 'दीदी, तुम महेंद्र को कहो कि वह उठे, नहीं तो वह यहीं बैठा रहेगा।'

बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा - 'महेंद्र, उठ!' बहुत दिनों के बाद महेंद्र का जो नाम लिया तो उनकी आँखों से आँसू की धारा फूट पड़ी। आँसू बहने से मन की पीड़ा कुछ हल्की हुई। महेंद्र उठा, जमीन पर घुटना गाड़, खाट की पाटी पर छाती रख कर माँ के पास बैठा। राजलक्ष्मी ने बड़ी तसल्ली से करवट बदली। दोनों हाथों से अपनी ओर खींच कर उन्होंने महेंद्र का सिर सूँघा, और ललाट को चूम लिया।

महेंद्र ने रूँधे कंठ से कहा - 'मैंने तुम्हें बड़ी तकलीफ पहुँचाई है, माँ मुझे माफ करो।'

कलेजा ठंडा हुआ तो राजलक्ष्मी ने कहा - 'ऐसा मत कह बेटे, तुझे माफ किए बिना मैं जी सकती हूँ भला! बहू कहाँ गई? बहू!'

आशा पास ही दूसरे कमरे में पथ्य तैयार कर रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुला लाई।

राजलक्ष्मी ने महेंद्र को जमीन पर से उठ कर बिस्तर पर बैठने का इशारा किया। महेंद्र बैठा, तो उसके बगल की जगह दिखाती हुई राजलक्ष्मी ने कहा - 'तुम यहाँ बैठो, बहू! आज तुम दोनों को मैं पास-पास बिठा कर देख लूँ, तभी मेरी तकलीफ मिटेगी। बहू, आज मुझसे शर्म न करो! महेंद्र के लिए जो मलाल है, उसे भी भुला दो। उसके पास बैठो।'

इस पर आशा घूँघट निकाले धड़कते दिल से लजाती हुई आ कर महेंद्र के पास बैठ गई। राजलक्ष्मी ने महेंद्र का दाहिना हाथ लिया और आशा के दाहिने हाथ से मिला कर दबाया। बोली - 'अपनी इस बिटिया को मैं तेरे हाथों सौंप जाती हूँ, महेंद्र - इसका खयाल रखना, ऐसी लक्ष्मी तुझे और कहीं नहीं मिलेगी। मँझली आओ, दोनों को आशीर्वाद दो, तुम्हारे पुण्य से ही दोनों का मंगल हो।'

अन्नपूर्णा उनके सामने गई। दोनों ने आँसू-भरे नेत्रों से उनके चरणों की धुल ली। उन्होंने दोनों के माथे को चूमा - 'ईश्वर तुम्हारा मंगल करे!'

राजलक्ष्मी - 'बिहारी, आगे आओ बेटे, महेंद्र को तुम माफी दो।'

बिहारी ज्यों ही महेंद्र के सामने जा कर खड़ा हुआ, उसने उसे बाँहों में लपेट कर कस कर छाती से लगा लिया।

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मैं आशीर्वाद देती हूँ महेंद्र, बिहारी छुटपन से तेरा जैसा मित्र था, सदा वैसा ही रहे।'

इसके बाद राजलक्ष्मी थकावट के मारे और कुछ न कह सकी। चुप हो गई। बिहारी कोई उत्तेजक दवा उनके होंठों तक ले गया। हाथ हटा कर राजलक्ष्मी ने कहा - 'अब दवा नहीं बेटे, अब मैं भगवान को याद करूँ - वही मुझे दुनिया की सारी जलन की दवा देंगे। महेंद्र, तुम लोग थोड़ा आराम कर लो बेटे! बहू, रसोई चढ़ा दो!'

शाम को महेंद्र और बिहारी राजलक्ष्मी की खाट के पास नीचे खाने बैठे। परोसने का जिम्मा राजलक्ष्मी ने आशा को दे रखा था। वह परोसने लगी।

महेंद्र का कौर नहीं उठ रहा था, कलेजे में आँसू उमड़े आ रहे थे। राजलक्ष्मी बोली - 'तू ठीक से खा क्यों नहीं रहा है, महेंद्र? खा, मैं आँखें भर कर देखूँ।'

बिहारी ने कहा - 'तुम तो जानती ही हो माँ, महेंद्र भैया का सदा का यही हाल है। वह खा नहीं सका। भाभी, जरा यह घंटो थोड़ा-सा और दो मुझे, बेहतरीन बना है।'

खुश हो कर राजलक्ष्मी जरा हँसी... 'मुझे मालूम है, बिहारी को यह बेहद पसंद है। बहू, भला उतने से क्या होगा, और दो।'

बिहारी बोला - 'तुम्हारी यह बहू अहले दर्जे की कंजूस है। इसके हाथ से कुछ निकलता ही नहीं।'

राजलक्ष्मी बोली - 'सुन लो बहू, तुम्हारा ही नमक खा कर बिहारी तुम्हारी ही निंदा करता है।'

आशा बिहारी की पत्तल में सब्जी डाल गई।

बिहारी बोल उठा - 'हाय राम, मुझे तो सब्जी दे कर ही धता बतानी चाहती है, अच्छी-अच्छी चीजें सब महेंद्र भैया के हिस्से।'

आशा फुस-फुसा कर कह गई - 'कुछ भी करो, निंदक की जबान बंद नहीं होने की।'

बिहारी बोला - 'मिठाई दे कर देखो, बंद होती है या नहीं।'

दोनों दोस्त खा चुके तो राजलक्ष्मी को बड़ी तृप्ति मिली। बोली - 'बहू, अब तुम जा कर खा लो।'

आशा उनके हुकम पर खाने चली गई। उन्होंने महेंद्र से कहा - 'तू थोड़ा सो ले, महेंद्र।'

महेंद्र बोला - 'सो जाऊँ अभी से।'

महेंद्र ने सोच रखा था, रात को वह माँ की सेवा में रहेगा। मगर राजलक्ष्मी ने धीमे से कहा - 'बहू, देख जाओ कि महेंद्र का बिस्तर ठीक भी है या नहीं। वह अकेला है।'

आशा लाज के मारे मरी-सी किसी तरह कमरे से बाहर चली गई। वहाँ केवल बिहारी और अन्नपूर्णा रह गए।

तब राजलक्ष्मी ने कहा - 'तुमसे एक बात पूछनी है, बिहारी। विनोदिनी का क्या हुआ, पता है। कहाँ है वह?'

बिहारी ने कहा - 'वह कलकत्ता में है।'

राजलक्ष्मी ने आँखों की मौन दृष्टि से ही प्रश्न किया। बिहारी समझ गया।

बोला - 'उसकी तुम अब फिर ही न करो, माँ!'

राजलक्ष्मी बोली- 'उसने मुझे बहुत दुख दिया है बिहारी, फिर भी मैं अंदर से उसे प्यार करती हूँ।'

बिहारी बोला - 'वह भी मन-ही-मन तुम्हें प्यार करती है, माँ!'

राजलक्ष्मी - 'मुझे भी यही लगता है, बिहारी। दोष-गुण सब में होता है, लेकिन वह मुझे प्यार करती थी। ढोंग करके कोई उस तरह की सेवा नहीं कर सकती।'

बिहारी बोला - 'तुम्हारी सेवा करने के लिए वह तड़प रही है।'

राजलक्ष्मी ने लंबी साँस ली। कहा - 'महेंद्र, आशा, सब तो सोने चले गए। रात में उसे एक बार ले आओ तो क्या हर्ज है?'

बिहारी ने कहा - 'वह तो इसी घर के बाहर वाले कमरे में छिपी बैठी है, माँ। उसने प्रतिज्ञा की है कि जब तक तुम उसे बुला कर माफ नहीं कर दोगी, वह पानी भी न पिएगी।'

राजलक्ष्मी परेशान हो उठीं। बोली- 'सारे दिन से भूखी है? अरे तो जा उसे बुला लो!'

ज्यों ही विनोदिनी कमरे में आई, राजलक्ष्मी बोल उठीं - 'राम-राम, तुमने यह किया क्या बहू, दिन-भर बे-खाए-पिए बैठी हो। जाओ, पहले खा लो, फिर बातचीत होगी।'

विनोदिनी ने उनके चरणों की धूल ली। बोली - 'पहले इस पापिन को तुम माफ करो बुआ, तभी मैं खाऊँगी।'

राजलक्ष्मी - 'माफ कर दिया बिटिया, माफ कर दिया - अब मुझे किसी से भी कोई मलाल नहीं।'

विनोदिनी का दाहिना हाथ पकड़ कर उन्होंने कहा - 'बहू, तुमसे जीवन में किसी का बुरा न हो और तुम भी सुखी रहो!'

विनोदिनी - 'तुम्हारा आशीर्वाद झूठा न होगा बुआ, मैं तुम्हारे पाँव छू कर कहती हूँ, मुझसे इस घर का बुरा न होगा।'

झुक कर अन्नपूर्णा को प्रणाम करके विनोदिनी खाने गई। लौटने पर राजलक्ष्मी ने पूछा - 'तो अब तुम चलीं?'

विनोदिनी - 'मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, बुआ। ईश्वर साक्षी है, मुझसे किसी बुराई की शंका न करो।'

राजलक्ष्मी ने बिहारी की तरफ देखा। बिहारी ने कुछ सोचा। फिर कहा - 'भाभी रहें, कोई हर्ज नहीं।'

रात में बिहारी, अन्नपूर्णा और विनोदिनी - तीनों ने मिल कर राजलक्ष्मी की सेवा की।

इधर रात को आशा राजलक्ष्मी के पास नहीं आई, इस शर्म से वह तड़के ही उठी। महेन्द्र को सोता ही छोड़ कर उसने जल्दी से मुँह धोया, कपड़े बदले और तैयार होते ही आई। तब भी धुँधलका था। दरवाजे पर आ कर उसने जो कुछ देखा, वह अवाक् रह गई। स्वप्न तो नहीं!

स्पिरिट-लैंप जला कर विनोदिनी पानी गरम कर रही थी। रात को बिहारी ने पलकें भी न झपकाई थीं। उनके लिए चाय बनानी थी।

आशा को देख कर विनोदिनी खड़ी हो गई। बोली - 'सारे अपराधों के साथ मैंने आज तुम्हारी शरण ली है - और कोई तो जाने की न कह सकेगा, मगर तुम अगर कह दो, 'जाओ', तो मुझे तुरंत जाना पड़ेगा।'

आशा कोई जवाब न दे सकी। वह यह भी ठीक-ठीक न समझ सकी कि उसका मन क्या कह रहा है - इसलिए वह हक्की-बक्की हो गई।

विनोदिनी - 'मुझे तुम कभी माफ नहीं कर पाओगी - इसकी कोशिश भी मत करना। मगर मुझे अब कोई खतरा मत समझना। जिन कुछ दिनों के लिए बुआ को जरूरत है, मुझे इनकी सेवा करने दो, फिर मैं चली जाऊँगी।'

कल जब राजलक्ष्मी ने आशा का हाथ महेन्द्र के हाथों में दिया तो उसने मन का सारा मलाल हटा कर सोलहों आने आशा को महेन्द्र के हाथों सौंप दिया था। आज विनोदिनी को अपनी नजर के सामने खड़ी देख कर उसके खंडित प्रेम की ज्वाला शांत न हो सकी। इसे कभी महेन्द्र ने प्यार किया था, शायद अब भी मन-ही-मन प्यार करता हो - यह बात उसके कलेजे में लहर की तरह फूल-फूल उठने लगी। जरा ही देर बाद महेन्द्र जगेगा और वह विनोदिनी को देखेगा, जाने किस नजर से देखेगा।

भारी हृदय लिए आशा राजलक्ष्मी के कमरे में पहुँची। बहुत शर्माती हुई बोली - 'मौसी, तुम रात-भर सोई नहीं, जाओ सो जाओ!' अन्नपूर्णा ने एक बार अच्छी तरह से आशा के चेहरे को देखा। उसके बाद सोने जाने के बजाय आशा को साथ लिए अपने कमरे में गई। बोली - 'चुन्नी, खुल कर बात करना चाहती है, तू अब बातों को मन में मत रख। गैर को दोषी बनाने का जो सुख है, मन में दोष रखने का दुःख उससे कहीं बड़ा है।'

आशा ने कहा - 'मन में कोई गाँठ मैं रखना तो नहीं चाहती हूँ मौसी, सब भूल जाना ही चाहती हूँ, मगर भूलते ही तो नहीं बनता।'

अन्नपूर्णा बोली - 'तू ठीक ही कहती है बिटिया, उपदेश देना आसान है, कर दिखाना ही मुश्किल है। फिर भी मैं तुझे एक उपाय बताती हूँ। जी-जान से इस भाव को कम-से-कम रखो, मानो भूल गया है। पहले बाहर से भुलाना शुरू कर, तभी भीतर से भी भूल सकेगी।'

आशा ने सिर झुकाए हुए कहा - 'बताओ, मुझे क्या करना होगा?'

अन्नपूर्णा बोली - 'बिहारी के लिए विनोदिनी चाय बना रही है तू। दूध, चीनी, प्याला - सब-कुछ ले कर जा। मिल कर काम करो!'

आशा आदेश-पालन के लिए उठी। अन्नपूर्णा ने कहा - 'यह आसान है - लेकिन मुझे एक बात और कहनी है, वह और भी सख्त है और उसका पालन तुझे करना ही पड़ेगा। जब-तब महेंद्र से विनोदिनी की मुलाकात होगी ही और तब तेरे मन में क्या होगा, मैं जानती हूँ। लेकिन वैसे मैं कभी कनखियों से भी महेंद्र या विनोदिनी के भाव को देखने की कोशिश तक न करना। कलेजा फटता रहे, लेकिन अडिग रहना पड़ेगा। महेंद्र यह समझेगा कि तुझे कोई शक नहीं रहा। टूटने के पहले जैसा था, जोड़ वैसा ही जुड़ गया है। महेंद्र या और कोई तेरी शक्ल देख कर अपने को दोषी नहीं समझेगा। चुन्नी, यह कोई मेरा उपदेश नहीं, आग्रह नहीं, यह तेरी मौसी का आदेश है। मैं जब काशी चली जाऊँ, तब तू एक दिन को भी यह बात न भूलना!'

चाय का प्याला लिए आशा विनोदिनी के पास पहुँची। पूछा - 'उबल गया पानी? मैं दूध ले आई हूँ।'

विनोदिनी अचरज से आशा का मुँह ताकने लगी। बोली - 'बिहारी भाई साहब बरामदे में बैठे हैं। तुम उनको चाय भेज दो। इतने में बुआ का मुँह धुलाने का इंतजाम करती हूँ। अब जग जाएँ शायद।'

विनोदिनी चाय ले कर बिहारी के पास नहीं गई। उसके प्रेम को कबूल करने के नाते बिहारी ने जो अधिकार उसे दिया था, उसके मनमाने इस्तेमाल में उसे संकोच हुआ। अधिकार पाने की जो मर्यादा है, उसे बचाना हो तो अधिकार के प्रयोग को संयत होना चाहिए। जितना मिलता है, उतने के लिए छीना-झपटी करना कँगले को ठीक लगता है।

इतने में महेंद्र आ पहुँचा। आशा का दिल धक् कर उठा, तो भी अपने को जब्त करके उसने स्वाभाविक स्वर में महेंद्र से कहा - 'तुम इतनी जल्दी जग गए। रोशनी न आए इस वजह से मैंने खिड़कियाँ बंद कर दी थीं।'

विनोदिनी के सामने ही इस सहज भाव से आशा को बात करते देख कर महेंद्र के कलेजे पर मानो कोई पत्थर उतर गया। वह खुश हो कर बोला - 'देखने आ गया कि माँ कैसी है। वे सो रही हैं अभी तक?'

आशा ने कहा, 'हाँ, सो रही हैं। अभी वहाँ मत जाना! भाई साहब ने बताया - आज वे पहले से अच्छी हैं। बहुत दिनों के बाद कल रात-भर वे मजे में सोई हैं।'

महेंद्र निश्चिंत हुआ। पूछा - 'चाची कहाँ हैं?'

आशा ने चाची का कमरा दिखा दिया।

आशा की यह दृढ़ता और संयम देख कर विनोदिनी को भी हैरत हुई।

महेंद्र ने पुकारा - 'चाची!'

अन्नपूर्णा स्नान करके पूजा करने की सोच रही थी। फिर भी उन्होंने कहा - 'आ महेंद्र, आ!'

महेंद्र ने उन्हें प्रणाम किया। कहा - 'चाची, मैं पापी हूँ। तुम लोगों के सामने आते मुझे शर्म आती है।'

अन्नपूर्णा बोली - 'ऐसा नहीं कहते, बेटे! बच्चे तो गर्द में सन कर भी माँ की गोद में बैठते हैं।'

महेंद्र - 'मगर मेरी यह धूल कभी धुलने की नहीं, चाची!'

अन्नपूर्णा - 'दो-एक बार झाड़ देने से यह झाड़ जाएगी। अच्छा ही हुआ, महेंद्र। तुझे अपने भले होने का अभिमान था। अपने पर तुझे बेहद विश्वास था। पाप की आंधी ने तेरे उस गर्व को तोड़ गिराया है, और कुछ नहीं बिगाड़ा।'

महेंद्र - 'अब तुम्हें मैं न जाने दूँगा, चाची। तुम्हारे चले जाने से ही मेरी यह दुर्गति हुई।'

अन्नपूर्णा - 'मैं रह कर तुझे जिस दुर्गति से बचाती, वह हो गई, अच्छा हुआ। अब तुमको मेरी कोई जरूरत न पड़ेगी।'

दरवाजे पर फिर पुकार मची - 'चाची पूजा करने बैठी हो, क्या?'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'नहीं, तू आ!'

बिहारी अंदर आया। इतने तड़के महेंद्र को जगा देख कर वह बोला - 'जीवन में आज शायद पहली बार तुमने सूर्योदय देखा, भैया!'

महेंद्र ने कहा - 'हाँ भाई, मेरे जीवन में यह पहला सूर्योदय है। तुम्हें चाची से कोई राय करनी है शायद - मैं चलता हूँ।'

बिहारी ने हँस कर कहा - 'तुम्हें भी कैबिनेट का मिनिस्टर बना लिया गया समझो। तुमसे तो मैंने कभी कुछ छिपाया नहीं - ऐतराज न हो तो आज भी न छिपाऊँ।'

महेंद्र - 'मैं और ऐतराज! हाँ, दावा जरूर नहीं कर सकता। तुम अगर मुझसे कुछ न छिपाओ, तो मैं भी फिर से आप अपने ऊपर श्रद्धा करने का मौका पाऊँ।'

बहरहाल, बिहारी के लिए बे-हिचक सब-कुछ कहना मुश्किल था। बिहारी की जबान रुक-सी गई, मगर उसने जोर दे कर कहा - 'ऐसी बात आई थी कि मैं विनोदिनी से विवाह करूँगा - चाची से उसी के बारे में फैसला लेना था।'

महेंद्र सकुचा गया। अन्नपूर्णा चौंक कर बोली - 'यह कैसी बात है, बिहारी?'

महेंद्र ने बड़ा बल डाल कर अपने संकोच को हटाया। कहा - 'बिहारी, यह विवाह नहीं होगा।'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'इस प्रस्ताव में क्या विनोदिनी का हाथ है?'

बिहारी ने कहा - 'बिल्कुल नहीं।'

अन्नपूर्णा बोली - 'वह भला क्या राजी होगी इस पर?'

महेंद्र बोला - 'वह भला राजी क्यों न होगी, चाची! मैं जानता हूँ, वह हृदय से बिहारी की भक्ति करती है। ऐसे आश्रय को वह छोड़ सकती है भला!'

बिहारी ने कहा - 'विवाह का प्रस्ताव विनोदिनी से मैंने किया था, भैया। उसने शर्म से इनकार कर दिया है।'

सुन कर महेंद्र चुप रह गया।

## 54

भले-बुरे राजलक्ष्मी के दो दिन निकल गए। एक दिन सुबह उनका चेहरा खिला-खिला दिख रहा था। पीड़ा का नामोनिशान नहीं था। उसी दिन उन्होंने महेंद्र को बुला कर कहा - 'मैं अब ज्यादा देर की मेहमान नहीं, बेटे, मगर मैं बड़े सुख से मर सकूँगी, महेंद्र, मुझे अब कोई दुःख नहीं है। तू जब छोटा था, तो तुझे पा कर जो खुशी मुझे थी, आज उसी खुशी से मेरा हृदय भर उठा है - तू मेरी गोदी का लाड़ला है, मेरे कलेजे का रत्न - मैं तेरी सारी बला साथ लिए जा रही हूँ, यही मेरा सबसे बड़ा सुख है।'

इतना कह कर वह महेंद्र के मुखड़े और बदन पर हाथ फेरने लगीं। महेंद्र की रुलाई का बाँध टूट गया।

राजलक्ष्मी ने कहा - 'रो मत बेटे! लक्ष्मी घर में रही। कुंजी मेरी बहू को देना। मैंने सब-कुछ सँजो कर रखा है, गिरस्ती मैं किसी बात की कमी न पड़ेगी तुम्हें। एक बात और कह लूँ, मेरी मौत से पहले किसी को मत बताना। मेरे बक्स में दो हजार के नोट पड़े हैं। वे रुपए विनोदिनी को दे रही हूँ। वह विधवा है, अकेली है, इन रुपयों के सूद से उसके दिन मजे में कट जाएँगे। मगर उसे अपने यहाँ मत रखना।

राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुलवाया। कहा - 'बेटे बिहारी, कल महेंद्र बता रहा था, तूने लाचारजनों की चिकित्सा के लिए एक बगीचा लिया है - भगवान तुम्हें लंबी आयु दे कर गरीबों का भला करे। मेरे ब्याह के समय मेरे ससुर ने मुझे एक गाँव दिया था; वह गाँव मैं तुझे देती हूँ, उसे गरीबों की सेवा में लगाना। इससे मेरे ससुर का पुण्य होगा।'

## 55

राजलक्ष्मी की मृत्यु के बाद श्राद्धादि खत्म करके महेंद्र ने कहा - 'भई बिहारी, मैं डॉक्टरी जानता हूँ। तुमने जो काम शुरू किया है, मुझे भी उसमें शामिल कर लो! चुन्नी अब ऐसी गृहिणी बन गई है कि वह भी तुम्हारी मदद कर सकेगी। हम सब लोग वहीं रहेंगे।'

बिहारी ने कहा - 'खूब अच्छी तरह सोच देखो, भैया - यह काम हमेशा के लिए कर सकोगे। वैराग्य के इस क्षणिक आवेश में ऐसा स्थायी भाव मत ले बैठो!'

महेंद्र बोला - 'तुम भी जरा सोच कर देखो, जीवन को मैंने इस तरह बखेड़ा किया है कि अब बैठे-बैठे उसके उपभोग की गुंजाइश न रही। इसे अगर सक्रियता में न खींचता चलूँ तो जाने किस रोज यह मुझे अवसाद में खींच ले जाएगा। अपने काम में मुझे शामिल करना ही पड़ेगा।'

यही बात तय रही।

अन्नपूर्णा और बिहारी दोनों बैठ कर शांत उदासी लिए पिछले दिनों की चर्चा कर रहे थे। दोनों के एक-दूसरे से अलग होने का समय करीब था। विनोदिनी ने दरवाजे के पास आ कर पूछा - 'चाची, मैं यहाँ बैठ सकती हूँ।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'आ जाओ बिटिया, आओ!'

विनोदिनी आई। उसने दो-चार बातें करके बिछौना उठाने का बहाना करके अन्नपूर्णा चली गई।

विनोदिनी ने बिहारी से कहा - 'अब मेरे लिए तुम्हारा जो आदेश हो, कहो!'

बिहारी ने कहा - 'भाभी, तुम्हीं बताओ, तुम क्या चाहती हो?'

विनोदिनी बोली - 'मैंने सुना है, गरीबों के इलाज के लिए तुमने कोई बगीचा लिया है। मैं वहीं तुम्हारा कोई काम करूँगी और कुछ न बने तो खाना पकाऊँगी।'

बिहारी बोला - 'मैंने बहुत सोच देखा है, भाभी! इन-उन हंगामों से अपने जीवन के जाल में बेहद गाँठें पड़ गई हैं। अब एकांत में बैठ कर एक-एक करके उन्हीं गाँठों को खोलने का समय आ गया है। पहले सबकी सफाई कर लेनी होगी।'

अब जी जो चाहता है, सबको मान लेने की हिम्मत नहीं पड़ती। अब तक तो गुजरा, जितना कुछ झेला, उन सबके आवर्तन और आंदोलन को शांत न कर लूँ तो जीवन की समाप्ति के लिए तैयार न हो सकूँगी। अगर सारे बीते दिन अनुकूल हों, तो संसार में केवल तुमसे ही मेरा जीवन पूर्ण हो सकता था। अब तुमसे मुझे वंचित होना ही पड़ेगा। सुख की कोशिश अब बेकार है ... अब तो धीरे-धीरे टूट-फूट कर मरम्मत कर लेनी है।'

इतने में अन्नपूर्णा आई। उनके आते ही विनोदिनी ने कहा, 'माँ, तुम्हें अपने चरणों में मुझे शरण देनी पड़ेगी। पापिन के नाते तुम मुझे मत ठुकराओ।'

अन्नपूर्णा बोली, 'चलो मेरे ही साथ चलो।'

अन्नपूर्णा और विनोदिनी जिस दिन काशी जाने लगीं, मौका ढूँढ़ कर बिहारी ने अकेले में विनोदिनी से भेंट की। कहा, 'भाभी, तुम्हारी कोई यादगार मैं अपने पास रखना चाहता हूँ।'

विनोदिनी बोली, 'अपने पास ऐसा क्या है, जिसे निशानी की तरह पास रखो।'

बिहारी ने शर्म और संकोच के साथ कहा, 'अंग्रेजों में ऐसी रिवाज है, अपनी प्रिय पात्रा की कोई लट याद के लिए रख लेते हैं - तुम अगर...'

विनोदिनी - 'छि: कैसी चिनौनी बात! मेरे बालों का तुम क्या करोगे? वह मुई नापाक चीज कुछ ऐसी नहीं कि तुम्हें दूँ। अभागिन मैं, तुम्हारे पास रह नहीं सकती - मैं ऐसा कुछ देना चाहती हूँ, जो मेरा हो कर तुम्हारे काम में आए।'

बिहारी ने कहा, 'लूँगा।'

इस पर विनोदिनी ने आँचल की गाँठ से खोल कर हजार-हजार के दो नोट बिहारी को दिए।

बिहारी गहरे आवेश के साथ विनोदिनी के चेहरे की ओर एकटक देखता रहा। जरा देर बाद बोला - 'और मैं क्या तुम्हें कुछ न दे पाऊँगा?'



विनोदिनी ने कहा - 'तुम्हारी निशानी मेरे पास है, वह मेरे अंग का भूषण है, उसे कभी कोई छीन नहीं सकता। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

यह कह कर उसने अपने हाथ की चोट का वह दाग दिखाया।

बिहारी हैरान रह गया। विनोदिनी बोली, 'तुम नहीं जानते, यह आघात तुम्हारा है और यह आघात तुम्हारे ही योग्य है। इसे तुम भी वापस नहीं ले सकते।'

मौसी के इतना समझाने-बुझाने के बावजूद विनोदिनी के लिए आशा अपने मन को निष्कंटक न कर सकी थी। राजलक्ष्मी के सेवा-जतन में दोनों साथ जुटी रहीं, पर जब से उसकी नजर विनोदिनी पर पड़ी, तभी उसके दिल को चोट लगी - जबान से आवाज न निकली और हँसने की कोशिश ने उसे दुखाया। विनोदिनी की कोई मामूली सेवा लेने में भी उसका मन नाराज रहता। शिष्टता के नाते विनोदिनी का लगाया पान उसे लेना पड़ा, लेकिन बाद में तुरंत थूक दिया है। लेकिन आज जब जुदाई की घड़ी आई, मौसी दोबारा घर-बार छोड़ कर जाने लगीं और आशा का हृदय आँसुओं से गीला हो उठा, तो विनोदिनी के लिए भी उसका मन भर आया। जो सब-कुछ छोड़-छाड़ कर एकबारगी जा रहा हो, उसे माफ न कर सके, ऐसे लोग दुनिया में कम ही हैं। उसे मालूम था, विनोदिनी महेंद्र को प्यार करती है, क्यों न करे महेंद्र को प्यार! महेंद्र को प्यार करना कितना जरूरी है इसे वह खुद अपने ही मन से जान रही थी। अपने प्यार की उस वेदना से ही आज उसे विनोदिनी पर बड़ी दया हो आई। वह महेन्द्र को छोड़कर सदा के लिए जा रही है, उसका जो दुस्सह दःख है, आशा अपने बहुत बड़े दुश्मन के लिए भी उसकी कामना नहीं कर सकती। यह सोचकर उसकी आँखें भर आईं-कभी उसने विनोदिनी को प्यार भी किया था। वह प्यार उसके जी को छू गया। वह धीरे-धीरे विनोदिनी के समीप जा कर बड़ी ही करुणा के साथ, स्नेह के साथ, विषाद के साथ बोली, 'दीदी, जा रही हो?'

आशा की ठोड़ी पकड़ कर विनोदिनी ने कहा, 'हाँ बहन, जाने का समय आ गया। कभी तुमने मुझे प्यार किया था, अब अपने सुख के दिनों में उस प्यार का थोड़ा-सा अंश मेरे लिए रखना बहन, बाकी सब भूल जाना।'

महेंद्र ने आ कर नमस्ते करके कहा, 'माफ करना, भाभी!'

उसकी आँखों के कोनों से आँसू की दो बूँदें टुलक पड़ीं। विनोदिनी ने कहा, 'तुम भी मुझे माफ करना, भाई साहब, भगवान तुम लोगों को सदा सुखी रखें!'

अनुवाद : हंसकुमार तिवारी

>>पीछे>>



[शीर्ष पर जाएँ](#)